

समकालीन हिंदी कविता में मानवीय संवेदना

(उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं
निर्मला पुतुल की कविताओं के विशेष संदर्भ में)

Human sensibility as depicted in contemporary Hindi poetry
(with special reference to the poems of Uday Prakash,
Arun Kamal, Katyayani and Nirmala Putul)

कालिकट विश्वविद्यालय की
डॉक्टर ऑफ फिलोसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध - प्रबन्ध

Thesis

Submitted to the University of Calicut

for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

निर्देशक:

डॉ. प्रमोद कोवप्रत

प्रोफेसर

हिंदी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता:

मंजुला पी.एस

शोध छात्रा

हिंदी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय



हिन्दी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

2023

DECLARATION

I, MANJULA P S, do hereby declare that this thesis entitled '**Human sensibility as depicted in contemporary Hindi poetry (with special reference to the poems of Uday Prakash, Arun Kamal, Katyayani and Nirmala Putul)**' is a record of bonafide research carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship, other similar Title or Recognition. This research work was supervised by Dr. PRAMOD KOVVAPRATH, Professor, Department of Hindi, University of Calicut.

C.U.Campus

Date : 16.10.23



MANJULA P S

Research Scholar

Department of Hindi

University of Calicut

Dr. PRAMOD KOVVAPRATH

Professor

Department of Hindi

University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled '**Human sensibility as depicted in contemporary Hindi poetry (with special reference to the poems of Uday Prakash, Arun Kamal, Katyayani and Nirmala Putul)**' is a bonafide record of research work carried out by MANJULA P S under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any University.

C.U.Campus

Date : 16 . 10 . 2023 .

Dr. Pramod Kovvaprath

(Supervising Teacher)

Dr. PRAMOD KOVVAPRATH
Professor
Department of Hindi
University of Calicut, Manjeri Dt.
Kerala - 673635

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF CALICUT



DH/HoD/2024

Dated: 06.06.2024

CERTIFICATE

This is to certify that there is no corrections & modifications suggested by the adjudicators in the thesis submitted by Mrs. Manjula P.S.

C.U.Campus



A handwritten signature in blue ink, appearing to be 'Prof. Pramod Kovvaprath'.

Prof. Pramod Kovvaprath
(Research Supervisor)

Format for plagiarism check certificate

**UNIVERSITY OF CALICUT
CERTIFICATE ON PLAGIARISM CHECK**

1.	Name of the research scholar	MANJULA . P S		
2.	Title of thesis/dissertation	Human Sensibilities as depicted in Contemporary Hindi Poetry (With special reference to the Poems of Uday Prakash, Arun Kamal, Katyayani and Nirala Patu)		
3.	Name of the supervisor	Prof. Dr. Pramod Kouvapraeth		
4.	Department/Institution	DEPARTMENT OF HINDI		
5.	Similar content (%) identified	Introduction/ Review of literature	Materials and Methods	Result/ Discussion/Summary/ Conclusion
		10	10	10
6.	Software used	Manual		
7.	Date of verification	12.10.2023		


*Report on plagiarism check, specifying included/excluded items with % of similarity to be attached.

Checked by (with name, designation & signature)

Name & Signature of the Researcher MANJULA.P.S 

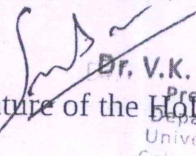
Name & Signature of the Supervisor

Dr. PRAMOD KOVAPRATH
Professor
Department of Hindi
University of Calicut, Malappuram Dt.
Kerala


Prof. Pramod Kouvapraeth

The Doctoral Committee* has verified the report on plagiarism check with the contents of the thesis, as summarized above and appropriate measures have been taken to ensure originality of the Research accomplished herein.

Name & Signature of the HoD/HoI (Chairperson of the Doctoral Committee)


Dr. V.K. SUBRAMANIAN
Professor & HoI
Department of Hindi
University of Calicut,
Calicut University P.O.



* In case of languages like Malayalam, Tamil, etc. on which no software is available for plagiarism check, a manual check shall be made by the Doctoral Committee, for which an additional certificate has to be attached

अनुक्रमणिका

	पृ. सं
प्राक्कथन	i - v
पहला अध्याय	
समकालीन हिंदी कविता: एक सामान्य परिचय	1 - 32
१.१. समकालीन कविता की पूर्वपीठिका	
१.२. समकालीनता अर्थ-स्वरूप	
१.३. समकालीन कविता का भाव संसार	
१.३.१. यथार्थ का अंकन	
१.३.२. राजनीति का स्वरूप	
१.३.३. व्यवस्था की अमानवीयता	
१.३.४. बाज़ारीकरण की अभिव्यक्ति	
१.३.५. सांस्कृतिक संकट की अभिव्यक्ति	
१.३.६. मीडिया का प्रभाव	
१.३.७. महानगरीय जीवन का अंकन	
१.३.८. आम आदमी का जीवन संघर्ष	
१.३.९. सांप्रदायिकता का चित्रण	
१.३.१०. दलित जीवन का अंकन	
१.३.११. नारी चेतना	
१.३.१२. बच्चों की बेचैनियाँ	
१.३.१३. बुजुर्ग जीवन का यथार्थ	
१.३.१४. प्राकृतिक सजगता	
१.३.१५. किसानों का चित्रण	
१.३.१६. आदिवासी जीवन यथार्थ	
१.३.१७. पारिवारिक संबंधों में तनाव	
१.३.१८. आतंकवाद	
१.३.१९. निष्कर्ष	
दूसरा अध्याय	
मानवीय संवेदना और साहित्य का विश्लेषण	33 - 58
२.१. संवेदना	
२.२. संवेदना का कोशगत अर्थ	
२.३. संवेदना की परिभाषाएँ	
२.४. मानवीय संवेदना	
२.५. साहित्य और मानवीय संवेदना	
२.६. काव्य और संवेदना	
२.७. आधुनिक हिंदी कविता और संवेदना	

(ii)

- २.८. समकालीन हिंदी कविता में संवेदना
२.९. निष्कर्ष

तीसरा अध्याय

उदय प्रकाश की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना

59 - 127

- ३.१. जीवन परिचय
३.२. सृजन परिचय
३.३. कविता संग्रह - एक परिचय
३.३.१. सुनो कारीगर
३.३.२. अबूतर कबूतर
३.३.३. रात में हारमोनियम
३.३.४. एक भाषा हुआ करती है
३.३.५. अम्बर में अबाबील
३.४. मानवीय संवेदना के संदर्भ में
३.४.१. समय की पहचान
३.४.२. विस्थापित जीवन की त्रासदी
३.४.३. श्रमशील जीवन या मज़दूर वर्ग के पक्षधर
३.४.४. नारी जीवन की त्रासदी
३.४.५. बाज़ारीकरण की अभिव्यक्ति
३.४.६. न्यायव्यवस्था पर प्रहार
३.४.७. सांप्रदायिकता का धिनौना चेहरा
३.४.८. कृषक जीवन का क्रन्दन
३.४.९. पर्यावरण पर प्रहार
३.४.१०. शासक वर्ग के अत्याचारों का चित्रण
३.४.११. गरीबी का चित्रण
३.४.१२. महानगरीय जीवन का संत्रास
३.४.१३. घर-परिवार और रिश्तों में आत्मीयता
३.४.१४. संबंधों में दरार
३.४.१५. कलाकार एवं साहित्यकारों की झूठी नीति
३.४.१६. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
३.४.१७. भाषा की चिंता
३.४.१८. निष्कर्ष

चौथा अध्याय

अरुण कमल की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना

128 - 228

- ४.१. जीवन-परिचय
४.२. सृजन परिचय
४.३. कविता संग्रह - एक परिचय
४.३.१. अपनी केवल धार
४.३.२. सबूत

(iii)

- ४.३.३. नये इलाके में
- ४.३.४. पुतली में संसार
- ४.३.५. मैं वो शंख महाशंख
- ४.३.६. योगफल
- ४.४. मानवीय संवेदना के संदर्भ में
- ४.४.१. यथार्थ की अन्विति
- ४.४.२. मेहनतकश वर्ग की अंतर्वेदना
- ४.४.३. आम आदमी का जीवन यथार्थ
- ४.४.४. बच्चों की बेचैनियाँ
- ४.४.५. स्त्री जीवन की यातनाओं का चित्रण
- ४.४.६. सामाजिक असुरक्षा का चित्रण
- ४.४.७. सांप्रदायिक विकलता का परिदृश्य
- ४.४.८. मीडियाई अपसंस्कृति का अंकन
- ४.४.९. बाज़ारवादी अपसंस्कृति का अंकन
- ४.४.१०. मूल्यों का विघटन
- ४.४.११. करुणाभाव
- ४.४.१२. विज्ञान की विभीषिका
- ४.४.१३. पर्यावरण क्षति की चिंता
- ४.४.१४. बिगडते लोकतंत्र का अंकन
- ४.४.१५. सरकारी विद्वपताओं का पर्दाफाश
- ४.४.१६. निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय

कात्यायनी की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना

229 - 311

- ५.१. जीवन परिचय
- ५.२. सृजन परिचय
- ५.३. कविता संग्रह - एक परिचय
- ५.३.१. सात भाइयों के बीच चंपा
- ५.३.२. इस पौरुषपूर्ण समय में
- ५.३.३. जादू नहीं कविता
- ५.३.४. राख अंधेरे की बारिश में
- ५.३.५. फुटपाथ पर कुर्सी
- ५.३.६. एक कुहरा पारभासी
- ५.४. मानवीय संवेदना के संदर्भ में
- ५.४.१. समय की पहचान
- ५.४.२. आम आदमी का अंकन
- ५.४.३. मेहनतकश जिंदगी का यथार्थ
- ५.४.४. बच्चों की बेचैनियाँ
- ५.४.५. बाज़ारवादी अपसंस्कृति
- ५.४.६. रिश्तों में दरार

- ५.४.७. राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण
- ५.४.८. शासक वर्ग के अत्याचारों का पर्दाफाश
- ५.४.९. चुण्पी की संस्कृति
- ५.४.१०. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
- ५.४.११. सांप्रदायिकता एवं आतंकवाद
- ५.४.१२. न्याय व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न
- ५.४.१३. सांस्कृतिक संकट
- ५.४.१४. पिंजरे में बंद स्त्री जीवन
- ५.४.१५. साहित्य जगत की मान्यताएँ एवं विडंबनाएँ
- ५.४.१६. निष्कर्ष

छठा अध्याय

निर्मला पुतुल की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना

312 - 363

- ६.१. जीवन परिचय
- ६.२. सृजन परिचय
- ६.३. कविता संग्रह - एक परिचय
- ६.३.१. नगाडे की तरह बजते शब्द
- ६.३.२. बेघर सपने
- ६.४. मानवीय संवेदना के संदर्भ में
- ६.४.१. विकास बनाम विस्थापन
- ६.४.२. प्रकृति के प्रति संवेदना
- ६.४.३. सांस्कृतिक संकट
- ६.४.४. अभावग्रस्त जिंदगी
- ६.४.५. कुरीतियों एवं अंधविश्वास
- ६.४.६. अपने घर की तलाश में
- ६.४.७. आदिवासी स्त्री का दर्द
- ६.४.८. आदिवासियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण
- ६.४.९. बाज़ार का वर्चस्व
- ६.४.१०. दमनतंत्र का शिकार
- ६.४.११. निष्कर्ष

सातवाँ अध्याय

उपसंहार

364 - 378

परिशिष्ट

अध्ययन की संभावनाएँ (Recommendations)

379 - 380

सहायक ग्रन्थ सूची

381 - 391

Human Sensibility as Depicted in Contemporary Hindi Poetry

(With special reference to the Poems of Uday Prakash, Arun Kamal, Katyayani and Nirmala Putul.)

In the contemporary era, humanity is witnessing a decline. Alongside globalization, marketization trends and the development of scientific technology are significantly influencing society, both directly and indirectly. While the concepts of a global village and the media revolution have reduced the physical distance between individuals, they have also increased the psychological distance between human minds. In today's mechanized world, human sensibilities appear to have completely vanished. However, contemporary poets play a crucial role in reviving these sensibilities by highlighting the inhuman practices prevalent in society.

Notable figures in contemporary Hindi poetry, such as Uday Prakash, Arun Kamal, Katyayani, and Nirmala Putul, expose the polluted mentality pervasive in social, political, religious, and cultural spheres. Their works place humanity and its concerns at the centre. To study contemporary Hindi poetry from the perspective of human sensibilities, it is imperative to examine the works of these poets who express a humanitarian concern for the world.

This research focuses on "Human Sensibility as Depicted in Contemporary Hindi Poetry"(with special reference to the poems of Uday Prakash, Arun Kamal, Katyayani, and Nirmala Putul.) For clarity and thorough analysis, the research is divided into seven chapters, including a conclusion.

The first chapter, "Contemporary Hindi Poetry - A General Introduction," examines the broader emotional landscape of contemporary poetry, considering its antecedents. The second chapter, "Human Sensibility and Literary Analysis," defines and explores concepts such as empathy and human empathy, analysing their representation in literature. The third chapter, "Human Sensibility in the Poems of Uday Prakash," records and analyses the inhuman behaviours present in contemporary society through the lens of human sensibility. The fourth chapter, "Human Sensibility in the Poems of Arun Kamal," investigates human sentiments by examining social discrepancies highlighted in his works. The fifth chapter, "Human Sensibility in Katyayani's Poems," addresses injustices such as capitalism and fascism, extending beyond the limited scope of feminism to critique broader social exploitation. The sixth chapter, "Human Sensibility in the Poems of Nirmala Putul," explores the emotional and ideological aspects of her poetry, which depicts the struggles of tribal society in the current environment. The final chapter presents the findings of this research.

In the present age, there is a notable erosion of human sensibilities, marked by widespread violence, neglect, and exploitation. Women in post-modern society remain marginalized, and children suffer from issues like child labour, sexual exploitation, and female foeticide. Marketization and consumerist culture have exacerbated problems such as hunger, poverty, unemployment, and displacement in tribal societies. Globalization and marketization have significantly altered human civilization and culture, with poetry serving as a powerful voice of opposition. The lack of human vision underlies numerous issues, including social unrest, justice violations, and violent tendencies. By expressing these dire circumstances in their poems, contemporary poets convey strong empathy towards all segments of society. There is an urgent need to understand contemporary societal conditions and preserve human sensibility and social concern, as emphasized by the works of Prakash, Arun Kamal, Katyayani, and Nirmala Putul.

Supervising Teacher:

Prof.(Dr.) Pramod Kovvaprath
Department Of Hindi
University Of Calicut

Research Scholar:

Manjula P S
Department Of Hindi
University Of Calicut

'സമകാലീന ഹിന്ദി കവിതയിൽ മാനവീയ സംവേദന (ഉദയ് പ്രകാശ്, അരുൺ കമൽ, കാത്യായനി, നിർമ്മല പുതുൽ എന്നിവരുടെ കവിതകളെ ആധാരമാക്കി ഒരു പഠനം)

ആഗോളവൽക്കരണവും കമ്പോളവൽക്കരണവും അതോടൊപ്പം ശാസ്ത്ര സാങ്കേതിക വിദ്യയുടെ വികാസവും നമ്മുടെ സമൂഹത്തെ നേരിട്ടോ അല്ലാതെയോ ബാധിക്കുന്നു. വിശ്വ ഗ്രാമ സങ്കല്പവും മാധ്യമ വിപ്ലവവും മനുഷ്യർ തമ്മിലുള്ള അകലം കുറച്ചെങ്കിലും മനുഷ്യ മനസ്സുകൾ തമ്മിലുള്ള അകലം വർദ്ധിച്ചിരിക്കുന്നു . ആധുനിക യന്ത്രവൽകൃത ലോകത്ത്, മനുഷ്യന്റെ സംവേദനക്ഷമത പൂർണ്ണമായും ഇല്ലാതായിരിക്കുന്നു . സമൂഹത്തിൽ നിലനിൽക്കുന്ന മനുഷ്യത്വരാഹിത്യം ഇറന്ന് കാണിച്ചുകൊണ്ട് മനുഷ്യമനസ്സുകളിൽ മാനവീയ സംവേദനകൾ ഉണർത്തുകയാണ് സമകാലീന കവികൾ ചെയ്യുന്നത്.

ഉദയ് പ്രകാശ്, അരുൺ കമൽ, കാത്യായനി, നിർമ്മല പുതുൽ എന്നിവർ സമകാലീന ഹിന്ദി കവിതയുടെ മഹനീയ വ്യക്തിത്വങ്ങളാണ്. അവരുടെ കവിതകൾ സാമൂഹിക , രാഷ്ട്രീയ, മത, സാംസ്കാരിക മേഖലകളിൽ നിലനിൽക്കുന്ന മലിനമായ മാനസികാവസ്ഥയെ ഇറന്നുകൊടുക്കുന്നു . മാനവീയ സംവേദനയുടെ വീക്ഷണകോണിൽ നിന്ന് കൊണ്ട് സമസ്ത ലോകത്തെയും നോക്കിക്കാണുന്ന ഇവരുടെ കവിതകൾ പഠനവിധേയമാക്കേണ്ടത് അനിവാര്യമാണ്. അതുകൊണ്ടു തന്നെ ഇവിടെ ഗവേഷണത്തിനായി തിരഞ്ഞെടുത്ത വിഷയം 'സമകാലീന ഹിന്ദി കവിതയിൽ മാനവീയ സംവേദന (ഉദയ് പ്രകാശ്, അരുൺ കമൽ, കാത്യായനി, നിർമ്മല പുതുൽ എന്നിവരുടെ കവിതകളെ ആധാരമാക്കി ഒരു പഠനം)' എന്നതാണ്. പഠനസൗകര്യം കണക്കിലെടുത്ത്, പ്രസ്തുത വിഷയം ഉപസംഹാരമടക്കം ഏഴ് അധ്യായങ്ങളായി തിരിച്ചിരിക്കുന്നു.

ആദ്യ അധ്യായം 'സമകാലീന ഹിന്ദി കവിത - ഒരു പൊതു പരിചയം'. ഇതിൽ സമകാലീന കവിതയുടെ പൂർവകാലഘട്ടങ്ങളെ പ്രതിപാദിച്ചുകൊണ്ട് സമകാലീന കവിതയുടെ വിശാലമായ വൈകാരിക തലങ്ങൾ പരിശോധിക്കുകയാണ് ചെയ്തിരിക്കുന്നത്.

'മാനവീയ സംവേദനയും സാഹിത്യവും' എന്ന രണ്ടാമധ്യായത്തിൽ , സംവേദന, മാനവീയ സംവേദന തുടങ്ങിയ പദങ്ങളെ വിവിധ നിർവ്വചനങ്ങളുടെ സഹായത്തോടെ വിശദീകരിച്ചു കൊണ്ട് , സാഹിത്യത്തിൽ മാനവീയ സംവേദനയുടെ വിവിധ തലങ്ങളെ വിശകലനം ചെയ്തിരിക്കുന്നു.

'ഉദയ് പ്രകാശിന്റെ കവിതകളിൽ മാനവീയസംവേദന' എന്ന മൂന്നാം അധ്യായത്തിൽ വർത്തമാന സമൂഹത്തിൽ വ്യാപിച്ചിരിക്കുന്ന മനുഷ്യത്വരാഹിതമായ പെരുമാറ്റങ്ങൾ കവി എങ്ങനെയാണ് അടയാളപ്പെടുത്തിയിരിക്കുന്നത് എന്നതാണ് പഠനവിധേയമാക്കിയിരിക്കുന്നത് ..

'അരുൺ കമലിന്റെ കവിതകളിൽ മാനവീയസംവേദന 'എന്ന നാലാം അധ്യായത്തിൽ കവിത സംവദിക്കുന്ന സാമൂഹിക പ്രശ്നങ്ങൾ പഠന വിധേയമാക്കിയിരിക്കുന്നു .' അദ്ദേഹത്തിന്റെ കവിതകളിൽ മാറ്റുന്ന ലോകത്തിന്റെ പ്രതിച്ഛായയാണ് ദർശിക്കാൻ കഴിയുന്നത്.

'കാത്യായനിയുടെ കവിതകളിൽ മാനവീയസംവേദന 'എന്ന അഞ്ചാം അധ്യായം പുരുഷാധിപത്യ സമൂഹത്തിന്റെ ചൂഷണത്തിനു വിധേയമാക്കപ്പെടുന്ന സ്ത്രീ ജീവിതത്തിന്റെ അടയാളപ്പെടുത്തലുകൾ മാത്രമല്ല, അതിനുമപ്പുറം കവിത കൈകാര്യം ചെയ്യുന്ന നിരവധി സാമൂഹിക പ്രശ്നങ്ങളെ പഠന വിധേയമാക്കിയിരിക്കുന്നു.

'നിർമ്മല പുതുലിന്റെ കവിതകളിൽ മാനവീയസംവേദന എന്ന ആറാമത്തെ അധ്യായത്തിൽ ജീവിക്കാനുള്ള അവകാശങ്ങൾ പോലും നിഷേധിക്കപ്പെട്ട് പാർശ്വവൽക്കരിക്കപ്പെട്ട ആദിവാസി സമൂഹത്തിന്റെ ജീവിതയാഥാർത്ഥ്യങ്ങൾ ഉൾക്കൊള്ളുന്ന കവിതകൾ പഠന വിധേയമാക്കിയിരിക്കുന്നു., ഈ ഗവേഷണ പ്രവർത്തനത്തിൽ നിന്ന് ലഭിച്ച കണ്ടെത്തലുകളുടെ ഉപസംഹാരം അവസാന അധ്യായമായി ചേർത്തിരിക്കുന്നു.

. വർത്തമാന കാലഘട്ടത്തിലെ മനുഷ്യൻ സംവേദനാഹീനമായ നിരവധി സാഹചര്യങ്ങളെ നേരിടുന്നു . കൊലപാതകം, ആക്രമണം, അക്രമം തുടങ്ങിയ അന്തരീക്ഷമാണ് എങ്ങും. ഉത്തരാധുനിക സമൂഹത്തിലെ ഭൂരിഭാഗം സ്ത്രീകളും അവഗണനയും ചൂഷണവും നേരിട്ട് കൊണ്ടിരിക്കുന്ന സാഹചര്യമാണുള്ളത് . ബാലവേല, ലൈംഗികചൂഷണം, പെൺഭ്രമണഹത്യ തുടങ്ങി നിരവധി കാരണങ്ങളാൽ കുട്ടികൾ ദുരിതമനുഭവിക്കുന്നു . കമ്പോളവൽക്കരണത്തിന്റെയും ഉപഭോക്തൃ സംസ്കാരത്തിന്റെയും കടന്നുകയറ്റം മൂലം ആദിവാസി സമൂഹം പട്ടിണി, ദാരിദ്ര്യം, തൊഴിലില്ലായ്മ, കുടിയൊഴിപ്പിക്കൽ, തുടങ്ങിയ പ്രശ്നങ്ങൾ അഭിമുഖീകരിക്കുന്നു. സമകാലീന കവികൾ നിലവിലെ സാമൂഹ്യ രാഷ്ട്രീയ മേഖലകളിൽ നിലനിൽക്കുന്ന അസഹിഷ്ണുതകളെ ഇറന്നുകൊടുക്കുകയും അതിശക്തമായ ഭാഷയിൽ തങ്ങളുടെ പ്രതിരോധം വ്യക്തമാക്കുകയും ചെയ്യുന്നു.

समकालीन हिंदी कविता में मानवीय संवेदना

(उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल की कविताओं के विशेष संदर्भ में)

आज हम ऐसे कठिन समय में जी रहे हैं जहाँ मानवीयता का हास होता जा रहा है। भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण की प्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से हमारे समाज को प्रभावित कर रही हैं। विश्वगाँव की संकल्पना एवं मीडिया क्रांति ने मानव के बीच की दूरी कम कर दी है। लेकिन मानव मन के बीच दूरियाँ बढ़ रही हैं। आज की यंत्रवत् दुनिया में मानवीय संवेदनाएँ कम होती जा रही हैं। समाज में व्याप्त अमानवीय व्यवहारों को बेनकाब करते हुए मानव मन में संवेदनाओं को जाग्रत करने का महत्वपूर्ण कार्य समकालीन कवि कर रहे हैं।

उदयप्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल समकालीन कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनकी कविताएँ सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों की सामयिक संवेदना को उजागर करती हैं। उनकी कविताओं के केन्द्र में मुख्य रूप से मानव और मानवीयता हैं। मानवीय संवेदनाओं के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कविता का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। मानवीय सरोकार को महत्व देनेवाले इन कवियों की कविताओं का अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक है। यहाँ शोध के लिए चुना गया विषय है- 'समकालीन हिंदी कविता में मानवीय संवेदना (उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल की कविताओं के विशेष संदर्भ में)। अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखकर शोधकार्य को उपसंहार सहित सात अध्यायों में बाँटा गया है।

पहला अध्याय है 'समकालीन हिंदी कविता- एक सामान्य परिचय'। समकालीन कविता का भावसंसार व्यापक और विस्तृत है। समाज का या आसपास का कोई भी विषय कविता का आधार बन जाता है। समकालीन कविता के विस्तृत भाव संसार का सामान्य परिचय इस अध्याय में प्रस्तुत किया है।

दूसरा अध्याय है 'मानवीय संवेदना और साहित्य का विश्लेषण।' इस अध्याय में संवेदना, मानवीय संवेदना आदि शब्दों को कोशगत अर्थों एवं विभिन्न परिभाषाओं के सहारे प्रस्तुत करने के साथ-साथ साहित्य में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना पर विचार किया है। मानवीय संवेदना किसी भी समाज का टिकने का मूल आधार है।

तीसरा अध्याय है 'उदय प्रकाश की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना'। प्रस्तुत अध्याय में उदयप्रकाश की कविताओं में अभिव्यक्त संवेदनात्मक पक्षों पर विचार किया है। उनकी कविताओं में वर्तमान समाज में व्याप्त अमानवीय व्यवहारों का अंकन है। इसे मानवीय संवेदना के धरातल पर विश्लेषित किया है।

चौथा अध्याय है 'अरुण कमल की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना'। अरुण कमल की कविताओं में दुनिया के बदलते चेहरे का परिदृश्य देख पाते हैं। उनकी कविताओं में वर्तमान माहौल की तमाम सामाजिक विसंगतियों का अंकन हुआ है। प्रस्तुत अध्याय मानवीय संवेदनाओं के संदर्भ में उनकी कविताओं का अध्ययन है।

पाँचवाँ अध्याय है 'कात्यायनी की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना'। कात्यायनी की कविताएँ स्त्रीवाद के सीमित दायरे के बाहर पूँजीवाद, फासीवाद जैसी तमाम अन्यायों के खिलाफ खुली प्रतिक्रिया हैं। इस अध्याय में कात्यायनी की कविताओं के माध्यम से, नारी हो या अन्य सर्वहारा वर्ग हो उनके प्रति समाज द्वारा अपनाये गये शोषण की नीतियों को मानवीय संवेदना के संदर्भ में विश्लेषित किया है।

छठा अध्याय है 'निर्मला पुतुल की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना'। वर्तमान समाज में आदिवासी जनता जीने के मूलभूत अधिकारों से वंचित है। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी जनता के जीवन संघर्ष एवं व्यवस्था के प्रति आक्रोश हैं। इस अध्याय में उनकी कविताओं का अध्ययन करके कविता में अभिव्यक्त संवेदनात्मक एवं विचारात्मक पक्षों को उद्घाटित किया है। अंतिम अध्याय उपसंहार में इस शोधकार्य के निष्कर्षों को प्रस्तुत किया है।

आज के दौर में मानवीय संवेदनाओं के क्षरण की स्थिति मौजूद है। हर कहीं हत्या, मारपीट, हिंसा आदि का माहौल है। उत्तराधुनिक समाज की ज़्यादातर स्त्रियाँ आज भी उपेक्षित, पीड़ित, न्याय वंचित एवं शोषित रहने के लिए विवश हैं। बाल मज़दूरी, यौन शोषण, कन्या भ्रूणहत्या आदि कई महत्वपूर्ण समस्याएँ हमारे समाज में मौजूद हैं। बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के अतिक्रमण के कारण भूख, गरीबी, बेरोज़गारी, बेदखली, विस्थापन एवं जल-जंगल-ज़मीन से जुड़ी हुई अनेक समस्याएँ आदिवासी समाज झेल रहा है। वैश्वीकरण एवं बाज़ारीकरण मानव की सभ्यता एवं संस्कृति के परिवर्तन के कारण बन गये हैं। इसके खिलाफ कविता का प्रतिरोधी स्वर प्रबल है। सामाज में व्याप्त अशांति, अन्याय, हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ जैसी असंख्य समस्याओं के मूल में मानवीय दृष्टि का अभाव है। समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में इस दुःखद तथा भयानक स्थिति की अभिव्यक्ति करके पूरे मानव या मानवेतर समाज के प्रति तीव्र संवेदना प्रकट की है। समकालीन समाज की विविध परिस्थितियों को सही ढंग से परखने- समझने तथा मानवीय संवेदना एवं सामाजिक सरोकार को बनाये रखने की आवश्यकता पर उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल ने विशेष ध्यान दिया है।

शोध निर्देशक :

प्रो.(डॉ.)प्रमोद कोवप्रत

शोधार्थी :

मंजुला पी एस

प्राक्कथन

कविता सर्वाधिक संवेदनशील विधा है। यह मानव के विवेक और विचारों को उत्तेजित करके मानव मन की गहराइयों तक छू सकती है। अपनी समग्रता एवं व्यापकता से मानवजीवन को अंकित करने में समकालीन कविता सक्षम बनी है। समकालीन कविता की जीवनदृष्टि व्यापक होने के कारण उसे हम विशेष प्रवृत्तियों के अंतर्गत रख नहीं सकते। सामान्य जनता चाहे वह सर्वहारा वर्ग हो, दलित हो, आदिवासी हो, नारी हो या अन्य कोई भी हो उनकी पीड़ा, संघर्ष एवं आशा-आकांक्षाओं का अंकन समकालीन कविता में देख पाते हैं।

आज हम ऐसे कठिन समय में जी रहे हैं जहाँ मानवीयता का हास होता जा रहा है। हर कहीं मानवीय मूल्यों का क्षरण होता जा रहा है। मूल्यबोध मनुष्य की विवेकशक्ति है। लेकिन आधुनिकता की चकाचौंध ने मानव के मूल्यबोध को उथल पुथल कर दिया है। इसने हमारी सामाजिक संरचना पर गहरा आघात लगाया है। वैज्ञानिक तकनीकी के विकास के साथ-साथ भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण की प्रवृत्तियाँ भी प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से हमारे समाज को प्रभावित कर रही हैं। विश्वगँव की संकल्पना एवं मीडिया क्रांति ने मानव के बीच दूरी कम कर दी गई है। लेकिन मानव मन के बीच दूरियाँ बढ़ गयी हैं। स्नेह, दया, करुणा, ममता, प्रेम आदि भाव मानव मन से कम हो रहे हैं। दूसरों के प्रति मन में इन भावों का जागृत होना ही संवेदना है। परिस्थिति या समय के अनुरूप ये संवेदनार्थ मानवीय संवेदनाओं के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। आज के यंत्रवत् दुनिया में मानवीय संवेदनाएँ एकदम समाप्त हो गई हैं। निजी स्वार्थ के पीछे भागनेवाले मानव

(ii)

दूसरों के प्रति सोचता ही नहीं। ऐसी स्थिति में समाज में व्याप्त अमानवीय व्यवहारों को खुलकर दिखाकर मानव मन में मानवीय संवेदनाओं को जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य समकालीन कवि कर रहे हैं।

उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल समकालीन कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनकी कविताएँ सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्याप्त प्रदूषित मानसिकता को उजागर करती हैं। इनकी कविताओं के केन्द्र में मानव और मानवीयता है। मानवीय संवेदनाओं के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कविता का अध्ययन के संदर्भ में पूरी दुनिया के प्रति इन्सानी सरोकार रखनेवाले इन कवियों की कविताओं को उल्लिखित करना अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य है।

इनकी कविताओं के विविध आयामों पर कुछ अध्ययन हिंदी में उपलब्ध हैं। 'समकालीन कविता के संदर्भ में उदय प्रकाश का काव्य', 'समकालीन हिंदी कविता के परिप्रेक्ष्य में अरुण कमल के काव्य का अनुशीलन', 'अरुण कमल के काव्य में उत्तराधुनिक भावबोध की अभिव्यक्ति का स्वरूप', 'समकालीन कविता के संदर्भ में अरुण कमल की कविताएँ', 'अरुण कमल की कविताओं में स्थानीयता वस्तुगत एवं शिल्पगत विवेचन', 'हिंदी की समकालीन कवयित्रियों का काव्य चिंतन के विविध आयाम कात्यायनी, गगनगिल, अनामिका एवं निर्मला पुतुल के विशेष संदर्भ में', 'समकालीन कवयित्रियों में नारी संघर्ष एक विश्लेषणात्मक अध्ययन - अनामिका प्रभा खेतान एवं कात्यायनी के विशेष संदर्भ में' आदि शोधपरक अध्ययन इनमें कुछ हैं।

'अरुण कमल एवं समकालीन हिंदी कविता', 'अरुण कमल की कविता का जनवादी पक्ष', 'अरुण कमल की कविताओं में प्रतिरोध का स्वर', 'अरुण कमल की काव्य संवेदना', 'निर्मला पुतुल और वाहरु सोनवणे की आदिवासी कविताएँ - तुलनात्मक अध्ययन' आदि विषयों पर समीक्षात्मक किताबें भी उपलब्ध हैं। लेकिन मानवीय संवेदना पर केन्द्रित समग्र अध्ययन देखने को नहीं मिलता है।

(iii)

मेरा शोध विषय है 'समकालीन हिंदी कविता में मानवीय संवेदना (उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल की कविताओं के विशेष संदर्भ में)। प्रस्तुत शोधकार्य को अध्ययन की सुविधा के लिए उपसंहार सहित सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

पहला अध्याय है 'समकालीन हिंदी कविता - एक सामान्य परिचय।' इसमें समकालीन कविता की पूर्वपीठिका का उल्लेख करके समकालीनता, समसामयिकता एवं आधुनिकता पर विचार किया गया है। समकालीन कविता के विस्तृत भाव संसार को परखने का प्रयास भी किया गया है।

दूसरा अध्याय है 'मानवीय संवेदना और साहित्य का विश्लेषण।' इस अध्याय में संवेदना, मानवीय संवेदना आदि शब्दों को विभिन्न परिभाषाओं के सहारे समझाने के साथ साहित्य में मानवीय संवेदना को परखने का प्रयास किया है। इस अध्याय के अध्ययन हेतु समकालीन कवियों के संवेदनात्मक दृष्टिकोण का विस्तृत परिदृश्य देने की कोशिश की गयी है। संवेदना शब्द को विस्तार से समझाने के साथ मानवीय संवेदना के स्तर पर समकालीन कविता के भाव संसार को परखने का प्रयास किया है।

तीसरा अध्याय है 'उदय प्रकाश की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना'। इस अध्याय के आरंभ में एक व्यक्ति और साहित्यकार के रूप में उदय प्रकाश के स्थान को देखा-परखा गया है। उनके कविता-संग्रहों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। साथ ही साथ उदय प्रकाश की कविताओं के संवेदनात्मक पक्षों पर विचार किया गया है। वर्तमान समाज में व्याप्त अमानवीय व्यवहारों का अंकन करके उन्हें मानवीय संवेदना के धरातल पर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

चौथा अध्याय है 'अरुण कमल की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना'। इस अध्याय के आरंभ में व्यक्ति और साहित्यकार के रूप में अरुण कमल का परिचय देने का

प्रयास किया गया है। उनके कविता संग्रहों, आलोचनात्मक ग्रन्थों एवं अन्य रचनाओं का परिचय दिया गया है। प्रस्तुत अध्याय उनकी कविताओं में अभिव्यक्त तमाम सामाजिक विसंगतियों का उल्लेख करके मानवीय संवेदनाओं के पक्ष पर सही पडताल करने का प्रयास है।

पाँचवाँ अध्याय है 'कात्यायनी की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना'। इस अध्याय के आरंभ में कात्यायनी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सामान्य परिचय देकर उनकी कविता संग्रहों पर अलग से परिचय दिया गया है। नारी हो या अन्य सर्वहारा वर्ग हो उनके प्रति समाज द्वारा अपनाये गये शोषण की नीतियों को मानवीय संवेदना के संदर्भ में परखने का प्रयास किया गया है।

छठा अध्याय है 'निर्मला पुतुल की कविताओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना'। इस अध्याय के आरंभ में व्यक्ति और साहित्यकार के रूप में निर्मला पुतुल के महत्व को देखा-परखा गया है। उनके कविता संग्रहों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। जीने के मूलभूत अधिकारों से वंचित आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण करनेवाली उनकी कविताओं का अध्ययन करके संवेदनात्मक एवं विचारात्मक पक्षों पर उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

अंतिम अध्याय उपसंहार है। इसमें इस शोधकार्य से प्राप्त निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है। आज के दौर में मानवीय संवेदनाओं के क्षरण की स्थिति मौजूद है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्य संकट देख पाते हैं। इसके फलस्वरूप संबंधों में दरार आ गई है। पूरे वातावरण में अमानवीयता फैल गई है। हर कहीं हत्या, मारपीट, हिंसा आदि का माहौल है। समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में इस दुःखद (भयानक) स्थिति की अभिव्यक्ति करके पूरे मानव या मानवैतर समाज के प्रति तीव्र संवेदना प्रकट की है। उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल आदि कवि समकालीन कविता के क्षेत्र में मानवीय संवेदना के रक्षक के रूप में अपनी हाजिरी दर्ज करती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन की सफलता के लिए मैं सबसे पहले कृपावान ईश्वर के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। अपने शोध प्रबन्ध के विषय चयन में प्रत्यक्षतः और परोक्षतः जिन हस्तियों से भी मुझे प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है, उन सबके आगे मैं नतमस्तक हूँ। श्रद्धेय गुरुवर एवं शोध निर्देशक प्रो. प्रमोद कोवप्रत जी के मार्गदर्शन एवं समय समय पर आपके उचित निर्देश सुझाव का नतीजा है मेरा यह शोध प्रबंध। आपके प्रति मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ। कालिकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के सभी अध्यापकों, शोध छात्रों, दफ्तर एवं पुस्तकालयों के अधिकारियों के प्रति भी विशेष रूप से मैं आभारी हूँ।

अपने शोध प्रबंध की पूर्ति के इस अवसर पर स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक मेरे सभी गुरुजनों को मैं याद करती हूँ, प्रणाम करती हूँ, जिन्होंने मुझे ज़िन्दगी में तरक्की करने का सपना दिखाया। हर्षोल्लास के इस अवसर उन सबके प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ। एन.एस.एस.कॉलेज, ओट्टप्पालम के सभी अध्यापक बंधुओं एवं अंतरंग मित्रों, विशेषकर हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ.सजीव जी के प्रति मैं विशेष आभार प्रकट करती हूँ। साथ ही साथ एन.एस.एस कॉलेज की प्रबंधन समिति के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ।

शोध के हरेक पल में मुझमें ऊर्जा और शक्ति भरता रहा मेरा परिवार। परिवार का सहयोग ही हर काम को मुकाम तक ले जाता है। माँ, मौसी और स्वर्गीय पिता के प्यार, प्रार्थना और प्रोत्साहन के आगे मैं नतमस्तक हूँ। शोध संबंधी मेरी हर यात्राओं के सहयोगी रहे मेरे जीवनसाथी सतीष जी। शोधकार्य की पूर्ति में उनका साथ देना कितना महत्वपूर्ण था, मैं वाणी द्वारा बयान नहीं कर सकती और मेरी प्यारी बच्चियाँ अभिरामी और आरभी के सहयोग को भी मैं याद करती हूँ।

अंत में उन सभी हितैषियों, गुरुजनों और मित्रों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिनसे शोधकार्य के दौरान मुझे सहायता मिलती रही।

मंजुला. पी. एस

पहला अध्याय

समकालीन हिंदी कविता: एक सामान्य परिचय

मन के भावों को वाणी द्वारा अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है कविता। सामाजिक गतिविधियों का संवेदनात्मक प्रतिफलन करने में कविता हमेशा सक्षम हुई है। हिंदी कविता के इतिहास को परखें तो एक बात ज्ञात होता है कि प्रत्येक काल की संवेदना को आत्मसात् करके गुज़रनेवाली सर्वाधिक संवेदनशील साहित्यिक विधा है कविता। डॉ.बी.एफ.शेख के अनुसार - “कविता मानवीय संसार की रचना करती है। ऐसी सशक्त विधा साहित्य के लिए बड़ी उपलब्धि है। साहित्य में आरंभ से कविता लिखी जा रही है, आज भी कविता लिखना जारी है। कविता में आरंभ से लेकर आज तक धक्क और समाज का ही लेखा-जोखा प्रस्तुत हुआ है। हर दौर में तथा हर स्थित में आदमी की ज़िन्दगी का बख़ान कविता में मुखरित हुआ है। कविता में सामाजिक चिंतन शुरू से ही रहा है, आज भी वह व्यक्ति और समाज का चिंतन कर रही है।”¹ हिंदी कविता अनेक आंदोलनों या संप्रदायों से गुज़रकर आज समकालीन कविता पर आ पहुँची है।

१.१. समकालीन कविता की पूर्वपीठिका

समय के साथ-साथ गुज़रनेवाली हिंदी कविता में कालानुसृत परिवर्तन और परिमार्जन हुए हैं। कविता की इस परंपरा को परखे बिना आगे बढ़ना अनुचित है। आगामी यात्रा को बल मिलने के लिए अतीत की ओर ध्यान देना ज़रूरी है। इसलिए हिंदी कविता की समकालीन कविता तक की यात्रा पर विहंगम दृष्टि डालना अनिवार्य है।

आधुनिक हिंदी कविता का आरंभ भारतेंदु युगीन कविताओं से है। इस काल के कवियों ने कविता को विकास के नए पथ पर अग्रसर किया। सामाजिक और राजनीतिक

विषयों का समावेश कविताओं में देख पाते हैं। नारी-शिक्षा, बाल-विधवाओं की करुण दशा, वर्णाश्रम व्यवस्था, धर्म की संकीर्णता, परंपरागत रूढ़ियों का विरोध आदि को लेकर कवितायें लिखी गयीं। उनकी वाणी में विकास-चेतना की अभिव्यक्ति थी। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के साथ बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादत्तव्यास और राधाकृष्ण दास आदि इस युग के प्रमुख उल्लेखनीय कवि हैं। देश की दुरवस्था के दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति देनेवाले इन कवियों ने देशोन्नति के उपायों का भी वर्णन किया है। देश की दुरवस्था को प्रेमघन ने ऐसा व्यक्त किया है -

“जदपि जगत में बहु दुःख दुसह समान
पराधीनता के सम चतपि न आन।”²

हिंदी साहित्य के विकास के लिए जो बीजारोपण भारतेंदु ने किया था उसे विशाल वटवृक्ष के रूप में साकार करने का श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को है। पद्य में खड़ीबोली की पूर्ण प्रतिष्ठा करके हिंदी कविता के क्षेत्र में उन्होंने ऐसी अमिट छाप छोड़ी कि हिंदी कविता के विकास के इस चरण को आलोचकों ने द्विवेदीयुग की संज्ञा प्रदान की। अपनी ‘सरस्वति’ पत्रिका के माध्यम से उन्होंने नवीन साहित्यिक आदर्शों की प्रतिष्ठा की। द्विवेदी युग के कवियों ने इतिवृत्तात्मक एवं पौराणिक विषयों को लेकर महाकाव्य, खंडकाव्य या प्रबन्धात्मक कविताएँ लिखीं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अलावा श्रीधर पाठक, मैथिली शरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, सियाराम शरणगुप्त, लोचन प्रसाद पांडेय, रामनरेश त्रिपाठी, उदयशंकर भट्ट आदि इस युग के प्रमुख कवि रहे हैं। काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली को पूर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली। द्विवेदी युगीन कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित है। भाषा, साहित्य और कला की दृष्टि से द्विवेदीयुग संपन्न था।

आधुनिक हिंदी कविता के विकास में द्विवेदीयुग के बाद ‘छायावाद’ युग आता है। मुकुटधर पांडेय ने सबसे पहले इस काव्यधारा के लिए ‘छायावाद’ शब्द का प्रयोग किया। पाश्चात्य साहित्य के ‘रोमान्टिसिज़्म’ या ‘स्वच्छंदतावाद’ की सारी विशेषताएँ छायावाद

में पायी जाती हैं। डॉ.गणपतिचन्द्रगुप्त ने छायावाद के लिए 'स्वच्छंदतावाद' नाम अधिक उपयुक्त माना है। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा छायावाद के प्रमुख चार स्तंभ हैं। गांधी, टागोर, अरविंद, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद आदि महत् व्यक्तियों के विचारों का असर छायावाद पर पडा था। दार्शनिक और आध्यात्मिक परिस्थितियाँ, परंपरागत काव्य रूढ़ियों का विरोध, मानवतावाद की प्रतिष्ठा, प्रकृति में मानवीय चेतना का आरोप, प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यंजना, मुक्तछंद का प्रयोग आदि छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

उस के बाद कवियों ने व्यक्तिचेतना, समाजिक चेतना और राष्ट्रीय चेतना को लेकर कवितायें लिखीं। व्यक्ति चेतना को केन्द्र में रखकर कविता लिखनेवालों में हरिवंशराय बच्चन प्रमुख थे। उनको विद्वानों ने हालावाद के प्रवर्तन का श्रेय दिया है। भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल आदि इस काल के प्रमुख कवि रहे। प्रेम की तीव्रता, यौवन की मस्ती, सौंदर्य की उन्मत्तता आदि हालावाद के प्रमुख विशेषताएँ हैं। छायावादोत्तर युग में राष्ट्रीय चेतना पर कविताएँ लिखनेवाले कवि भी थे। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, रामधारी सिंह दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्रकुमारी चौहान आदि ने अपने ओजस्वी स्वर में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की।

सामाजिक यथार्थ पर बल देनेवाली काव्यधारा है प्रगतिवादी काव्यधारा। राजनीति में जो साम्यवाद या मार्क्सवाद है, साहित्य में वही प्रगतिवाद है। डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार "साम्यवादी विचारों का प्रचार करनेवाला या साम्यवादी लक्ष्य की पूर्ति में योग देनेवाला साहित्य ही प्रगतिवादी साहित्य कहलाता है।"³ हिंदी साहित्य में प्रगतिवादी चेतना का आरंभ १९३६ ई. प्रेमचन्द की अध्यक्षता में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अधिवेशन से हुआ। धर्म, ईश्वर एवं परलोक का विरोध, पूजीपति वर्ग के प्रति घृणा का प्रचार, शोषित वर्ग के प्रति संवेदनात्मक दृष्टिकोण आदि प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख

प्रवृत्तियाँ हैं। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शिवमंगलसिंह सुमन, रांगेय राघव आदि प्रमुख प्रगतिवादी कवि हैं।

अज्ञेय के संपादकत्व में १९४३ में 'तारसप्तक' का प्रकाशन हुआ। इसमें अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारत भूषण अग्रवाल, नेमीचन्द्र जैन, राम विलास शर्मा, प्रभाकर माचवे आदि सात कवियों की कविताएँ संकलित हैं। इनकी कविताएँ परंपरागत मान्यताओं को छोड़कर विषय तथा शिल्प के क्षेत्र में नये-नये प्रयोगों की कविताएँ थीं। अज्ञेय के शब्दों में ये सातों कवि किसी एक स्कूल के नहीं हैं, वे राही नहीं, राहों के अन्वेषी हैं। इन कवियों ने 'प्रयोगवाद' शब्द को छोड़कर 'प्रयोगशील' या 'प्रयोग' शब्द का उल्लेख किया है। अज्ञेय ने कहा है "हमें प्रयोगवादी कहना उतना सार्थक या निरर्थक है, जितना हमें कवितावादी कहना। प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है वह साधन है और दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है दूसरे, वह इस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है। वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है।"^४

सन् १९५१ में दूसरा सप्तक के प्रकाशन के बाद 'नयी कविता' शब्द प्रचार में आया हिंदी साहित्य के लिए 'नयी कविता' भी अज्ञेय की देन है। १९५४ में जगदीश गुप्त द्वारा संपादित नई कविता पत्रिका द्वारा इसे जनस्वीकृति मिली। दूसरा और तीसरा सप्तक के कवि इसमें सम्मिलित हैं। विद्वानों के अनुसार नई कविता में यूरोपीय साहित्य के प्रतीकवाद, बिंबवाद, अस्तित्ववाद, फ्रायडवाद आदि तत्वों का प्रभाव है। जीवन के प्रति आस्था, लघु मानवत्व की अभिव्यक्ति, क्षणवाद आदि नई कविता की विशेषताएँ हैं। "नई कविता जीवन के एक-एक क्षण को सत्य मानती है और उस सत्य को पूरी हार्दिकता और पूरी चेतना से भोगने का समर्थन करती है। क्षण-बोध शाश्वत-बोध का विरोधी नहीं। उसे प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है।"^५

अज्ञेय से प्रेरणा पाकर नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश मेहता तीनों ने मिलकर 'नकेनवाद' का प्रारंभ किया। इसका दूसरा नाम है प्रपद्यवाद। सन् १९६० के बाद तो हिंदी कविता में काव्यान्दोलन की बाढ़-सी आ गई। अकविता, जनवादी कविता, सनातनपंथी कविता, युयुत्सावादी कविता, अस्वीकृत कविता आदि कई आंदोलन साठ के बाद हिंदी कविता में आये। पश्चिम की बीट प्रवृत्ति को लेकर अकविता या श्मशान पीढी आंदोलन चला। इसमें समाज की परंपरागत मान्यताएँ, रूढियों, आदर्शों एवं मर्यादाओं का खुलकर उल्लंघन किया। इस निषेधमूलक काव्यांदोलन को भूखी पीढी नाम से भी अभिहित किया जाता है। जगदीश चतुर्वेदी के संपादन में १९६३ में प्रकाशित 'प्रारंभ' काव्य संग्रह की कविताओं को उन्होंने 'अभिनव काव्य' कहा गया। बाद में यह 'अभिनव काव्य' 'अकविता' नाम से जानने लगा। 'अकविता' पत्रिका द्वारा श्याम परमार ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया। जीवन और परंपरागत मूल्यों से प्रति निषेध स्वर प्रकट करके 'निषेध कविता' आयी।

नई राह की तलाश में कविता में कई परिवर्तन आये। निषेध एवं विद्रोह के साथ संघर्ष भी काव्य का स्वर बनने लगा। युयुत्सावादी कविता, वाम कविता, जनवादी कविता, प्रतिबद्ध कविता आदि कई नामों से कविता जानने लगी। निश्चय ही इन काव्य आंदोलनों में मार्क्सवाद का प्रभाव अवश्य है। इसलिए हम कह सकते हैं कि ये काव्य आंदोलन प्रगतिवादी कविता के नये रूप हैं। १९६२ में वीरेन्द्रकुमार जैन के नेतृत्व में सनातन सूयोदयी कविता का आरंभ हुआ था। डॉ. रवीन्द्र भ्रमर के नेतृत्व में 'सहज कविता' आंदोलन का प्रवर्तन १९६७ में हुआ था। इन दोनों काव्यधाराएँ अकविता या निषेध कविता के विरोध में आयीं। इन काव्य धाराओं में अनास्थामूलक प्रवृत्तियों का विरोध करके आस्थामूलक प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठा हुई थी।

१९७३ में नरेन्द्र मोहन की 'संचेतना' पत्रिका के माध्यम से 'विचार कविता' नामक एक आंदोलन शुरू हुआ। डॉ. हरदयाल, बलदेव वंशी, डॉ. महीप सिंह, रामदरश मिश्र आदि प्रमुख साहित्यकारों ने इसके प्रवर्तन के लिए सहयोग दिया। 'विचार कविता' किसी

विशिष्ट विचारधारा पर अधिष्ठित नहीं। कवि अपने निजी अनुभव पर आधारित तत्वों की अभिव्यक्ति करते हैं। कविता का आधार वैचारिकता होते हुए भी अनुभूति को भी व्यापक स्थान मिला है। अपने परिवेश के प्रति सजग होने के कारण विचार कविता में अनुभव की सहज अभिव्यक्ति है।

विभिन्न वादों से गुज़रकर तत्कालीन समय की प्रतिबद्धता की पूर्ति का निर्वहन करके हिंदी काव्यधारा अपनी लंबी सैर के बाद 'समकालीन कविता' तक आ पहुँची है। मुक्तिबोध के अनुसार कविता कालयात्री है। उन्होंने कहा है कि "नहीं होती कहीं भी खतम कविता नहीं होती कि वह आवेगत्वरित कालयात्री है।"⁵ हमारे अपने काल की धड़कनों को आत्मसात् करके आवाज़ उठाने पर कविता कालयात्री बन जाती है। समकालीन कविता जो है उसे हम किसी विशेष आंदोलन या प्रवृत्ति के अंतर्गत रखा नहीं जा सकते। क्योंकि उसमें दिन-प्रतिदिन जटिल होती हुई जीवन स्थितियों का अंकन है। सामान्य जनता के लिए आवाज़ उठानेवाली समकालीन कविता का आधार निश्चय ही सामाजिक जीवन ही है। समकालीन कवि जन जीवन से गहरा संबंध रखते हैं। समकालीन कविता निश्चय ही वर्तमान जीवन संदर्भों से तादात्म्य स्थापित करती है। जन जीवन से संबंध रखनेवाले कवियों का व्यापक जीवनानुभव ही काव्यानुभूति होकर उभर आता है। अतः इसमें अनुभव की सच्चाई है।

१.२. समकालीनता: अर्थ-स्वरूप

समकालीन शब्द के लिए अंग्रेज़ी में contemporary शब्द प्रचलित है। समकालीन शब्द काल बोध एवं समय बोध की अभिव्यक्ति देता है। समकालीनता अपने समय के प्रति पहचान है। साथ ही साथ उसमें अतीत एवं भविष्य के प्रति पहचान भी निहित है। कल्याण चन्द्र के अनुसार "समकालीनता में वर्तमान बोध के साथ ही अतीत और भविष्य का विवेक सम्मत बोध होता है। यह विशिष्ट वर्तमान बोध ही समकालीनता को अभिव्यक्ति देता है।"⁶

‘समकालीनता’ के पर्याय के रूप में ‘समसामयिकता’ शब्द प्रयुक्त किया जाता है। समसामयिकता अपने आसपास के परिवेश के साथ तालमेल है। कुछ विद्वानों के अनुसार ‘समकालीनता’ एवं ‘समसामयिकता’ में अंतर है। ‘समकालीनता’ एक कालखंड का द्योतक शब्द है तो ‘समसामयिकता’ क्षणिक समय का द्योतन करता है। समकालीनता अपने समय की चेतना को आत्मसात् करने के साथ ही साथ इतिहास बोध पर भी ध्यान रखती है। लेकिन समसामयिकता में इतिहासबोध का लेश मात्र नहीं। अर्थात् समसामयिक रहने का मतलब यह है कि अपने समय के अनुरूप रहना। समसामयिकता के संबंध में लक्ष्मीकांत वर्मा का कहना है - “समसामयिकता से हमारा आशय है देशकाल के दायित्व के साथ-साथ उस क्षण की गहरी तीव्रानुभूति की ग्राह्यता जो परिस्थितियों से उपजती है और बिना पूर्वग्रह के सामाजिक औचित्य के साथ होती है।”⁴

समकालीनता एवं समसामयिकता के साथ विचारणीय अन्य शब्द है ‘आधुनिकता’। अंग्रेज़ी के Modernity का हिंदी रूप है आधुनिकता। आधुनिकता नवीन जीवन मूल्यों का संचय है। वह संपूर्ण समाज की पुरानी मान्यताओं को तोड़ फोड़कर नया रूप प्रदान करती है।

‘आधुनिकता’ अत्यंत महत्वपूर्ण शब्द है। समय विशेष के पश्चात आधुनिकता समकालीनता में बदल जाती है। “समकालीनता को आधुनिकता के विकास के रूप में देखा जा सकता है, बशर्ते इसे कुछ पश्चिमी सिद्धांतों की बैसाखी पर लटका न दिया जाए। वस्तुतः आधुनिकता क्रांति का नैरंतर्य है। आधुनिकता ने स्वतंत्रता का विषयवस्तु के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए आधुनिकता का विकास उत्तर आधुनिकता के रूप में न होकर समकालीनता के रूप में हुआ है।”⁵

समकालीनता एवं आधुनिकता दोनों शब्द एक दूसरे पर आश्रित हैं। आधुनिकता को निरंतर गतिशील बनाने की प्रवृत्ति समकालीनता पर निर्भर है। अर्थात् आधुनिकता को समकालीनता निरंतरता प्रदान करता है। यह ज़रूरी नहीं है कि समकालीन संदर्भ को लेकर लिखी गई रचनाएँ आधुनिक ही हो।

‘समकालीन कविता’ आधुनिक युग की विशिष्ट काव्यधारा है। समकालीन कविता की शुरुआत को लेकर कई मतभेद हैं। १९६० के बाद समकालीन कविता का प्रारंभ माना जाता है। साठ के बाद की इस काव्यधारा को साठोत्तरी कविता नाम से पुकारने लगे। इन साठोत्तरी हिंदी काव्यधारा में अनेक आंदोलन देख पाते हैं। उन सबका मिश्रित रूप ‘समकालीन कविता’ के प्रारंभ में देखते हैं। लेकिन साठोत्तरी दौर के सभी काव्यांदोलनों को समकालीन कविता में समेटना उचित नहीं है। इस समय में कविता को अनेक नामों से पुकारने लगे। वास्तव में ये सभी नाम कविता को पहचानने के लिए मात्र थे। कविता स्वयं अपने लिए एक ज़मीन तलाश रही थी।

बाद में इसे सातवें दशक की कविता और आठवें दशक की कविता कही गयी। आज इस संपूर्ण काल-खंड की कविता को समकालीन कविता कहते हैं। समकालीन कविता का प्रारंभ जब भी हो, लेकिन आज भी मौजूद है।

१९६० के बाद राजनीतिक एवं सामाजिक तौर पर कई घटनाएँ हुई हैं। स्वतंत्र भारत के बारे में नई आशाएँ-आकांक्षाएँ रखनेवाले लोगों के मन में स्वतंत्रता के बाद मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हुई थी। १९६२ के भारत-चीन युद्ध, १९६४ में नेहरू की मृत्यु, १९६५-७१ पाकिस्तान युद्ध आदि ने मिलकर जनता की आशा आकांक्षाओं को झकड़ोर कर रख दिया। सांप्रदायिकता बढ़ने लगी जातिवाद एवं वर्गवाद जैसी कई समस्याएँ बढ़ने लगीं। देश की अर्थ व्यवस्था बिगड़ने लगी। भ्रष्टाचार, आतंकवाद, सांप्रदायिक विद्वेष, भूख, निरक्षरता, और बेरोज़गारी भी बढ़ने लगे। जनता के मन में असुरक्षा का भाव पैदा होने लगा। देश में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ बिगड़ने लगीं। फलस्वरूप सत्ता एवं आम जनता के बीच संबंधों की खाई बढ़ने लगी। ऐसी परिस्थिति में आम आदमी तक व्याप्त नई संवेदना की खोज करनेवाली समकालीन हिंदी कविता मुक्त-कविता के रूप में सामने आयी। समकालीन कविता के पीछे कोई विशेष आंदोलन नहीं

है। कविता में प्रयोगों की भरमार नहीं है। बल्कि वह पूरी व्यवस्था से पीड़ित, दमित आम आदमी की आवाज़ बन गई है।

समकालीन कविता में अपने समय का चित्रण है। डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय के अनुसार - “समकालीन कविता में जो हो रहा है उसका सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमानकाल का बोध हो सकता है, क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते-गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूप में है, ठहरे हुए क्षण या क्षणांश के रूप में नहीं। यह ‘कालक्षण’ नहीं काल-प्रवाह की आघात और विस्फोट कविता है।”^{१०}

रोहिताश्व ने कहा है कि “समकालीन कविता वैविध्यात्मक जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की भाषागत संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है।”^{११} हर युग की कविता में हम देख पाते हैं कि कविता अपनी सामाजिक स्थितियों से साक्षात्कार कर रही है। मुक्तिबोध ने कहा है - “कोई भी नया साहित्यिक आंदोलन उन विशेष कालगति स्थितियों में पैदा होता है जिन्हें हम सामाजिक विकास की महत्वपूर्ण श्रृंखला कहते हैं।”^{१२}

समकालीन कविता का आधार यथार्थ है। इसमें अपने परिवेश के यथार्थ का सीधा-खुलासा चित्रण है। “समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि समकालीन कविता एक ऐसी काव्य चेतना का नाम है, जो छठे दशक के बाद उभर कर सामने आयी, जिसपर विचार तत्व का प्रभाव है, जो अपने परिवेश से प्रतिबद्ध है, जिसमें मोहभंग से उत्पन्न दयनीयता नहीं है, वरन परिवेश से जुड़ाव है। इसलिए वर्तमान संदर्भों का जीती विसंगतियों से जुड़ती और उस पर चोट करती हुई आज की उस कविता को समकालीन कविता माना जाता है। जिसमें व्यवस्था के विरुद्ध सब कुछ कहने का साहस हो, पर मर्यादित रूप में और उसके साथ ही उस व्यवस्था के शिकार आम आदमी के प्रति सच्ची संवेदना है। यही समकालीनता का तर्क है और यही कविता का वास्तविक सरोकार्य”^{१३}

धूमिल, रघुवीर सहाय, अरुण कमल, लीलाधर जगूडी, वेणुगोपाल, आलोक धन्वा, कुमार विकल, कुमारअंबुज, उदयप्रकाश, ऋतुराज, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, इब्बार रब्बी, देवी प्रसाद मिश्र, विष्णु खरे, भगवत रावत, ज्ञानेन्द्रपति, असद जैदी, पवनकरण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पंकज चतुर्वेदी, एकांत श्रीवास्तव, अनामिका, कात्यायनी, निर्मला पुतुल, गगनगिल आदि अनेक कवियों की चर्चा समकालीन कविता में की जा रही है। समकालीन कविता का परिवेश व्यापक है। नवउपनिवेशवाद के दौर से गुजरनेवाली समकालीन कविता को कोई भी चीज़ अछूती नहीं। कविता में अपने समय की भयावहता, आतंक, हिंसा एवं आशंकाओं का चित्रण है। पूँजी, बाज़ार, स्वार्थ और अमानवीकरण के विरुद्ध समकालीन कविता आवाज़ उठाकर जनता को जागृत करने की कोशिश कर रही है। इसलिए ही पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्न समकालीन कविता का भाव संसार बहुत विस्तृत है। समकालीनता के शुरुआती कवि धूमिल के शब्दों में -

“छायावाद के कवि शब्दों को तोल कर रखते थे
 प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे,
 नई कविता के कवि शब्दों को गोलकर रखते थे,
 सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोलकर रखते हैं”^{१४}

१.३. समकालीन कविता का भाव संसार

१.३.१. यथार्थ का अंकन

समकालीन कविता में सामाजिक समस्याओं का अंकन है। अपनी पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की भौति, कल्पना के लिए कविता में कोई स्थान नहीं। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक आदि सभी क्षेत्रों में दृष्टिगत यथार्थ का अंकन अर्थात् विद्रूपताओं या खोखलेपन का उद्घाटन समकालीन कवि अपनी कविता में करते आए हैं। ‘भूखण्ड तप रहा है’ शीर्षक कविता में आज की मूल्यहीन पतनशील दुनिया का चित्रण चंद्रकांत देवताले करते हैं। यातनाओं के दायरे में खड़े रहनेवाली जनता के जीवन यथार्थ का अंकन करते हुए कवि लिखते हैं-

“सरकार भी सरकार बनाने के लिए।
 झाँकती है दीनों की दुनिया में।
 फिर मुट्ठी भर दाने छितराकर।
 लडवा देती है आपस में।
 और एक नाजुक मौका देख माँगती है ताकत।
 उन करोड़ों कमज़ोर लोगों से।
 जिनकी आँधों से जलता हुआ जंगल।
 नींद में रोटी छिनते कुत्ते
 पाँव के पास की गंध पर जमी हुई फकंद
 चेहरों पर यातना का।
 खुदा दुनिया को देखकर अपनी ताकत।
 वे नहीं जानते। ताकत क्या है।
 खडी करके सरकार पूछते है सरकार कहाँ है?”^{१५}

आम आदमी सामाजिक व्यवस्था द्वारा वंचित हैं। रोजमर्रा की ज़िंदगी जीनेवाले आम आदमी पेट भरने के लिए तड़प रहे हैं। जहाँ एक ओर आदमी रोटी के लिए परेशान है वहाँ दूसरी ओर गोदामों में अनाज सड़ रहा है। इस भयावह सच का उद्घाटन करते हुए देवताले लिखते हैं-

“सचमुच कहीं फुटपाथ पर लोग भूखों मरते हैं।
 यहाँ गोदामों में
 अनाज सड़ता है।”^{१६}

१.३.२. राजनीति का स्वरूप

आजकल राजनीति का दबाव इतना तीव्रतर होता है कि किसी को भी उससे बचना मुश्किल है। राजनीति का स्वरूप दिन-प्रतिदिन बदलता रहता है। उच्चादर्शों एवं मानव कल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत भारतीय राजनीति आज उससे कोसों दूर है। कुर्सी को पाने की इच्छा में हमेशा छल और षड्यंत्र रचते हैं। भाषणों में जनहित का स्वर उठाकर

असल में जनता को धोखा देनेवाली राजनीति के बारे में कवि देवराज 'सुबह के बाद' कविता में व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं ये राजनीतिज्ञ या शासक वर्ग ऊँची कुर्सियों पर देवताओं की भाँति कभी मुस्कुराकर या कभी भौंहे उठाकर बैठते हैं। वे हमेशा बरदानी या व्यस्त होने का स्वांग भरते हैं। वे जगह-जगह उद्घाटन के लिए जाते हैं, भाषण करते हैं, पग-पग पर ऊँचे आदर्शों की चर्चा और बखान करते हैं।

हमारे शासकों के बारे में मंगलेश डबराल 'हमारे शासक' नामक कविता में यों व्यक्त करते हैं-

हमारे शासक गरीबों के बारे में चुप रहते हैं
 शोषण के बारे में कुछ नहीं बोलते
 अन्याय को देखते ही वे मुँह फेर लेते हैं
 हमारे शासक खुश होते हैं जब कोई उनकी पीठ पर हाथ रखता है
 वे नाराज़ हो जाते हैं जब कोई उनके पैरों में गिर पड़ता है
 दुर्बल प्रजा उन्हें अच्छी नहीं लगती
 हमारे शासक गरीबों के बारे में कहते हैं कि वे हमारी समस्या हैं
 समस्या दूर करने के लिए हमारे शासक
 अमीरों को गले लगाते रहते हैं
 जो लखपति शतोशत करोड़पति जो करोड़पति रातो रात
 अरबपति बन जाते हैं उनके वे और भी सम्मान करते हैं।⁹⁹

हमारे देश के राजनीतिक दल जो हैं किसी न किसी मामले पर विभिन्न मत प्रकट करते हैं। साधारण लोग उन पर भरोसा रखते हैं। यहाँ कवि ब्रजेश कृष्ण हमें चेतावनी देते हैं कि उनपर भरोसा रखना व्यर्थ है। क्योंकि -

“वे बोलते हैं एक भाषा
 एक जैसा ही उनका वाक्य विन्यास
 एक जैसी ध्वनि और एक जैसी उनकी हँसी।”⁹⁰

१.३.३. व्यवस्था की अमानवीयता

समकालीन कविता में व्यवस्था की अमानवीयता का चित्रण है। व्यवस्था के उत्पीड़न

और दमन से आम आदमी असहाय बन चुके हैं। नए-नए नियमों के आविष्कार से जनता पर किसी न किसी प्रकार के शोषण की व्यवस्था बनाये रखते हैं। धूमिल की कविता 'भाषा की रात' में कवि यों व्यक्त करते हैं-

“हाँ, मैं भी भयभीत हूँ
व्यवस्था की खोह में
हर तरफ
बूढ़े और रक्तलोलुप मशालची
घूम रहे हैं।”^{१९}

लोकतंत्र आज संपन्न वर्ग के हाथ की कठपुतली है। यहाँ शोषक वर्ग का शासन चल रहा है। फलस्वरूप देश भर में गरीबी, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, अशिक्षा आदि अनेक समस्याएँ हैं। राजतंत्र की इस वनतंत्री व्यवस्था के विरुद्ध संगठन करना है। तब कुमार विकल कहते हैं -

“राजपथ की वनतंत्री व्यवस्था में
मैं अकेला और आरक्षित हूँ
हर आदमी का वर्ग उसकी सुरक्षा का घेरा है
जब कभी राजपथ पर आऊँगा
अकेला नहीं,
पूरे मुहल्ले के साथ आऊँगा।”^{२०}

१.३.४. बाज़ारीकरण की अभिव्यक्ति

आज हम उपभोक्तावाद के दौर से गुज़र रहे हैं। खरीदना और बेचना हमारी आदत बन गई है। यहाँ सिर्फ़ क्रेता और विक्रेता है। क्योंकि दुनिया के बाज़ार में सब कुछ बिका जाता है। एकांत श्रीवास्तव अपनी 'बाज़ार' नामक कविता में लिखते हैं कि यहाँ थोड़े लोग ही विक्रेता है बाकी सब लोग क्रेता है। आज लोग 'ब्रांड संस्कृति' के पीछे चल रहे हैं। इस ब्रांड मानसिक स्थिति से लाभ उठानेवाले बाज़ार के संबंध में कवि लीलाधर मंडलोई लिखते हैं-

“यह अकस्मात् ही हुआ कि अपनी औकात से बाहर
 मैं इस सदी के उत्तर प्रयोजित बाज़ार के
 कुतूहल में अकस्मात् जा पहुँचा
 क्रेडिट कार्ड्स हवा में उछल रहे थे और
 मध्यवर्ग के चाहने पर बनावटी हँसी के पार्श्व में कोई लगातार रो रहा था
 घटनाओं के पूर्वानुमान का उछाल ज़ोरों पर था और
 भविष्यकाल के पन्नों पर
 आर्थिक भविष्यफल फेन उठाए नर्तन कर रहा था।”^{२१}

आजकल बाज़ार की स्थिति ऐसी हो गई है कि चीज़ों को अपने मूल वास्तविक रूप में गढ़ नहीं सकता। बाज़ार के मुताबिक चीज़ों का गढ़ना पड़ता है। उनका जो वास्तविक रूप है उससे भिन्न रूप में। बाज़ार तो मुनाफे पर केन्द्रित होने के कारण ऐसा ही करना पड़ता है। मंगलेश डबराल ने ‘बाज़ार’ शीर्षक कविता में लिखा है -

“जो लोग सिर्फ़ सहमी - सी आँखों से देखते रहते हैं।
 वे भी जानते हैं कि यहाँ रखी चीज़ों का कोई विकल्प नहीं है।
 फर्क सिर्फ़ यह है कि जो कुछ आम तौर पर
 जिस तरह दिखता है, वह उस तरह नहीं होता
 यह बाज़ार का एक ठोस आध्यात्मिक आधार है।”^{२२}

अब हमें देखना चाहिए कि हमारे जो गाँव-कस्बे हैं सब बाज़ार में बदल चुके हैं। जहाँ दो लोग इकट्ठा होते हैं वहाँ बाज़ार बन जाते हैं। इस पर कुमार अंबुज की एक कविता है-

“देखते हैं फिर कि जहाँ दो जन हुए इकट्ठे
 वहीं हो जाता बाज़ार
 अब बाज़ार का बनना इस दुनिया की दिनचर्या में
 हर पल होनेवाली एक मामूली सी घटना।”^{२३}

बाज़ार हमें विज्ञापनों के मायाजल में फँसाता है। जिसप्रकार दीपक के पास पतंग आकृष्ट होकर चले जाते हैं उसी प्रकार हम बाज़ार की ओर आकृष्ट होकर चले जाते हैं, और चीज़ों का गुलाम बन जाते हैं।

१.३.५. सांस्कृतिक संकट की अभिव्यक्ति

विश्व गाँव की संकल्पना ने भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओं के विघटन का कारण बन चुका है। संस्कृति के विघटन से मतलब यह है कि भारतीय परंपरा से अलग हो जाना। पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ हमारे समूचे परिदृश्य पर अपसंस्कृति फैल गई है। हमारे रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूषा, भाषा, प्रकृति सब कुछ अब हमारे नहीं रहे हैं। अपनी पहचान को भी खोकर आज हम अस्मिता की तलाश में दौड़ रहे हैं। भारतीय संस्कृति की झलक है यहाँ का पारिवारिक संबंध। लेकिन आज पारिवारिक रिश्तों में ख़ाई बढ़ रही है। पारिवारिक रिश्तों पर आए बदलाव पर समकालीन कवि आशंकित हैं। तब कवि नीलम श्रीवास्तव इस प्रकार लिखते हैं-

“अब ईटों के पुख्ता घर में
हम एकाकी हैं
भावहीन रिश्तों के बस
संबोधन बाकी है
टूट रहे इस घर में
वह घर
जो एक मंदिर था।”^{२४}

१.३.६. मीडिया का प्रभाव

आज हम मीडिया के युग में जी रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति विकास के नए सिरे में हमें ले चलती है। साथ ही साथ सांस्कृतिक अपचय के कारण भी बन चुके हैं। सोशल मीडिया के प्रभाव के कारण दुनिया हमारे निकट आ रही है। लेकिन मानव मानव

के बीच दूरी बढ़ रही है। कवि मंगलेश डबराल ने इसे नए युग के शत्रु के रूप में मान लिया है। कवि कहते हैं -

“वह अपने को कंप्यूटरों, टेलिविजनों, मोबाइलों
 आइपैडों की जटिल आँतों के भीतर फैला देता है
 अचानक किसी महंगी गाडी के भीतर उसकी छाया नज़र आती है
 लेकिन वहाँ पहुँचने पर दिखता है वह वहाँ नहीं है
 बल्कि किसी दूसरी और ज़्यादा नई गाडी में बैठ कर चल दिया है
 कभी लगता है वह किसी फैशन परेड में शिरकत कर रहा है।
 लेकिन वहाँ सिर्फ बनियानों और जाँघियों का ढेर दिखाई देता है
 हम सोचते हैं शायद वह किसी गरीब के घर पर हमला करने चल गया है
 लेकिन वह वहाँ से भी जा चुका है
 वहाँ एक परिवार अपनी गरिबी में ये झँकता हुआ
 टेलिविजन देख रहा
 जिस पर एक रंगीन कार्यक्रम आ रहा है।”^{२५}

बाज़ारीकरण के दौर में मीडिया का हिस्सा बहुत ज्यादा है। विज्ञापनों के मायाबल से बाज़ारीकरण को बढ़ावा देने का कार्य मीडिया कर रही है। यांत्रिक सभ्यता के बारे में कवि ज्ञानेन्द्रपति ‘संशयात्मा’ काव्य संग्रह के ‘आज़ादी उर्फ गुलामी’ शीर्षक कविता द्वारा यों व्यक्त करते हैं -

“यांत्रिक सभ्यता के शीर्ष पर
 उन्होंने केवल कंप्यूटर ही नहीं बनाए है
 आपके दिमाग को भी कम्प्यूटर में बदल दिया है
 जिसका सॉफ्टवेयर वे सणलाई करते हैं
 घर बैठे होम डिलिवरी
 मुफ्त बिल्कुल मुफ्त।”^{२६}

आजकल हम देख पाते हैं कि बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के लोग इंटरनेट, ईमेल, वाट्सएप्प, फेसबुक के शिकार बन गये हैं। सामाजिक मूल्यों पर घात लगानेवाले कई कार्यक्रम मीडिया में चल रहे हैं।

१.३.७. महानगरीय जीवन का अंकन

विकास के दौरान गाँव एवं ग्रामीण सभ्यता विनष्ट हो रही है। गाँव शहर के रूप में बदल रहे हैं। शहरीकरण की प्रवृत्ति तेज़ी से बढ़ गयी है। आधुनिक मानव सुख-सुविधाओं की ओर भाग-दौड़ कर रहे हैं। महानगरों में बसना उनका लक्ष्य बन गया है। महानगरों में मनुष्य जीवन यंत्रवत् बन गया है। सब लोग एक न दूसरी होड के पीछे व्यस्त रहने के कारण किसी के पास दूसरों के लिए समय नहीं है। मानव - मानव के बीच कोई संबंध नहीं है। फ्लैट संस्कृति में जीनेवालों का संबंध प्रकृति से भी तोड़ गया है। वर्तमान समाज में व्यस्त मानव के अमानवीय व्यवहार केदारनाथ सिंह की 'धब्बा' कविता में मिलता है।

“सुबह से पड़ा था
सडक के बीचों बीच
लाल दमकता हुआ खून का धब्बा
अब वह सूखकर
लाल से भूरा
और भूरे से धीरे धीरे काला होता जा रहा था
जो भी उधर जाता था
देखता था धब्बे को
फिर आँख बचा दायें या बायें से
निकल जाता था आगे।”^{२७}

महानगरीय सभ्यता के खोखलेपन का चित्रण कवि मंगलेश डबराल की 'घर का रास्ता' कविता में देखने को मिलता है।

“बहुत बड़े इस शहर में
हमें भी मिली छोटी-सी एक जगह

थोड़ी-सी हवा एक बिस्तर
मुसीबतें याद रखने केलिए
एक डायरी।

* * *

सुबह उठकर सामने से आते
आदमी से पूछा अच्छा तो आप भी है
इस शहर में।”^{२८}

१.३.८. आम आदमी का जीवन संघर्ष

समकालीन कविता के केन्द्र में शोषित, दमित आम आदमी हैं। वे हर तरह के अत्याचार के शिकार एवं उपेक्षित और तिरस्कृत भी हैं। अधिक से अधिक मेहनत करके खून-पसीना बहाकर भी अभावग्रस्त जिंदगी जीने के लिए वे लोग विवश हैं। गरीबी तथा भूख से साधारण जनता पीड़ित है। आम जनता की हालत धूमिल के शब्दों में -

“वहाँ बंजर मैदान कंकालों की नुमाइश कर रहे थे
गोदाम अनाज से भरे पडे और लोग भूखों मर रहे थे
मैं ने महसूस किया कि मैं वक्त के
एक शर्मनाक दौर से गुज़र रहा हूँ
अब ऐसा वक्त आ गया है जब कोई
किसा का झुलझा हुआ चेहरा नहीं देखता है
अब न तो कोई किसी का खाली पेट
देखता है थरथराती हुई टाँगें।”^{२९}

वर्तमान अर्थ व्यवस्था आदमी-आदमी के बीच भेद-भाव का कारण बन जाती है। अमीर और गरीब के बीच की खाई इतनी बड़ी है कि अमीर हमेशा अमीर बन जाते हैं गरीब हमेशा केलिए गरीब बन जाते हैं। ज्ञानेन्द्रपति की कविता ‘विज्ञान शिक्षक से एक छोटी लड़की का सवाल’ में एक विज्ञान शिक्षक से लड़की पूछती है-

“सारे आदमी जब
 एक से ही आदमी है
 जल पर और स्थल पर एक साथ चलकर ही
 बने हैं इतने आदमी
 तो एक आदमी अमीर
 एक आदमी गरीब क्यों हैं।”^{३०}

१.३.९. सांप्रदायिकता का चित्रण

स्वातंत्र्योत्तर भारत का अभिशाप है सांप्रदायिकता। सांप्रदायिकता धर्म एवं जाति के आधार पर समाज को विभिन्न टुकड़ों में बाँटती है। एकता एवं सहयोग की जगह पर विभेद एवं विरोध ही सांप्रदायिकता का तत्व है। लोगों को धर्म के धागे से बाँधने में राजनीति की भूमिका है। देश विभाजन के दौर से शुरू हुई सांप्रदायिकता आज भारत में पहले से अधिक व्यापक और घातक बनी है। आज धर्म राजनीति का हथियार बन गया है। सत्ता में आसीन होने की लालच में राजनीतिज्ञ जनपक्ष को छोड़कर धार्मिक पक्ष को अपनाते हैं। यह जनहित की राजनीति नहीं है। अपराधी न होना ही आज अपराध है। तब कवि राजेश जोशी लिखते हैं -

“सबसे बड़ा अपराध है इस समय
 निहत्थे और निरपराध होना
 जो अपराधी नहीं होंगे/मारे जाएँगे।”^{३१}

मानवता का विनाश हम हर कहीं देख पाते हैं। हरेक व्यक्ति के लिए मानवीय अस्तित्व की जगह आज धार्मिक अस्तित्व ने ही अपनी जगह ले लिया है तब मनुष्य मनुष्य बनने के बजाय हिंदू बनते हैं, मुसलमान बनते हैं, ईसाई बनते हैं, सिक्ख बनते हैं। मानव के एकात्म बोध बिगड़ने पर मनुष्य के हाथों से मनुष्य की हत्या हो रही है। क्रूरता की इस संस्कृति पर कवि कुमार अंबुज लिखते हैं-

“तब आएगी क्रूरता
 पहले हृदय में आएगी, और चेहरे पर न दीखेगी
 फिर घटित होगी, धर्मग्रंथों की व्याख्या में
 फिर इतिहास में और भविष्यवाणियों में
 फिर वह जनता का आदर्श हो जाएगी।
 यह संस्कृति की तरह आएगी, उसका कोई विरोध नहीं होगा।
 कोशिश सिर्फ यह होगी, किस तरह वह अधिक सभ्य
 और अधिक ऐतिहासिक हो।
 यही ज्यादा संभव है कि वह आए।
 और लंबे समय तक हमें पता ही न चले उसका आना।”^{३२}

१.३.१०. दलित जीवन का अंकन

समकालीन साहित्य में बहुचर्चित विषय है दलित चेतना। समकालीन कविता भी दलित विमर्श से अलग नहीं रहती है। भारतीय समाज के निम्न, शोषित, उत्पीडित, प्रताडित दलित जीवन यथार्थ का चित्रण समकालीन कविता में देख पाते हैं। समकालीन दलित कविता उन लोगों की आवाज़ है, जो समाज में अपमानित होकर घृणित स्थितियों से गुज़रते हैं। इतिहास में दलितों का दर्ज ही नहीं हो सकते हैं। उनके अस्तित्व को हमेशा नकारते हैं। अपने चेहरे को दूसरों से छिपाकर सिर झुककर जीने के लिए वे विवश बन गए थे। जो दलित जाति में जन्म लेते हैं वे जीवन भर दलित ही होकर जीने एवं मरने के लिए विवश हैं।

आजकल की व्यवस्था जो है वह भी दलितों को छलाती है। इस खोखली सामाजिक व्यवस्था के बारे में कवि सूरजपाल चौहान ‘पिता’ कविता में लिखते हैं-

“बहुत समझदार थे पिता
 अच्छी तरह से जानते थे
 व्यवस्था को
 जो देखने में लगती है अच्छी

बहुत अच्छी
पर, अंदर से है कितनी धिनौनी
और खोखली।”^{३३}

दलित जागरण के संदर्भ में दलितों का स्वर आक्रोश से उठ रहा है। सदियों से सही जा रही पीडा के विरुद्ध वे आवाज़ उठाते हैं। अपने तीव्र स्वर को सुनाते हैं। कवि ओमप्रकाश वाल्मीकी लिखते हैं -

“बस्स बहुत हो चुका / चुप रहना
निरर्थक पडे पत्थर अब काम आयेंगे
संतप्त जनों के।”^{३४}

ओम प्रकाश वाल्मीकि ने स्पष्ट लिखा है कि -

“दलित साहित्य अपने समय से लड़ते हुए आनेवाले कल की बेहतर ज़िदगी के लिए आशावादी है।”^{३५}

१.३.११. नारी चेतना

भूमंडलीकरण के इस दौर में दुनिया बदलती जा रही है। लेकिन स्त्री के प्रति समाज की सोच में कोई बदलाव नहीं आया है। वह अपनी अस्मिता की तलाश में है। समाज में पुरुष की अपेक्षा स्त्री दोगुना दर्जे की है। घर और समाज में स्त्री के प्रति दृष्टिकोण क्या है, इसका उदाहरण है अनामिका की ‘बेजगह’ कविता-

“राम, पाठशाला जा
राधा, खाना पका
राम, आ बताशा खा
राधा जाडू लगा
भैया अब सोएगा
जाकर विस्तर बिछा
अहा, नया घर है

राम, देख यह तेरा कमरा है
 और मेरा
 ओ पगली
 लड़कीयाँ, हवा धूप मिट्टी होती हैं
 उनका कोई घर नहीं होता”^{३६}

स्वत्वहीन स्त्री लाभ पाने की एक चीज़ बन गयी है। बाज़ारवाद के इस दौर में स्त्री को एक माल के रूप में देख रहे हैं। आजकल स्त्री भोग्य वस्तु बन गयी है।

अनामिका की ‘बेजगह’ की तरह ‘बहन के लिए’ नामक कविता में संजय कुंदन बहन के माध्यम से लड़का और लड़की के प्रति समाज में जो भेद-भाव है वह व्यक्त करते हैं। बचपन से ही अपनी हकों से वंचित पड़नेवाली बहन का चित्रण भाई द्वारा इस प्रकार है-

“जिस वक्त मैं ने सपनों के आकाश में
 उड़ना शुरू किया।
 उसी समय कतरे गए तुम्हारे पंख।”^{३७}

कन्या भ्रूण हत्या, बालिकाओं का वध, यौन शोषण, बलात्कार, देहव्यापार आदि कई तरह के शोषण स्त्रियों के प्रति चल रहे हैं।

१.३.१२. बच्चों की बेचैनियाँ

आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। अर्थात् समाज का भविष्य बच्चों पर निर्भर है। इसलिए उन्हें अच्छी तरह से देख-भाल करना चाहिए और अच्छी शिक्षा देनी चाहिए। लेकिन खेलने पढ़ने की उम्र में आजकल बच्चे तरह-तरह के शोषण का शिकार बन रहे हैं। बाल-मजदूरों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बच्चे काम पर क्यों जा रहे हैं यह बड़ा सवाल बन गया है। तब कवि राजेश जोशी इस प्रकार पूछते हैं-

“क्या अंतरिक्ष में गिर गई हैं सारी गेंदें
 क्या दीमकों ने खा लिया हैं

सारी रंग विरंगी किताबों को
क्या काले पहाड़ के नीचे दब गए है।”^{३८}

कुछ बच्चों के लिए शिक्षा की सारी सुख सुविधायें मिलती हैं तो कुछ सामान्य शिक्षा से भी वंचित हैं, कोसों दूर हैं। चन्द्रकांत देवताले लिखते हैं -

“असंख्य बच्चों के लिए/कीचड़ धूल और गंदगी
से पटी/गलियाँ है जिनमें वे/ अपना भविष्य विन रहे हैं।”^{३९}

बचपन में ही ज़िंदगी का बोझ उठाकर किसी न किसी काम करने के लिए विवश बन चुके हैं कुछ बच्चे। भूख मिटाने के लिए, भर-पेट खाने के लिए विवश बच्चे किसी-न किसी शोषण का शिकार बन जाते हैं। ‘बालम ककड़ी बेचनेवाली लड़कियाँ’ कविता के माध्यम से कवि चंद्रकांत देवताले लिखते हैं-

“कोई लय नहीं थिरकती उनके होठों पर
नहीं चमकती आँखों में।
ज़रा सी भी कोई
गटाठी सी बनी बैठी हैं सटकर।
लड़कियाँ सात सयानी।
और कच्ची उमर की।
फैलाकर चिथड़े पर।
अपने-अपने शैलानावाली मशहूर
बालम ककड़ियों की ढीग।
ये ग्राहक के इंतज़ार में बैठी हैं।
सोचता हूँ बैठी रह सकेंगी क्या।
अंतिम ककड़ी विकने तक भी ये।
ये भेड़ों -सी खदेड़ी जाएगी।”^{४०}

आजकल बच्चे कई तरह के यौन शोषण का भी शिकार बन चुके जाते हैं समकालीन कविताओं में ऐसे कई समस्याओं का अंकन है।

१.३.१३. बुजुर्ग जीवन का यथार्थ

संबंधों में आई हुई दरारों का चित्रण समकालीन कविता के केन्द्र में है। जब संयुक्त परिवार का स्थान अणु परिवार ने हड़प लिया तब से लेकर वृद्धजनों की स्थिति निराशाजनक हुई। बुजुर्गों के प्रति अनादर, अकेलापन, उपेक्षा की स्थिति आदि हर कहीं देख पाते हैं। माँ-बाँप के ज़िदगी भर के रस चूसकर जीवन की सांध्यवेला में उन्हें सहारा बनने के बदले बच्चे या अन्य बंधु-बाँधव उन्हें नकारात्मक भाव से देखकर उपेक्षित करते हैं। अनामिका की कविता 'जूते' वृद्ध दंपतियों पर केन्द्रित है।

“हर घर में
अलग-अलग
है उनका कोना
अलग-अलग दिशाओं से आते हैं
थक्कर चकनाचूर और धूल-धूसर
आते हैं जैसे वृद्ध दंपति
पार्क की बेंच पर।”^{४१}

इस कविता में वृद्ध दंपतियों की तुलना कोने में पड़े जूते से की गई है। 'वृद्धायें धरती का नमक है' नामक कविता के माध्यम से अनामिका ने घर में वृद्धजनों की स्थिति इस प्रकार दिखाती हैं-

“रहती है वृद्धायें, घर में रहती है
लेकिन ऐसे अपने होने की खातिर हों क्षमाप्रार्थी
लोगों के आते ही बैठक से उठ जाती
छुप-छुपकर रहती हैं छाया-सी, माया-सी।”^{४२}

कुमार अंबुज की कविता 'थकान' जीवन के अंतिम वक्त में अकेले होनेवाले वृद्धों की ओर इशारा करती है-

“थकी हुई पीली रोशनी है
जिसमें मेरे साथ चल रही है

एक पुरानी रोशनी की परछाई
सीढियों पर किसी के हाँफने की आवाज़ है
एक बूढ़ा है जो अकेला हो गया है अपने अंतिम वक्त में।”^{४३}

१.३.१४. प्राकृतिक सजगता

समकालीन कविता के केन्द्र में पर्यावरण है। प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने के कारण कई समस्याएँ पैदा हुई हैं। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रवृत्तियाँ प्रकृति को बिगाड देती हैं। जल, मिट्टी, वायु, सब प्रदूषित होते जा रहे हैं। अंतरीक्ष में आज़ोन पर्त में छेद आए हैं। प्रकृति की स्वाभाविकता नष्ट होने के कारण मौसम चक्र भी अस्वाभाविक बन चुका है। मानव के अनियंत्रित हस्तक्षेप प्रकृति की सारी चीज़ों में अपना अधिकार जमा लिया है। नदी, पर्वत, चट्टान, पेड़-पौधे इन सबके प्रति समकालीन कवि ध्यान देते हैं।

नगरीकरण के प्रभाव से नदी मानव द्वारा कैसे कैद बन गई है ‘नदी और नगर’ नामक कविता में ज्ञानेन्द्रपति व्यक्त करते हैं -

“नदी के किनारे
नगर बसता है
नगर के बसने के बाद
नगर के किनारे से नदी बहती है।”^{४४}

हमारे प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने का कारण प्रकृति पर मानव का अनियंत्रित हस्तक्षेप ही है। इसलिए आजकल मानव कई तरह की प्राकृतिक आपत्तियों का सामना करने के लिए विवश बन चुके हैं। ‘नदी और साबुन’ शीर्षक कविता में कवि ज्ञानेन्द्रपति लिखते हैं -

“स्वार्थी कारखानों का तेज़ाबी पेशाव झेलते
बैंगनी हो गयी तुम्हारी शुभ त्वचा
हिमालय के होते भी तुम्हारे सिरहाने
हथेली-भर की एक साबुन की टिकिया से
हार गयीं तुम युद्ध।”^{४५}

आकाश से बरसनेवाले पानी को संजोने की व्यवस्था भी यहाँ नहीं है। प्रकृति पर बिना ध्यान करके आगे बढ़ें तो ऐसा एक दिन आयेगा उस दिन अपनी प्यास से भी लड़ने के लिए हम विवश बन जायेंगे।

१.३.१५. किसानों का चित्रण

भारतीय अर्थ व्यवस्था का आधार कृषि और किसान है। निश्चय ही खेती और किसानों हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। लेकिन वैश्वीकरण की स्थिति इस रीढ़ पर आघात पहुँचा देती है। अपनी चलाकी से शोषण करनेवाले शोषकों के कारण दिन-प्रतिदिन वे पिसे जा रहे हैं। जीने के लिए किसी-न-किसी उपाय न मिलने के कारण वे आत्महत्या कर लेते हैं। जादूगरों के देश में इसके अलावा वे क्या करें? कवि अरुणाभ सौरभ लिखते हैं-

“इधर मायाजाल इन्द्रजाल फैलाकर
और मारण-मोहन -उच्चाटन से
हमें वश में कर ले
कोई सत्ता का जादूगार
और मिर मिराए मेमने सा किसान
बलि के लिए तैयार
था आत्महत्या के लिए
जादूगारों के देश में।”^{४६}

कृषिप्रधान देश में कृषक आत्महत्याएँ - इस मामले पर सोचने के लिए समकालीन कवि हमें विवश करते हैं। किसानों के जीवन के केन्द्र में लिखी गई एक कविता है संजीव बख्शी की ‘उजास’। किसानों के अंधकार को दिखानेवाली कविता इस प्रकार है-

“एक गाँव का किसान
धुप्प अंधकार में
चलकर पहुँच जाता है

अपने खेत
 वह अपने खेत पर
 फैले अंधकार से
 अपने भीतर के
 अंधकार को मिलाता है
 खेत का हो या
 अपने भीतर का
 किसान अंधकार को भी
 उसकी उजास से जानता है।”^{४७}

समकालीन कवि जीवन की भयावह स्थिति को व्यक्त करने के लिए ‘अंधकार’ को बिंब के रूप में स्वीकारते हैं।

१.३.१६. आदिवासी जीवन यथार्थ

आदिवासी जीवन की विसंगतियों पर भी समकालीन कवि दृष्टि डालते हैं। सदियों से लेकर ये लोग जंगल को अपना कहकर वहीं निवास करते हैं। जंगल के साथ उन्हें गहरा लगाव है। लेकिन बाहर से आए हुए अन्य लोगों से वे कई तरह के शोषण का शिकार बनते हैं। विकास की अनगढ़ अवधारणाओं को लेकर सरकारी योजनाओं के बल पर आनेवाले शोषकों से समकालीन कवि नीरज नीर ‘खरगोश शिकारी कुत्ते और जंगल का विकास’ नामक कविता के माध्यम से साफ-साफ कहते हैं-

“तुम अपने आपके सिवा कुछ जानते ही नहीं
 तुम आना चाहते हो क्योंकि
 तुम्हें दिखाई देता है अपना विकास
 हमारे विकास में
 तुम्हें हमारे पिछडेपन से कोई मतलब नहीं
 तुम खरगोशों के लिए जंगल साफ करना चाहते हो
 अपने शिकारी कुत्तों के साथ।”^{४८}

जंगल के भीतर की जो ज़िंदगी है उस पर कवि व्याकुल हैं। भूख, बीमारी और अशिक्षा, स्त्रियों के प्रति यौन शोषण, कुपोषण आदि से तडपने की नियति है उन लोगों की। ऐसी हालत में नयी आशाओं को लेकर जंगल से बाहरी दुनिया की ओर जानेवाले युवाओं के बारे में कवि कहते हैं-

“कुछ रास्ते जो निकलते हैं
जंगल से बाहर की ओर
उस पर कभी-कभी कोई युवा
जुगुनुओं के पीछे-पीछे
निकल आता है।
कंधे पर बहंगी लिए
जहाँ वह अभिशप्त होता है
पुर्वाग्रहों की बेडियों में जकड़े जाने के लिए
और फिर करना रहता है, सतत संघर्ष”^{४९}

जंगल के बाहर भी उन्हें कोई सहारा नहीं है। वहाँ भी वे बड़े-बड़े साहबों के शोषण का शिकार बन जाते हैं।

१.३.१७. पारिवारिक संबंधों में तनाव

परिवार समाज का अभिन्न अंग है। मानव को सामाजिक ढंग से जीने के लिए परिवार तैयार करते हैं। व्यक्ति को आत्मबल प्रदान करके समाज के विकास में हिस्सेदार बनाने का दायित्व परिवार को है। परिवार को परिवार का रूप देने में वहाँ के सदस्यों की महत्वपूर्ण भागीदारी होती है।

आजकल घर-गृहस्थी में प्रेम दिखावा बन गया है। किसी न किसी माँग के पीछे दौड़नेवाले लोगों में आपसी प्रेम के लिए कोई समय नहीं है। कवि संजय कुंदन इस प्रकार लिखते हैं-

“हम प्रेम करने के लिए मिले थे
पर हमने प्रेम को ही
सबसे ज़्यादा स्थगित किया
अपनी गृहस्थी में।”^{५०}

माँ-बाप, पति-पत्नी, बेटा-बेटी अन्य रिश्तेदार ये सब मिलकर परिवार को परिवार का रूप देते हैं। लेकिन आजकल यंत्रवत् जीवन जीनेवाले परिवार के सदस्य आपस में न मिल पाते हैं, न बोलते हैं, न खुशियाँ मनाते हैं। सोशल मीडिया की दुनिया में अपने को स्वयं खो दिए हैं। ए.अरविंदाक्षन की कविता ‘फासला’ में वे लिखते हैं -

“आदमी और आदमी के बीच
कई आदमी गायब हैं
एक अनिश्चित फासला है।
इसलिए आदमी और आदमी के बीच
कोई ठोस बात होती नहीं
वे देखते भर हैं”^{५१}

आज सारे शहर ही नहीं, छोटे मोहल्ले ही नहीं, पड़ोसी ही नहीं सिर्फ एक परिवार के लोग भी आपस में न जानते हैं।

१.३.१८. आतंकवाद

देश के चारों ओर आतंकवाद फैल गये हैं। जनता इस बात पर बेचैन है कि कल सुबह किस भयावह समाचार से दुनिया जागेगी। निरपराधियों को भी हत्या का शिकार बनाने में आतंकवादी न हिचकते हैं। समकालीन भारतीय समाज कई आतंकी घटनाओं का सामना कर रहा है। ‘हत्यारों का घोषणा पत्र’ नामक कविता में कवि मंगलेश डबराल व्यक्त करते हैं-

“हम जानते हैं कि हमने कितनी हत्यायें की
कितनों को बेवजह मारा-पीटा है सताया है

औरतों और बच्चों को भी हमने नहीं बखशा
जब लोग रोते-विलखते थे, हम उनके घरों को लूटते थे
चलता रहा हमारा खेल परदे पर और परदे के पीछे भी।”^{५२}

१.३.१९. निष्कर्ष

संक्षेप में कहें तो समकालीन कविता अपने समय की सारी गतिविधियों को लेकर चल रही है। भूमंडलीकरण, निजीकरण, आर्थिक उदारवाद, बाज़ारीकरण आदि कई चुनौतियों को आधुनिक समाज सामना कर रहा है। समकालीन कवि अपने आसपास के जीवन को, तत्कालीन परिस्थितियों को स्वाभाविक एवं सहज ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

भाषा की दृष्टि से देखें तो समकालीन कविता की भाषा यथार्थ के अंकन की भाषा है। बोलचाल के शब्दों को भी कविता में स्थान मिलता है। सत्ता के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए क्रोध की अपेक्षा व्यंग्य को भी समकालीन कवि स्वीकार करते हैं। अनेक बिंबों, प्रतीकों एवं मुहावरों का प्रयोग अपने स्वेच्छानुसार कर रहे हैं। कभी-कभी समकालीन समस्याओं का अंकन मिथकीय धरातल पर प्रस्तुत करते हैं। सांप्रदायिकता, आतंकवाद, राजनीति, सत्तालोलुपता, स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण, बच्चों की समस्याएँ, पर्यावरणीय समस्याएँ, दलितों की समस्याएँ - इन सभी को प्रभावशाली ढंग से समकालीन कवि प्रस्तुत कर रहे हैं।

समकालीन कवि इस बात पर बल देते हैं कि मानवीय मूल्य घट रहे हैं। मानव-मानव के बीच दरार बढ़ रही है। दया, करुणा, ममता, स्नेह सब खोकर आपसी संबंधों में भी किसी-न-किसी मुनाफा खोजकर हिंसा के पीछे भाग दौड़ करनेवालों को समकालीन कविता चेतावनी देती है। मानवीय संवेदना के बहुआयामी पहलुओं को समकालीन कविता गहराई से स्पर्श करती है।

संदर्भ सूची

१. डॉ. बी.एफ. शेख - समकालीन हिंदी कविता और कवि - पृ.सं.११.
२. प्रभाकर श्रोत्रीय - कालयात्री है कविता - पृ.सं.३२
३. डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त -साहित्यिक निबंध, पृ.सं.५११
४. अज्ञेय - दूसरा सप्तक (भूमिका), पृ.सं.७
५. डॉ.नगेन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.६३०
६. डॉ.मृत्युंजय उपाध्याय - साहित्य की दिशाएँ, पृ.सं.३७
७. कल्याण चन्द्र - समकालीन कवि और काव्य, पृ.सं.१०
८. लक्ष्मीकांत वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ.सं.२६३.
९. ए.अरविंदाक्षन - समकालीन हिंदी कविता, पृ.सं.१५
१०. विश्वंभर नाथ उपाध्याय - समकालीन कविता की भूमिका, पृ.सं.३
११. रोहिताश्व - समकालीन कविता और सौंदर्य बोध, पृ.सं.१०
१२. सं. नेमिचन्द्र जैन - मुक्तिबोध रचनावली - भाग-५, पृ.सं.३१८
१३. कल्याण चंद्र - समकालीन कवि और काव्य, पृ.सं.२४
१४. धूमिल - कल सुनना मुझे, पृ.सं.३६
१५. चंद्रकांत देवताले - भूखंड तप रहा है, पृ.सं.३२-३३
१६. चंद्रकांत देवताले - दीवारों पर खून से, पृ.सं.४५
१७. मंगलेश डबराल - नये युग में शत्रु, पृ.सं.२४
१८. ब्रजेश कृष्ण - बहुत उन्मादित हैं वे, हंस, Feb २०१८, पृ.सं.३८
१९. धूमिल - संसद से सड़क तक, पृ.सं.९२
२०. कुमार विकल - संपूर्ण कविताएँ, पृ.सं.५३
२१. लीलाधर मंडलोई - देखा -अदेखा, पृ.सं.२१
२२. मंगलेश डबराल- आवाज़ भी एक जगह है, पृ.सं.५८
२३. कुमार अंबुज - अतिक्रमण, पृ.सं. ५६.
२४. नीलम श्रीवास्तव - ज्ञानोदय- जुलाई २००४, पृ.सं.७१-७२
२५. मंगलेश डबराल - नये युग में शत्रु, पृ.सं.१४
२६. ज्ञानेन्द्रपति - कवि ने कहा, पृ.सं.९९

२७. डॉ.बी. विजयकुमार - कालयात्री कविताएँ, पृ.सं.५७
२८. मंगलेश डबराल - घर का रास्ता, पृ.सं.७६-७७
२९. धूमिल - संसद से सड़क तक, पृ.सं.३५
३०. ज्ञानेन्द्रपति - कवि ने कहा, पृ.सं.१८
३१. राजेश जोशी - नेपथ्य में हैंसी, पृ.सं.३५
३२. कुमार अंबुज - प्रतिनिधि कवितायें, पृ.सं. ४२
३३. सूरजपाल चौहान - कब होगी वह भोर, पृ.सं.२२
३४. सं. डॉ.बी.विजयकुमार - कालयात्री कविताएँ, पृ.सं.७४.
३५. ओम प्रकाश वाल्मीकी - दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, पृ.सं.२०
३६. अनामिका - खुरदुरी हथेलियाँ, पृ.सं.१५
३७. संजय कुंदन - आजकल, जून २०१९, पृ.सं.४६
३८. राजेश जोशी - नेपथ्य में हैंसी, पृ.सं.२३
३९. चन्द्रकांत देवताले - लकड़बंधा हैंस रहा है, पृ.सं.७८
४०. चंद्रकांत देवताले - उसके सपने, पृ.सं.१०३
४१. अनामिका - दूब -धान, पृ.सं.११५
४२. अनामिका -खुरदुरी हथेलियाँ, पृ.सं.४९
४३. कुमार अंबुज - प्रतिनिधि कविताएँ, पृ.सं.४५.
४४. ज्ञानेन्द्रपति - कवि ने कहा, पृ.सं.२३
४५. ज्ञानेन्द्रपति - कवि ने कहा, पृ.सं.२४
४६. अरुणाभ सौरभ - जादूगरों के देश में, हंस-फरवरी २०१९, पृ.सं.२७
४७. संजीव बख्शी - उजास, हंस ओगस्त २०१८, पृ.सं.३३
४८. नीरज नीर - खरगोश, शिकारी कुत्ते और जंगल का विकास, हंस फरवरी २०१८, पृ.सं.३९
४९. नीरज नीर - जंगल के रास्ते, हंस- फरवरी २०१८, पृ.सं.३९.
५०. संजय कुंदन - गृहस्थी - आजकल जून २०१९, पृ.सं.४६
५१. ए.अरविन्दाशन - आसपास, पृ.सं.४७
५२. मंगलेश डबराल - हत्यारों का घोषणा पत्र - हंस, मई २०१९, पृ.सं.३६.

दूसरा अध्याय

मानवीय संवेदना और साहित्य का विश्लेषण

मानव और साहित्य का संबंध युग-युगों का है। अपने जीवन के अनुभवों एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है साहित्य। साहित्य संवेदनाओं का भंडार है। मानव स्वानुभूति की संवेदनाओं को साहित्य की विभिन्न विधाओं में व्यक्त करता आ रहा है। मानव के अस्तित्व के साथ साहित्य का अस्तित्व भी रहेगा। साहित्य और समाज का अटूट संबंध है। समय और परिवेश के अनुसार समाज में कई तरह के परिवर्तन होते हैं। नए-नए परिवर्तन के साथ नई-नई स्थितियों का भी सामना करना पड़ता है। इसलिए हर ज़माने का साहित्य टकराहटों और संघर्षों से आगे बढ़ता रहा है।

साहित्य मानव जीवन से गहरा संबंध रखता है। इसलिए सामाजिक जीवन की जटिलताओं एवं संकीर्णताओं का अंकन इसमें होना स्वाभाविक है। ए. अरविंदाक्षन के शब्दों में - “हम साहित्य उसी को कहते और मानते हैं जो सामाजिक जीवन के नाना स्रोतों से अपना प्राण रस खींचता है और जो कुछ वह सामाजिक जीवन से ग्रहण करता है उसे ही कलात्मक रूप में पुनः रचित करते हुए अपने समूल मानवीय सरोकारों के साथ समाज को वापस लौटा देता है। गजानन माधव मुक्तिबोध ने साहित्य की रचना प्रक्रिया को इसी संदर्भ में बाह्य का अभ्यंतीकरण और अभ्यंतर का बाह्यीकरण कहा है।”¹

साहित्य में कविता सर्वाधिक संवेदनशील विधा रही है। साहित्य की शुरुआत से लेकर आज तक कविता अपनी स्वानुभूति को संवेदनात्मक अभिव्यक्ति करने में सक्षम रही है। मानवीय संवेदना के स्तर पर साहित्य या कविता का विश्लेषण करने के पहले संक्षिप्त रूप से संवेदना के कोशगत अर्थ एवं स्वरूप से परिचय पाना समीचीन होगा।

२.१. संवेदना

किसी भी समाज के टिकने का मूल आधार 'संवेदना' है। मानवता या मानवीयता को कायम रखने का मूल तत्व है वह। वास्तव में संवेदना शब्द मनोविज्ञान से जुड़ा हुआ शब्द है। अंग्रेज़ी में इसे sensation कहते हैं। sensation का अर्थ है - ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव। लेकिन यह ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव व्यक्ति विशेष पर आधारित है। एक ही दृश्य को देखने पर विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न तरह के अनुभव होते हैं। अर्थात् एक ही आलंबन से व्यक्ति विशेष के अनुसार विभिन्न तरह के उद्दीपन होते हैं।

मानव मन भावों का सागर है। उनमें सद्वृत्तियाँ एवं असद्वृत्तियाँ भी होती हैं। सद्वृत्तियाँ ही मनुष्य को मनुष्य बनाती हैं। संवेदना का सीधा संबंध प्रेम, दया, करुणा, ममता इत्यादि सद्वृत्तियों से है। मानवता युक्त समाज का निर्माण इन सद्वृत्तियों के आधार पर संभव हो पाता है। औरों की पीड़ा वेदना या तनाव से जब मानव तादात्म्य प्रकट कर सकते हैं, या अंदर ही अंदर वह अपना दुःख समझ सकते हैं, और उनके समान वेदना का अनुभव कर सकते हैं वही संवेदना है। जबकि मनोविज्ञान में संवेदना का अर्थ ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव तक सीमित है तो साहित्य में यह मात्र ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव नहीं, बल्कि मानव मन के अतल अंतस में वासना रूप में स्थित सद्वृत्तियों तक व्याप्त है।

२.२. संवेदना का कोशगत अर्थ

वेदना शब्द के साथ सं उपसर्ग जोड़कर संवेदना शब्द बना है। सम्यक + वेदना ही संवेदना है। संस्कृत हिंदी कोश में संवेदना शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है - "सम + विद् + ल्युट अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान, जानकारी, तीव्र अनुभूति आदि।"^२ "सम + विद् + ल्युट - इसमें 'सम' उपसर्ग है। 'विद्' धातु है। विद् शब्द का अर्थ है 'ज्ञान' और इसके साथ 'सम' उपसर्ग जुड़ जाने से संवेदना का अर्थ समान ज्ञान या समान वेदना हो जाता है।"^३ "संवेदना - संज्ञा (स्त्री) सम वेदना - किसी के शोक, दुःख, कष्ट या हानी के प्रति सहानुभूति।"^४

मानक हिंदी कोश भाग ५ में संवेदना का अर्थ इस प्रकार बताया गया है - “ (१) मन में होनेवाला अनुभव या बोध, अनुभूति (२) किसी के कष्ट को देखकर मन में होनेवाला दुःख। (३) किसी की वेदना देखकर स्वयं भी बहुत कुछ उसी प्रकार की वेदना का अनुभव करना- सहानुभूति (४) उक्त प्रकार का दुःख या सहानुभूति प्रकट करने की क्रिया का भाव (कन्डोलेंस)”^५ मानक अंग्रेज़ी हिंदी कोश में संवेदना से जुड़े हुए कई शब्द हैं। sympathetic, sympathise, sympathy. Sympathetic का अर्थ इस प्रकार है - “सदय, अनुकंपा, सहानुभूतिपूर्ण, संवेदनिक, सहृदय, हमदर्द, करुणापूर्ण, सहानुभूति संबंधी, हमदर्दी का, सहानुभूति जन्य, सहानुभूतिकारी, करुणाजनक, करुणा, दयालु।”^६ Sympathise - “सहानुभूति रखना, हमदर्दी दिखाना या रखना, हमदर्द होना, सहानुभूति प्रकट करना किसी व्यक्ति के भावों या विचारों में भागीदार होना, किसी के विचारों या भावनाओं से सहमत होना।”^७ Sympathy - संवेदन, सहानुभूति, हमदर्दी, समवेदना, समभाव, सहभाव, किसी एक ही भाव के एक साथ ही प्रभावित होना, करुणा, दया, रस, सह दुःखिता, सहमति, सद्वृत्ति”^८

उच्चतर हिंदी - अंग्रेज़ी कोश के अनुसार संवेदना का मतलब इस प्रकार है-“1. sensitivity, sensation 2. sensibilism.”^९ सामयिक प्रशासनिक कोश के अनुसार - सांत्वना, दिलासा, सहानुभूति, condolence, consolation, sympathy.”^{१०}

हिंदी विश्व कोश के अनुसार - “संवेदना - अनुभव करना। सुख-दुख आदि की प्रतीति करना। क्लेश, आनंद, शीत, ताप आदि को मन में मालूम करना प्रकट करना, जताना।”^{११} नालन्दा विशाल शब्द सागर में बताया गया है - “संवेदना मन में होनेवाला बोध या अनुभव। किसी को कष्ट में देखकर मन में होनेवाला दुःख या सहानुभूति।”^{१२}

हिंदी शब्दकोश के अनुसार संवेदना- “अनुभूति, सहानुभूति जैसे हार्दिक संवेदना प्रकट करने का भाव, दुःख की अनुभूति।”^{१३}

२.३. संवेदना की परिभाषाएँ

संवेदना शब्द को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। हिंदी साहित्य कोश भाग-१ में संवेदना शब्द पर विचार किया गया है। “साधारणतः संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मूलतः वेदना या संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। मनोविज्ञान में इसका सही अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसके अनुसार संवेदना उत्तेजना के संबंध में देहरचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रक्रिया है, जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है। उदाहरण के रूप में हरी वस्तु, हरे रंग को देखने की संवेदना मात्र है। उत्तेजना का हमारे मन-मस्तिष्क तथा नाड़ी तंतुओं द्वारा प्रभाव पड़ने पर ही हमें उसकी संवेदना होती है। आगे भी लिखा गया है कि - संवेदना हमारे मन की चेतना की वह कूटस्थ अवस्था है जिसमें हमें विश्व की वस्तु विशेष का बोध न होकर उनके गुणों का बोध होता है।”^{१४}

डॉ. नगेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक और साहित्य शास्त्रीय अर्थ पर बल देकर संवेदना शब्द को ऐसा व्यक्त किया है - “मूलतः संवेदना का अर्थ है ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव अथवा ज्ञान किंतु आजकल सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति का अर्थ में होने लगा है। मनोविज्ञान में अब भी इस शब्द का प्रयोग मूल अर्थ में ही किया जाता है और इस अर्थ में यह किसी बाह्य उत्तेजन के प्रति शरीर तंत्र की सचेतन प्रक्रिया होती है। साहित्य में इसका प्रयोग स्नायविक संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं के लिए ही अधिक होता है। इस प्रकार साहित्य संदर्भ में संवेदनशील मन की प्रतिक्रिया की ही शक्ति है, जिसके द्वारा संवेदनशील व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के सुख-दुःख को समझकर उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है।”^{१५} “संवेदना हमारे मन की चेतना की वह कूटस्थ अवस्था है जिसमें विश्व की वस्तुविशेष का बोध न होकर उसके गुणों का बोध होता है।”^{१६}

इसके अलावा संवेदना के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। डॉ.नामवर सिंह के अनुसार - “संवेदना एक नैतिक दायित्व है, जिसके अनुसार आज के उपेक्षित और कल के अपेक्षितों के लिए साहित्य रचने की आवश्यकता है।”¹⁶ डॉ.निधिगुप्ता के अनुसार - “सहृदय के हृदय में स्थित भाव की गहन अनुभूति का नाम संवेदना है।”¹⁷

डॉ. पी.ए.रघुराम के अनुसार “संवेदना की जागृति का क्षण आत्म साक्षात्कार का भी क्षण होता है।”¹⁸

डॉ. शिवकुमार सी.एस हडपद के अनुसार - “संवेदना का संबंध मन के ज्ञानात्मक पहलू और अनुभूति के भावात्मक पहलू से होता है। जिसमें मनुष्य को आशा, आकांक्षाओं, सुख-दुःख, राग, लोभ, द्वेष, घृणा, लज्जा, ग्लानि, स्नेह, करुणा, सहानुभूति जैसे भाव निहित हो सकते हैं। संवेदना मानवीय संबंधों में ज्ञानात्मक और भावात्मक इन दो रूपों में रची -बसी है।”¹⁹ कल्याण चंद्र के अनुसार - “यथार्थ परिवेश से सम्यक ज्ञान का सूक्ष्म मानसिक अनुभूतियों में पर्यावसान ही संवेदना है। संवेदना हमारे ज्ञान तत्व का परमाणु है।”²⁰

२.४. मानवीय संवेदना

मानव भावप्रधान प्राणी है। मानवीय मन में कई तरह के भाव विद्यमान हैं। अपने भौतिक संसार से संबंध रखने के कारण मानव मन में स्थित ये विभिन्न भाव कभी सीधे और कभी अप्रत्यक्ष ढंग से बाहर उमड़ आते हैं। बाहरी परिवेश की घटनाओं से उनकी उत्तेजना दो तरह से होती है। कभी अपने परिवेश से जुड़े होकर सुख की अनुभूति हो तो कभी दुःख की अनुभूति। अपनी बाहरी जगत् में घटित घटनाओं के प्रति अंतर्मन में जो परिवर्तन होते हैं वही उनकी संवेदना है।

मानवीय संवेदना के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है - “नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनमें संबंध रखनेवाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार

अनुभूति के भिन्न भिन्न योग संघटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। यह भाव या मनोविकार ही मानवीय संवेदना कहलाता है। यह मानवीय संवेदना प्रत्येक व्यक्ति के अंतर निहित रहती है। मानव के सुख और दुःख की मूल अनुभूति ही विषय भेद के अनुसार प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूप धारण करता है।^{२२} मानव जीवन में हर व्यवहार मनोविकार के अनुसार ही होते हैं। इन मनोविकारों से उत्पन्न होनेवाली अनुभूतियों में भिन्नता अवश्य है। व्यक्ति विशेष एवं विषय बोध की विभिन्नता के कारण एक ही मनोविकार से उत्पन्न होनेवाली अनुभूतियों में अंतर आते हैं।

बर्ट्रेण्ड रसेल ने सुख एवं दुःख को इस प्रकार परिभाषित किया है। सुख- “सुख सेन्सेशन का लक्षण या अन्य मानसिक घटना है, जिसमें किसी घटना के बावत प्रेरित या संकल्पित प्रतिवर्तन के कारण उक्त घटना के घटित होने को प्रवर्द्धित किया जाता है।”^{२३} दुःख - “दुःख सेन्सेशन का लक्षण या अन्य मानसिक घटना है, जिसमें किसी घटना के बावत प्रेरित या संकल्पित प्रतिवर्तन के कारण कम या अधिक परिवर्तन उक्त घटना के अवसान में होता है।”^{२४} अपने ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभव के द्वारा सुख व दुःख की अनुभूति मानव प्राप्त करते हैं। अर्थात् मानव जीवन में अनुभूतियों का आधार सुख और दुःख ही है। मानव जीवन रूपी सिक्के के दो पहलू हैं सुख और दुःख।

२.५. साहित्य और मानवीय संवेदना

साहित्यकार हमेशा विचारवान हैं। वे अपने आस-पास के परिवेश से प्राप्त अनुभवों के आधार पर विचारधारा का निर्माण करते हैं। साहित्यकार के सामाजिक अनुभव ही उनकी रचनाओं में प्रतिबिंबित होते हैं। “साहित्य में गृहित समाज का आशय इतना व्यापक होता है कि उसकी सीमा में विश्व की संपूर्ण मानव आबादी नहीं अपितु सारे चर-अचर, गोचर-अगोचर, जड़-जंगम, चेतन-अचेतन आदि आसानी से समाहित हो जाते हैं। साहित्य के विश्व समाज से बाहर कुछ भी नहीं होता है।”^{२५}

मानव समाज मानव मूल्यों पर आधारित है। सामाजिक परिवेश के अनुरूप मूल्य निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं। नए मूल्यों के सृजन एवं विनाश मानवीय संवेदनाओं पर प्रभाव डालते हैं। मानवीय संवेदना ही साहित्य का आधार है। वही उसकी प्राणवायु है। मानव के अंतर्मन में निहित भाव या मनोविकार के आधार पर मानवीय संवेदनाएँ भी विभिन्न प्रकार की होती हैं।

मनुष्यता का आधारतत्व करुणा है। इसलिए ही मानवीय संवेदना का सर्वाधिक प्रभावी अवतरण 'करुणापरक संवेदना' में देख पाते हैं। करुणा के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है - "करुणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दुःख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। आनंदित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देखकर होते हैं जो या तो हमारा सहृदय या संबंधी हो अथवा अत्यंत सज्जन, शीलवान या चरित्रवान् होने के कारण समाज का मित्र या हितकारी हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ या कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनंद का उदय नहीं होता। इससे प्रकट है कि दूसरों के दुःख से दुःखी होने का नियम व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है।"^{२६}

अर्थात् करुणा का भाव अत्यंत व्यापक है। वही मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने का सूत्र है। साहित्य में मानवीय संवेदना या करुणा की महत्ता को काव्य शास्त्र में भी भवभूति जैसे आचार्यों ने स्वीकार किया है। संवेदना और साहित्य का अटूट संबंध है। साहित्यकार की संवेदना कभी व्यक्ति विशेष पर आधारित नहीं, बल्कि समाज सापेक्ष है। अर्थात् अपनी परिस्थिति में जीवन बितानेवाला संपूर्ण जनसमूह के प्रति होता है।

प्रसिद्ध कवि मुक्तिबोध ने संवेदना को साहित्य के लिए अनिवार्य माना है। वे मानते हैं कि हरेक रचना के लिए एक संवेदनात्मक उद्देश्य होता है। वे कहते हैं - "लेखक के पूरे व्यक्तित्व से समूहगत या संवेदनात्मक उद्देश्य उसके अनुभवों का विशेष रूप से संकलन

करते हुए उन्हें अपनी पूर्ति की दिशा में प्रवाहित कर देते हैं। यह पूर्ति (लेखक - कलाकार के लिए) अभिव्यक्ति में होती है।”^{२७}

अर्थात् बाह्य परिवेश से विभिन्न भावों को ग्रहण करने के बाद साहित्यकार के अंदर अपने संवेदनात्मक उद्देश्य के अनुरूप ही एक रचना का सृजन संभव हो पाता है। इसके संबंध में कल्याण चंद्र लिखते हैं - “संवेदना जब काव्य संवेदन में पर्यवसित होती है तो वह कहीं अधिक मर्मस्पर्शी, सामाजिक जीवन के प्रति आलोचनात्मक, गहन एवं तीव्र आवेश के साथ अन्तस को झंकृत करनेवाली होती है। संवेदना को काव्य संवेदन तक पहुँचाने हेतु रचनाकार का अत्यंत कठोर एवं आत्मनिर्णय के पथ से गुजरना पड़ता है। यथार्थ जीवन का सम्यक आभ्यन्तरीकरण और उसके पश्चात उसकी अभिव्यक्ति की विकलता ही सफल-काव्य संवेदन को जन्म देती है। इन दोनों के मध्य कवि का काव्य-विवेक आवश्यक एवं स्वरूप निर्धारित सेतु है।”^{२८} साहित्य की सभी विधाओं का आधार संवेदना ही है, संवेदना की व्यापकता एवं जीवंतता काव्य में ज़्यादा पायी जाती हैं। इसलिए काव्य में संवेदना के स्वरूप को परखना एवं समझ लेना है।

२.६. काव्य और संवेदना

काव्य संवेदना का भंडार है। अपने ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभव को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति मनुष्य में अनादिकाल से होती आ रही है। प्राचीन काल में मानव सिर्फ चित्रकला से अपने अनुभव को अभिव्यक्त करते थे। आगे चलकर भाषा के मायाजाल को हासिल करके कविता के माध्यम से भावाभिव्यक्ति होने लगी। मौखिक ढंग की अभिव्यक्ति बाद में लिपि चिह्नों की सहायता से लिखित रूप में होने लगी। आदि मानव के बुद्धि विकास के साथ ही साथ संवेदना का भी विकास होने लगी। शायद यही संवेदना मानव को अन्योन्याश्रय से एक समाज बनकर जीने की प्रेरणा देती होगी। अपने मन की अनुभूतियों को किसी न किसी ढंग से अभिव्यक्त करने की चाहत मनुष्य में है।

मनुष्य एक ऐसा सामाजिक प्राणी है कि वह अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। मानव मन की अनुभूति को अभिव्यक्त करने की सशक्त माध्यम है कविता। कविता के मूल में लोकमंगल की भावना है। कविता केवल मनोरंजन की चीज़ नहीं है। उसमें मानवीय संवेदना को बनाये रखने का मूल मंत्र अवश्य है। कवि दृष्टि हमेशा अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत होनी चाहिए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'कविकर्तव्य' को ऐसा व्यक्त करते हैं - "पहूँचे हुए पंडितों का कथन है कि कवि भी "धर्म संस्थापनार्थाय" उत्पन्न होते हैं। उनका काम केवल तुक मिलाना या 'पावस पचासा' लिखना ही नहीं है।"²⁹

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की राय में साहित्य के मूल में मनुष्य है। साहित्य में मानवीय संवेदना को महत्व देकर द्विवेदी इस प्रकार व्यक्त करते हैं - " मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने के पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और मर मुख्रापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःख कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में संकोच होता है।"³⁰ काव्य में संवेदना के संदर्भ में नवीन चंद्रलोहनी कहते हैं - "संवेदना ही वह तत्व है जो कि कवि को काव्य रचना हेतु अग्रसर करती है। संवेदन जितना तीव्र होगा, उतना ही उसका तेज असर होगा और उसकी अभिव्यक्ति भी उसकी शक्ति व क्षमता के साथ हो सकेगी।"³¹ भारतीय साहित्य या काव्य में संवेदना को परखने पर कवियों की संवेदनात्मक दृष्टिकोण का विस्तृत परिदृश्य हमें मिलता है। भारत में साहित्यिक या सांस्कृतिक परंपरा विस्तृत एवं व्यापक है।

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के मूल में 'वेद' है। वेद शब्द का अर्थ ही ज्ञान है। जीवन के हर एक पहलू का उद्घाटन 'वेद' में है। वैदिक कवि की महीन संवेदना के बारे में प्रभाकर श्रोत्रीय इस प्रकार लिखते हैं - "शव को ज़मीन में गाड़ते समय पृथ्वी से कहा जाता है कि इस पर ज़्यादा वज़न मत डालना। इसे अपने भीतर वैसे ही छिपा लेना जैसे

माँ, बच्चे को अँचल में ढँप लेती है। ऐसी गहन संवेदना, जीवन, कर्म और आनंद की ऐसी स्वीकृति, चिंतन, अनुभव और अभिव्यक्ति की ऐसी परिपक्वता, विशाल विश्व दृष्टि का ऐसा समारोह - शायद दुनिया ने वेद के पहले कभी नहीं देखा होगा।”^{३२}

भारत में आदि कवि का श्रेय वाल्मीकि को मिलता है। निसंदेह हम कह सकते हैं कि भारतीय काव्य का बीजभाव करुणा की प्रथम अभिव्यक्ति प्रणिमात्र की संवेदना में निकली थी। प्रणय केली से मग्न क्रौंच मिथुनों में से एक का वध देखने पर वाल्मीकि के हृदय से करुणा का सागर फूट पडा और उसी ने महाकाव्य को जन्म दिया।

‘महाकाव्यों का महाकाव्य’ ‘महाभारत’ अधर्म पर धर्म की विजय का काव्य है। जीवन के असंख्य पक्षों का उद्घाटन महाभारत में है। जहाँ मानव कल्याण की भावना है वहाँ धर्म का विजय होती है। धार्मिकता एवं नैतिकता के ज़रिए मानविकता का विकास संभव हो पाता है। निश्चय ही मानव कल्याण की भावना से ओतप्रोत ये दोनों महाकाव्य इस देश की संस्कृति एवं समाजिक विकास में अहं भूमिका निभाते हैं।

मध्यकालीन हिंदी साहित्य में भक्तिकाल के संतों एवं कवियों की वाणी में भी परपीडा की अनुभूति है। अपने मन का आपा खोकर औरों के लिए जीने को कबीर हमेशा कह रहे थे। कबीर की वाणियों में समाज सुधार की शक्ति अवश्य मिल पाती है। वे बाह्य लोक से जुड़े होकर लोक कल्याण की भावना को अपने दोहों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास की पंक्तियाँ समन्वयात्मकता का विराट प्रयास हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के माध्यम से आदर्शात्मक समाज की कल्पना वे करते हैं। वे अच्छी तरह जानते थे कि एक संवेदनात्मक समाज ही आदर्शात्मक बन जाते हैं।

भारतीय भाषाओं की जननी ‘संस्कृत’ है। वेद, उपनिषद, पुराण, दर्शन, स्मृति ये सब संस्कृत भाषा की देन है। भारत में भाषा वैविध्य होते हुए भी साहित्यिक प्रवृत्तियों में समानता देख पाते हैं। सभी भाषाओं के साहित्य में एक ही समय में लगभग एक ही

प्रवृत्ति पायी जाती है। संस्कृत से जन्म आधुनिक भाषाओं ने प्राचीन संस्कृत साहित्य से प्रेरणा ग्रहण की है। समाज परिवर्तित एवं परिमार्जित होते रहते हैं। इसके अनुरूप साहित्य में भी परिवर्तन एवं परिमार्जन स्वतः ही आते हैं। संवेदनात्मक दृष्टिकोण में भी बदलाव आते हैं। लेकिन निःसन्देह हम कह सकते हैं कि भारतीय साहित्य या काव्य मानवीय संवेदना के धरातल पर जन्म लेकर जनहित को अपनाकर लोककल्याण की ओर अग्रसर है। भारतीय काव्य के मूल में 'लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु' है।

२.७. आधुनिक हिंदी कविता और संवेदना

हिंदी कविता के विकास से संबंधित सूचना समकालीन कविता की पूर्वपीठिका नाम से पहले लिखी है। आधुनिक हिंदी कविता में समाज और समय के अनुरूप मानवीय संवेदनाओं के विविध स्वरूप को देखा जा सकता है। तत्कालीन सामाजिक दुरवस्था के प्रति सशक्त स्वर उठानेवाले भारतेंदु मंडल के कवियों की वाणी हमेशा जनोन्मुख रही थी। सामाजिक दुरवस्था के प्रति भारतेंदु ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जो संवेदना प्रकट की है वही संवेदना भारतेंदु मंडल के अन्य कविताओं में भी देखने को मिलती है। तत्कालीन भारत की दुर्दशा पर संवेदना प्रकट करते हुए भारतेंदु लिखते हैं-

“रोअहू सब मिलिकै आवहु भारत भाई।

हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।”^{२३}

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख कवि थे। उनका कहना था कि कविता केवल मनोरंजन के लिए नहीं होती है। उसके माध्यम से जन जागृति का उद्घोष होना चाहिए कविता में संवेदना की ज़रूरत के बारे में ऐसी अभिव्यक्ति देते हैं -

“केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।”^{२४}

छायावाद के चार स्तंभ भी अपनी कविताओं में मानवीय संवेदना के प्रखर रूप को दिखाते हैं। प्रसाद ने 'कामायनी' में चिंता के आरंभ में संवेदना शब्द के प्रयोग से दुःखात्मक संवेदना की अभिव्यक्ति की है।

“मनु का मन था विकल हो उठा संवेदन से खाकर चोट
 संवेदन : जीवन जगती को जो कटुता से देता घोट
 संवेदन का और हृदय का यह संघर्ष न हो सकता
 फिर अभाव असफलताओं की गाथा कौन कहाँ बकता।”^{३५}

निराला ने ‘तोड़ती पत्थर’ कविता जब लिखी यह प्रगतिवाद का समय था। पत्थर तोड़नेवाली स्त्री के माध्यम से जनता के पत्थरीली हृदय को तोड़कर जनशक्ति को जगाने की कोशिश निराला ने की है। गरीबी या अभावग्रस्त जिंदगी को दिनकर व्यक्त करते समय सहृदय पाठक का हृदय निश्चय ही पिघल जाता है। वे कमज़ोरों के हक में खड़े होकर व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं। समाज में व्याप्त अव्यवस्था को लेकर वे हमेशा क्षुब्ध रहे।

“श्वानों को मिलता दूध, वस्त्र, भूख बालक आकुलाते हैं
 माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़े की रात बिताते हैं।”^{३६}

प्रयोगवादी कवि अज्ञेय की कविता में दुःख की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार है। दुःख के संबंध में कवि कहते हैं -

“दुःख सबको माँजता है
 और
 चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने किंतु
 जिनको माँजता है
 उन्हें यह सीख देता है कि सबसे मुक्त रखें।”^{३७}

अज्ञेय कहना है कि दूसरों को दुःख न देने की सीख स्वयं दुःख के अनुभव से ही मिलती है।

भारतेंदु से अज्ञेय तक की कविता यात्रा में अनेक परिवर्तन हुए हैं फिर भी ये कविताएँ संवेदना के धरातल पर उत्कृष्टतम हैं। समकालीन कविता की संवेदना पर चिंता करें तो हमें एक बात ज्ञात होता है कि इसे हम किसी विशेष विचारधारा के अंतर्गत नहीं

रखा जा सकता। अर्थात् यह व्यापक विचारबोध की कविता है। इसलिए समकालीन कवि की संवेदनशीलता भी व्यापक होती है। सामाजिक समस्याओं के प्रति कवि एवं कविता निश्चय ही संवेदनशील हैं। समकालीन कवि जीवन की वास्तविक भूमि पर खड़े होकर अपनी संवेदना को अभिव्यक्त करते हैं।

२.८. समकालीन हिंदी कविता में संवेदना

समकालीन कवि अनुभूति की अपेक्षा अनुभव को महत्व देते हैं। समकालीन समय की मोहभंग की स्थिति को अभिव्यक्त करनेवाली समकालीन कविता अंधेरे में प्रकाश खोज रही है। समकालीन समय की विसंगतियों को देखकर कवि बेचैन हैं। बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद एवं विज्ञानवाद की महत्ता, राजनीति की विकृतियाँ और सांप्रदायिकता का धिनौना रूप- ये सारी विसंगतियों के भीतर त्रस्त जनता की सच्ची ज़िंदगी का दस्तावेज़ बन गयी है समकालीन कविता। अस्मिता का संकट समकालीन समय में जीता हुआ मनुष्य का बड़ा संकट बन गया है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचानना है। मानव एवं मानवता की पहचान में पड़ा हुआ यह संकट समकालीन समाज के सामने बड़ा सवाल खड़ा कर देता है।

समकालीन राजनीति ने मनुष्य की अस्मिता पर गहरी चोट पहुँचा दी है। सत्तालोलुप राजनीतिज्ञ आज जनता को केवल मतदाता समझते हैं। आज जनतंत्र अपना वास्तविक अर्थ खोकर कुछ चालाक लोगों द्वारा रचा गया षड्यंत्र मात्र रह गया है। जीवन की सारी समस्याएँ चुनाव तक ही सीमित रह गयी हैं। तत्कालीन राजनीति व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में न मानती है। व्यक्ति को सिर्फ मतदाता के रूप में सीमित रखा है। धूमिल ने 'सुदामा पांडे का प्रजातंत्र' शीर्षक कविता में सत्ता में जनविरोधी तंत्र का पर्दाफाश किया है। सत्ता के मनुष्य विरोधी रवैये के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए वे लिखते हैं-

“न कोई प्रजा है

न कोई तंत्र

यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुलासा
पड्यंत्र है।”^{२८}

समकालीन समाज में आज आदमी की हैसियत नष्ट होती जा रही है। वह हमेशा संघर्ष से गुज़रता है। उनके जीवन में व्याप्त असुरक्षा एवं अभाव की स्थिति को समकालीन कविता में स्थान मिला है। समकालीन कवि आम आदमी की मूलभूत समस्याओं के प्रति ध्यान आकर्षित करते हैं। वे भली भाँति जानते हैं कि गरीबी एवं बेरोज़गारी की वजह से भूखे रहने के लिए विवश जनता के जीवन का सबसे बड़ा तर्क रोटी है। आम आदमी अमानवीय व्यवस्था का शिकार है। समाज शोषक और शोषित के रूप में विभाजित है। शोषित जनता के प्रति मानवीय संवेदना प्रकट करते हुए कवि धूमिल व्यवस्था पर गहरी चोट पहुँचाते हैं। वे लिखते हैं -

“एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ -
यह तीसरा आदमी कौन है?
मेरे देश की संसद मौन है।”^{२९}

समकालीन कवि की दृष्टि वर्तमान समाज में गिरते हुए मूल्यों पर टिकी हुई है। चारों ओर स्वार्थता फैल गयी है। परस्पर प्रेम एवं भाईचारे के भावों का हास होता रहता है। समाज में बढ़ती हुई मूल्यक्षरण की प्रवृत्ति को समकालीन कवि वर्णित करते हैं। कवि कुमार अंबुज ‘सामाजिक जीवन’ नामक कविता में नैतिक संकट का चित्रण करते हैं। सडक पर मरे पडे मानव और मेंढक की मृत्यु की तुलना करते हुए वे लिखते हैं-

“एक मेंढक की मृत्यु की
परवाह कौन करता है
तब पूछा जा सकता है
यह सवाल भी
कौन करता है परवाह
एक मनुष्य की मृत्यु की?”^{४०}

वैश्वीकरण से उत्पन्न मानवविरोधी बातें समकालीन समाज के सामने एक बड़ी चुनौती बन गयी हैं। विश्वग्राम की संकल्पना पर चलनेवाले भूमंडलीकरण की प्रेरक शक्ति बहुराष्ट्रीय कंपनियों हैं। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने इस दुनिया को अपना बाज़ार बना दिया है। बाज़ारीकरण की प्रवृत्ति इतना विस्तृत हो रही है कि देश, समाज, संस्कृति सबका क्रय-विक्रय हो रहा है। समकालीन कवि बाज़ार की संस्कृति में पिसनेवाली जनता के प्रति संवेदना प्रकट करते हैं। कवि प्रेमशंकर रुघुवंशी बाज़ार के बढ़ते आतंक व्यक्त करते हुए लिखते हैं -

“तुम्हें पता होना चाहिए
कि कितने खौफजदा
होते जा रहे बाज़ार
और कितने तटस्थ
कितने उदासीन होते जा रहे
बाज़ार का हिस्सा बनते लोग।”^{४१}

मीडिया और विज्ञापन बाज़ारीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा देते हैं। मीडिया एवं विज्ञापन के सहारे ही इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों उपभोक्ता का सृजन करती हैं। विज्ञापन द्वारा निकलनेवाली बातों में साधारण जनता फँस जाती है। मकड़ी के जाल में फँसनेवाले छोटी प्राणी के समान लोग मीडिया एवं विज्ञापन के जाल में फँस जाते हैं। लोग यह भी पहचानने में असमर्थ बन गये हैं कि हम धोखे में हैं। कवि प्रेमशंकर रुघुवंशी इस पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं -

“यही है जीवन दायिनी सबकी
 सबकी
 मोक्षदायिनी है यही
 जय हो
 जय हो
 टी वी वैतरणी की।”^{४२}

बाज़ारीकरण के पदार्पण के बाद आज सभी चीज़ें बेचने योग्य बन गयी हैं। पीने का पानी भी बिकाऊ चीज़ बन गया। प्राण जल के उपभोक्ता बनने के लिए विवश जनता पर संवेदना प्रकट करते हुए ‘अफसोस’ शीर्षक कविता में ए. अरविंदाक्षन लिखते हैं -

“आजकल
 जब भी यात्रा पर निकलता हूँ
 तो मुझे अफसोस इस बात का होता है
 कि पानी पैसा देकर खरीदना पड़ता है
 पानी की बोतल मुझे दुःख ही दे रही है।”^{४३}

भूमंडलीकरण के इस दौर में किसानों की स्थिति दर्दनाक बन गयी है। उनसे अपनी खेती की भूमि छीन लेकर उनके लिए आत्महत्या की ज़मीन तैयार कर रहे हैं। ऋण का भार वहन करके वे अंत में स्वयं बली देकर ऋणमुक्त बन जाते हैं। विकास के नाम पर इनकी भूमि छीननेवाले विकास के पुरोधे इसके अंजामों से बिल्कुल बेपरवाह हैं। साम्राज्यवादी ज़मीन्दारों के लिए ही किसानों की भूमि हडप रहे हैं। उन्हें अपनी ज़मीन से बेदखल कर देते हैं। यदि कोई विरोध किए तो विरोध करनेवालों का नामोनिशान भी मिटा देते हैं। समकालीन कवि अपनी कविताओं के माध्यम से किसानों की बदहाली का बयान करते हैं। प्रेमशंकर रघुवंशी ‘शहर से लौटने पर’ कविता में आत्मरोदन करते हैं-

“कौन ले गया ग्वान
 गाय-बैल घूरा

बिण्डा घिनोची कहाँ गये?

कहाँ है खलिहान

मेरे बिरवा, खेत कहाँ हैं?"^{४४}

समकालीन समाज में आदिवासी जनता शोषण का शिकार है। आदिवासी जनता के जीवन, संस्कृति, अस्मिता संघर्ष एवं प्रतिरोध का अंकन समकालीन कविता में देख पाते हैं। उनके जीवन एवं संस्कृति जंगल से जुड़ी हुई है। प्रकृति के साथ उनका संबंध सहजीविता का है। वर्तमानकालीन उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से उनके जल, जंगल और ज़मीन लूट के साधन बन गये हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों, भूमाफियाओं एवं बड़े कारपरेटों का साथ देकर सरकार भी आदिवासी समाज के शोषण के लिए मौन अनुमति दे रही है। फलस्वरूप आदिवासी समाज का अस्तित्व खतरे में है। उनके अस्तित्व पर पड़े हुए संकट को समकालीन कवि अनदेखा नहीं करते। कवि मंगलेश डबराल 'आदिवासी' शीर्षक कविता में लिखते हैं -

“अब क्षितिज पर बार-बार उसकी काली देह उभरती है

वह कभी उदास और कभी डरा हुआ दिखता है

उसके आसपास पेड़ बिना पत्तों के हैं और मिट्टी बिना घास की

यह साफ है कि उससे कुछ छीन लिया गया है

उसे अपने अरण्य से दूर ले जाया जा रहा है।”^{४५}

भारत की सामाजिक व्यवस्था वर्ण और जाति पर आधारित है। समकालीन समाज में दलितों की स्थिति में कुछ परिवर्तन तो अवश्य आये हैं। फिर भी वे कई तरह के शोषण का शिकार हैं। दलितों में से कई लोग आज भी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से बहिष्कृत और तिरस्कृत हैं। उच्चवर्ग द्वारा नियंत्रित समाज में वे अस्पृश्यता का भी शिकार हैं। लेकिन दलितों की कठिन मेहनत का फल हड़पने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं। उनसे कई तरह के अमानवीय व्यवहार कर रहे हैं। समकालीन दलित साहित्यकार हज़ारों सालों से भोगे हुए यथार्थ को अपनी रचनाओं के द्वारा शब्दबद्ध कर रहे हैं।

दलितों की पीड़ा, संत्रास एवं शोषण का बेबाक चित्रण दलित साहित्य में पाया जाता है। हजारों सालों से इन दलितों को सभी मानवीय मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया। कवि ओम प्रकाश वाल्मीकी ने अपनी कविताओं में दलित संवेदना की यथार्थ अभिव्यक्ति की है। वे अपनी कविता में लिखते हैं -

“मैं ने दुःख झेले
सहे कष्ट पीढी-दर-पीढी इतने
फिर, भी देख नहीं पाये तुम
मेरे उत्पीडन को
इसलिए युग समूचा
लगता है पाखण्ड मुझे।”^{४६}

मानव के अस्तित्व का आधार पर्यावरण है। अनादिकाल से मानव की संस्कृति पर्यावरण से जुड़ी हुई है। लेकिन आधुनिक पूँजीवादी युग में उपभोगी संस्कृति के फलस्वरूप पर्यावरण धीरे-धीरे संकट में पड रहा है। कई लोग आज परिस्थिति के स्वामी बनकर शोषण करने लगे हैं और हमारा पर्यावरण आज कई समस्याओं से घिरा है। समकालीन कविता काफी विस्तृत फलक में पर्यावरण के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करती है। परिस्थिति की सभी इकाईयों के प्रति समकालीन कवि चिंतित हैं। एक दूसरे पर आश्रित जीव-जंतुओं के अस्तित्व पर समकालीन कवि सोच-विचार करते हैं। हवा, जल, मिट्टी सब पर प्रकृति के सभी जीव-जंतुओं का समान अधिकार है। लेकिन आज मानव ने सभी प्राकृतिक संसाधनों को कब्जा कर लिया है। आधुनिक मानव के लिए प्रकृति सिर्फ उत्पाद है। मानव के अतिर्यंत्रित हस्तक्षेप के फलस्वरूप प्रकृति का संतुलन बिगडकर वह दिन-प्रतिदिन प्रदूषित होती जा रही है। फलस्वरूप मानव को सूख्रा, गर्मी, बाढ, आँधी आदि कई प्राकृतिक प्रकोपों का सामना करना पड़ता है।

औद्योगीकरण का बढ़ता प्रभाव प्रकृति पर गहरा आघात पहुँचा रहा है। भौतिक विकास के पीछे चलनेवाले आधुनिक मानव के मन में प्रकृति के प्रति संवेदना सूखने

लगती है। विकास के नशे में पड़े मनुष्य प्रकृति के साथ अपने हृदयगत एवं संवेदनात्मक संबंध खो रहे हैं। प्रकृति के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए नवल शुक्ल लिखते हैं -

“बहुत कम हो रहा है
 हमारा संसार
 हवा कम हो रही है
 पीने के पानी तक का अकाल
 धरती कम हो रही है
 और हमारे वायुमंडल का विस्तार
 पेड़-पौधे कम हो रहे हैं
 कम हो रही है ऋतुएँ
 लुप्त प्राय हो गयी कुछ नदियाँ, कुछ फूल, कुछ जीव
 दूर क्षितिज पर दिखाई देता है उसका झुंड
 धरती संविदा ले रहे हैं उन सबके
 धीरे-धीरे काँपता हुआ हाथ।”^{४७}

समकालीन समाज शिक्षा, आधुनिकता एवं वैज्ञानिकता आदि सभी क्षेत्रों में बहुत आगे है। फिर भी स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में पुरुष सत्तात्मक मानसिकता ही देखने को मिलती है। पुरुष ही यहाँ समस्त अधिकारों के साथ विराजमान है। इसलिए स्त्री विभिन्न तरह के शोषण के शिकार बन जाती है। समकालीन रचनाकार का संवेदनशील मन स्त्री जीवन के हर पक्ष को परत-दर-परत उद्घाटित करता है। समकालीन कविता में स्त्री संवेदनाओं के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़नेवाले स्त्री जीवन को समकालीन कविता रेखांकित करती है। समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से पुरुषवादी मनोविज्ञान, पुरुष का स्वार्थ, स्त्री-पुरुष संबंध की महानता, प्रेम और विश्वास, मुक्ति की कामना, स्त्रीत्व की चिंता, स्त्रियों के प्रति होनेवाली हिंसा, मातृत्व, सांप्रदायिक या जातीय दंगों के बीच में अमानवीय व्यवहारों का शिकार होनेवाली

स्त्री-आदि स्त्री जीवन के विभिन्न पक्षों को अपनी कविताओं के माध्यम से उजागर किया है। गुजरात के दंगों से पीड़ित स्त्री का बयान करती है पवन करण की कविता 'यह आवाज़ मुझे सच्ची नहीं लगती।' इस कविता के माध्यम से दंगे का शिकार औरत के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए कवि यह बताना चाहते हैं कि हमारे समाज में स्त्री सुरक्षित नहीं है। वे लिखते हैं -

“दूर कहीं से चलकर आवाज़ आती है
 दंगे खतम हो गया है
 सच्ची नहीं लगती मुझे यह आवाज़
 मुझे नहीं लगता दंग खत्म हुआ है अभी
 वे दंगे खत्म होगा भी नहीं, मेरे और
 मेरी देह के खिलाफ ये दंगे सदियों से जारी हैं।”^{४८}

हमारे देश में आज़ादी के बाद सांप्रदायिकता की समस्या जटिल होती जा रही है। सांप्रदायिकता हमेशा समाज को विभाजित करती है। राजनीतिक दलों का हाथ भी इसके पीछे है। राजनीतिक दल धर्म को सांप्रदायिकता फैलाने का माध्यम बनाते हैं। समकालीन कविता ने सांप्रदायिकता के सभी पक्षों को खुलकर दिखाया है। सांप्रदायिकता की आग फैलानेवाले सत्तालोलुप शासकवर्ग, पुलिस एवं मीडिया का मनमानेपन, सांप्रदायिक दंगों के पीछे की मानसिकता, सांप्रदायिक दंगों का शिकार होनेवाली आम जनता की स्थिति, विशेषकर बच्चे एवं स्त्रियाँ इन सबके प्रति समकालीन कविता संवेदना प्रकट करती है। समकालीन कवि भली भाँति जानते हैं कि भारत में सांप्रदायिकता पक्वहीन राजनीति की उपज है। सांप्रदायिक दंगों से उत्पन्न हत्याकांडों की भयावहता का अंकन करते हुए 'न हन्यते' नामक कविता में विष्णुखरे लिखते हैं-

“रोज़ सुनते थे आज इतने हिन्दू कतल कर दिए
 इतनी बहू-बेटियों को विगाडा भगा लिया चंडालों ने
 जाने कितनों को जर्बदस्ती गउमांस खिलाकर अपने में मिला लिया

निचली जाती को भडकाया, फुसलाया
 फिर मालूम पडा कि दिल्ली स्टेशन पर
 हिंदुओं की लाशों से भरी गाड़ियाँ आ रही हैं
 तो हमारी कुमेटी ने भी अपनी काम शुरू किया।”^{४९}

कहा जाता है कि हमारे देश के लोकतंत्रीय शासन प्रणाली सबसे श्रेष्ठ है। स्वतंत्रता समता एवं बंधुत्व की नींव में खड़ी है देश की शासन प्रणाली। विवधताओं के बीच एकता को बनाये रखने की प्रवृत्ति में इस लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की अहं भूमिका है। इसमें जनता के वर्चस्व की संकल्पना निहित है। लेकिन आज इस शासन प्रणाली में थोड़ा गडबड हो गया है। आज की बिगड़ी हुई शासन व्यवस्था में जनता का स्थान केवल मतदाता के रूप में है। जनता को शासन व्यवस्था में विश्वास या आस्था कम हो रही है। क्योंकि शासन और शासक बदलते रहते हैं फिर भी आम जनता की जीवन स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होते हैं। आज गरीबों के नाम पर चलाये जानेवाले कई योजनाएँ हैं। लेकिन इनका पूरा फायदा उन्हें नहीं मिलता है। कभी-कभी विकास के नाम पर उन्हें अपनी जगहों से बेदखल कर दिया जाता है। कानून के सामने भी हरेक नागरिक को समान अधिकार प्राप्त न होता है। हर कहीं भ्रष्टाचार, अनीति एवं अक्रामकता ही देख पाते हैं। आज हमारे लोकतांत्रिक व्यवस्था में आम जनता की भागीदारी को मतदान तक सीमित कर दिया रखा है। समकालीन हिंदी कविता लोकतंत्र के विघटन के प्रति अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करती है। कवि सर्वाधिक संवेदनशील होने के कारण समाज में व्याप्त अंतर्विरोधों से वे बेचैन हैं। कवि मंगलेश डबराल ‘हमारे शासक’ नामक कविता में लिखते हैं -

“हमारे शासक गरीबों के बारे में चुप रहते हैं
 शोषण के बारे में कुछ नहीं बोलते
 अन्याय को देखते ही वे मुँह फेर लेते हैं
 हमारे शासक खुश होते हैं जब कोई उनकी पीठ
 पर हाथ रखता है

वे नाराज़ हो जाते हैं जब कोई उनके पैरों में गिर पड़ता है
दुर्बल प्रजा उन्हें अच्छी नहीं लगती।”^{५०}

२.९. निष्कर्ष

संक्षेप में कहें तो समकालीन युग जो है मानवीयता के विनाश का युग है। इस युग में मनुष्य होकर रहना बड़ा कठिन है। ऐसे समय में कहीं भी मानवता का अंश पाये तो निश्चय ही वह देवत्व की प्राप्ति है। समकालीन कविता मनुष्य और मानवता की पहचान रखती है। समकालीन कवि अपनी कविताओं के माध्यम से सहृदय पाठक के अंतर्मन में सुषुप्त संवेदना को जागरित करके उसे मानवता की ओर अग्रसर कराने का प्रयास कर रहे हैं। मानव का संबंध सिर्फ मानव के साथ नहीं। प्रकृति के सभी अंगों के साथ चाहे वह पेड़-पौधे हो, नदी-नाले हो, पक्षी-जानवर हो वह संबंध रखता है। प्रकृति की गोद में जन्म एवं पले मानव आज अधिकाधिक आधुनिक बनाने की चाहत में इन प्राकृतिक तत्वों के प्रति रागात्मक संबंध रखने के बदले अपना अधिकार जमाते हैं। तब कवि कविताओं के माध्यम से अन्याय एवं शोषण के प्रति मानवीय संवेदना व्यक्त करते हैं।

समकालीन कविता के केन्द्र में स्त्री, दलित, बूढ़े, बच्चे, प्रकृति, परिवार, राजनीति ये सब हम देखते हैं। समकालीन कविता की विषयवस्तु की गहनता के संबंध में नरेन्द्र मोहन कहते हैं - “समकालीन कविता की विषयवस्तु का परीक्षण करें तो साफ हो जाएगा कि इसने समकालीन जीवन का उद्वेलन, भले ही वे राजनीतिक हो या सामाजिक या व्यक्तिगत भी, व्यक्त किए हैं, इन उद्वेलनों के शिकार मानवीय चेहरे उजागर किए हैं।”^{५१} इतनी गहन विषयवस्तु को लेकर चलनेवाली समकालीन कविता मानव मन के विभिन्न भावों का संगम स्थान है। प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का उद्वेलन समकालीन कविता में पाया जाता है। निःसंशय हम कह सकते हैं कि समकालीन कविता मानवीय संवेदना की भावभूमि पर उगी हुई है। हिंदी कविता का सफर हमेशा जीवन और जगत से जुड़ा हुआ है। समकालीन कविता अपनी

पूर्ववर्ती कविता की अपेक्षा जीवन और जगत् के बीच में ही है। समकालीन कविता के भाव संसार को महान कवियों ने समृद्ध बना दिया है। हिंदी कविता की परंपरा इस बात का साक्षी है कि संवेदनाएँ मानव जीवन का अभिन्न अंग रही हैं। समकालीन कविता इस पर बल देती है कि मानवीय संवेदनाओं के बिना स्वस्थ समाज का टिकना असंभव है।

संदर्भ सूची

१. सं. ए.अरविंदाक्षन - कविता का यथार्थ, पृ.सं.६२
२. वामन शिवराम अप्पे - संस्कृत- हिंदी कोश, पृ.सं.१०४९
३. वामन शिवराम अप्पे - संस्कृत- हिंदी कोश, पृ.सं.१०४९
४. सं. रामचन्द्रवर्मा - संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर, पृ.सं.९५६
५. सं. रामचन्द्रवर्मा - मानक हिंदी कोश, पृ.सं.२३७
६. सं. सत्यप्रकाश डि.एस, सी.बलभद्र मिश्र, मानक अंग्रेज़ी हिंदी कोश, पृ.सं.१३७३
७. सं. सत्यप्रकाश डि.एस, सी.बलभद्र मिश्र, मानक अंग्रेज़ी हिंदी कोश, पृ.सं.१३७३
८. सं. सत्यप्रकाश डि.एस, सी.बलभद्र मिश्र, मानक अंग्रेज़ी हिंदी कोश, पृ.सं.१३७३
९. डॉ. हरदेवबाहरी - उच्चतर हिंदी - अंग्रेज़ी कोश , पृ.सं.३१९
१०. सं. गोपीनाथ श्रीवास्तव -सामयिक प्रशासनिक कोश (हिंदी - अंग्रेज़ी), पृ.सं.३९१.
११. सं. नगेन्द्र नाथ बसु - हिंदी विश्वकोश, पृ.सं.
१२. सं. श्री. नवल जी - नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ.सं.१३८५
१३. डॉ. हरदेव बाहरी - हिंदी शब्द कोश, पृ.सं.७९३
१४. सं. धीरेन्द्रवर्मा - हिन्दी साहित्य कोश भाग १, पृ.सं.८६३
१५. सं. नगेन्द्र - मानविकी पारिभाषित कोश, साहित्य खंड, पृ.सं.२३२
१६. सं. धीरेन्द्र वर्मा - हिंदी साहित्य कोश भाग १, पृ.सं.८६३
१७. डॉ. नामवर सिंह - कहानी नई कहानी, पृ.सं.४७-५०
१८. निधि गुप्ता - दसवें दशक के हिंदी नाटक: संवेदना एवं शिल्प, पृ.सं.३६.
१९. डॉ.पी.ए. रघुराम - समकालीन हिंदी कविता और अस्मिता, पृ.सं.११९.
२०. डॉ.शिवकुमार सी. एस - हडपद-स्त्री कविता में मानवीय संवेदना, पृ.सं.१५७
२१. कल्याण चन्द्र - समकालीन कवि और काव्य, पृ.सं.५६.

२२. रामचंद्र शुक्ल - चिंतामणी भाग १, पृ.सं.११
२३. उद्धृत - कल्याण चंद्र समकालीन कवि और काव्य - पृ.सं.५७.
२४. उद्धृत - कल्याण चंद्र समकालीन कवि और काव्य, पृ.सं.५७
२५. डॉ. एस. गंभीर - साठोत्तर हिंदी काव्य में राजनीतिक चेतना, पृ.सं.२२
२६. रामचन्द्र शुक्ल -चिंतामणी भाग - १, पृ.सं.३६
२७. सं. नेमिचिन्द्रजैन - मुक्तिबोध - रचनावली भाग-५, पृ.सं.२२६
२८. कल्याण चंद्र - समकालीन कवि और काव्य, पृ.सं.६४
२९. <https://www.hindisamay.com>
३०. सं. मुकुंद द्विवेदी - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी चुने हुए निबंध, पृ.सं.८१.
३१. डॉ.नवीनचंद्र लोहनी - अज्ञेय की काव्य चेतना के आयाम, पृ.सं.९१
३२. प्रभाकर श्रोत्रीय - कालयात्री है कविता, पृ.सं.१६.
३३. <https://www.hindisamay.com>
३४. उद्धृत - रामचन्द्र तिवारि - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा,६.
३५. जयशंकर प्रसाद - कामायनी, पृ.सं.२१.
३६. रमाधारी सिंह दिनकर - रश्मिलोक, पृ.सं.५१
३७. अज्ञेय - नदी के द्वीप, पृ.सं.७
३८. धूमिल - सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ.सं.१८.
३९. धूमिल - कल सुनना मुझे, पृ.सं.३३
४०. कुमार अंबुज - अतिक्रमण - पृ.सं.९०
४१. प्रेमशंकर रघुवंशी - देखा बिना नाम के तुम्हें, पृ.सं.४८
४२. प्रेमशंकर रघुवंशी - देखा बिना नाम के तुम्हें, पृ.सं.५७
४३. ए.अरविंदाक्षन - आस पास, पृ.सं.२२
४४. प्रेमशंकर रघुवंशी - देखा बिना नाम के तुम्हें, पृ.सं.४४

४५. मंगलेश डबराल - नए युग में शत्रु, पृ.सं.१६
४६. ओमप्रकाश वाल्मीकि - सदियों का संताप, पृ.सं.२४
४७. नवल शुक्ल - दसों दिशाओं में , पृ.सं.८३
४८. पवनकरण - स्त्री मेरे भीतर, पृ.सं.५८
४९. विष्णु खरे - काल और अवधी के दरमियान, पृ.सं.४७
५०. मंगलेश डबराल - नये युग में शत्रु, पृ.सं.२४
५१. नरेन्द्र मोहन - समकालीन कविता के बारे में, पृ.सं.५०.

तीसरा अध्याय

उदय प्रकाश की कविताओं में अभिव्यक्त
मानवीय संवेदना

संवेदनशीलता मानव जाति का श्रेष्ठ गुण है। समाज में संवेदनशीलता को बनाये रखने का श्रेष्ठ कर्म साहित्यकार द्वारा चल रहा है। उदयप्रकाश समकालीन हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों में एक हैं जो एक संवेदनहीन मानव समाज के अंतरमन में मानवीय संवेदनाओं के आवेगों का संचार करके उनमें प्रेम, करुणा, दया, ममता इत्यादि भावों को जागरित करने में सफल बन चुके हैं। वे कविता, कहानी, निबंध, अनुवाद आदि सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाकर समकालीन सामाजिक जीवन का यथार्थ अंकन करने में सक्षम बन चुके हैं।

३.१. जीवन परिचय

आपका जन्म मध्यप्रदेश के शाहडोर जिले के गाँव सीतापुर में १९५२ में हुआ था। अध्यापक, दिनमान के संपादक, दृश्य श्रव्य माध्यमों में पटकथाकार आदि क्षेत्रों में वे कार्यरत थे। आप ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय एवं इनके मणिपुर केन्द्र में सहायक आचार्य एवं टाइम रिसर्च फाउंडेशन और स्कूल ऑफ सोशियल जर्नलिज्म में पत्रकारिता के सहायक आचार्य के रूप में अध्यापन कार्य किया। आप 'पूर्वग्रह', 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के समाचार पाक्षिक 'दिनमान', दिल्ली से निकलनेवाले 'संडेमेल' साप्ताहिक, बैंगलूर से निकलनेवाली अंग्रेज़ी मासिक पत्रिका 'इमिनेन्स' आदि विभिन्न पत्रिकाओं के संपादन कार्य भी किये हैं। पी.टी.आई टेलिविज़न और इंडिपेन्डेंट टेलिविज़न में विचार और पटकथा प्रमुख रहे हैं।

३.२. सृजन परिचय

घर के वातावरण साहित्यिक होने के कारण बचपन से ही उन्हें साहित्य एवं विभिन्न कलाओं में विशेष अभिरुचि रहे हैं। उदय प्रकाश का व्यक्तित्व जितना बहुआयामी है उतना कृतित्व भी।

उदय प्रकाश की साहित्यिक यात्रा का आरंभ कविताओं के माध्यम से होता है। 'सुनोकारीगर' (१९८०), 'रात में हारमोनियम' (१९९८), 'अबूतर-कबूतर' (१९८४), 'एक भाषा हुआ करती है' (२००९), और 'अंबर में अबाबील' आदि आपके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। 'दरियायी घोड़ा' (१९८२) 'तिरिछ' (१९८४) 'और अंत में प्रार्थना' (१९९४), 'पॉलगोमारा का स्कूटर' (१९९७), 'दत्तात्रेय का दुःख' (२००२) 'अरेबा परेबा' (२००६) आदि आपके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। 'पीली छतरीवाली लड़की' (२००१), 'मोहनदास' (२००६), 'मैंगोसिल' (२००६) आदि आपकी प्रमुख लंबी कहानियाँ हैं। कहानी और कविता के अतिरिक्त उन्होंने 'ईश्वर की आँख' (१९९९), 'नई सदी का पंचतंत्र' (२००८) नामक दो निबंध संग्रह एवं 'अपनी उनकी बात' (२००८) नाम से एक साक्षात्कार संबंधी कृति भी प्रकाशित की है।

अनुवाद के क्षेत्र में भी वे विशेष रुचि रखते हैं। लाल घास पर नीले घोड़े, कला अनुभव, इंदिरा गाँधी की आखिरी लड़ाई, रोम्यारोला का भारत, चाय से बना सौरा आदि आपके अनूदित रचनाएँ हैं। भारत की दूसरी भाषाओं तथा अंग्रेज़ी में उदयप्रकाश की कई रचनाएँ अनूदित किए गए हैं। इलक्ट्रॉनिक मीडिया में भी आप विशेष रुचि दिखाते हैं। फिल्म और टी.वी. के क्षेत्र में आपका योगदान रहा। दूरदर्शन में प्रचारित १५ कड़ियों का धारावाहिक 'कृषिकथा' के निर्देशन और पटकथा लेखन, टिलिविज़न सांस्कृतिक पत्रिका 'ताना-बाना' के पटकथा लेखन, फिल्म सीरीज़ विक्की के खजाना का निर्माण आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न उदय प्रकाश को समय-समय पर देश-विदेश के विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया है। भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार (१९८०), ओमप्रकाश साहित्य सम्मान (१९८२), श्रीकांतवर्मा स्मृति पुरस्कार (१९९२) मुक्तिबोध पुरस्कार (१९९५), सद्भावना सम्मान (१९९७), साहित्यकार सम्मान (१९९९), पहल सम्मान (२००३), कथा क्रम सम्मान (२००५), पेन अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार, पुस्किन सम्मान (२००७), दिजदेव सम्मान (२००७), वनमाली पुरस्कार (२००८), सार्कपुरस्कार (२००९), साहित्य अकादमी पुरस्कार (२०१०), प्रेमचन्द सम्मान (२०१२) आदि पुरस्कारों से वे सम्मानित हुए हैं।

३.३. कविता संग्रह - एक परिचय

उदय प्रकाश के अभी तक पाँच काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कविताओं में जीवन का ठोस अनुभव संपूर्णता और सहजता के साथ उभर आता है। उदय प्रकाश की कविता अपने आसपास के जीवन को संवेदना के धरातल पर उद्घाटित करती है।

३.३.१. सुनो कारीगर

उदय प्रकाश का पहला कविता संग्रह 'सुनो कारीगर' १९८० में प्रकाशित हुआ। सुनो कारीगर, सुराही, बढई की लड़की, पिता, इमारत, डाकिया, अनुकपूर जंक्शन, हाल चाल, पिता, बैलाडीला, सरकार, मालिक, आप नाहक नाराज़ हैं, गैम सैंक्चुअरी, बहेलिए, पक्षी, सुअर (एक), सुअर (दो), सिसुर (तीन), सुअर (चार), सुअर (पाँच), सुअर (छह), महापुरुष, राजा की शान, सम्राट की वापसी, पैसा, तिब्बत, कुतुब मीनार की ऊँचाई, पिंजडा, वसन्त, मरना, दिन, रात, शरारत, दिल्ली, सबसे अच्छे दिन, छूटते चले जाने की घटना, कविता आदि कविताएँ इसमें संकलित हैं। इस संग्रह की कविताओं में सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विद्वेषताओं का चित्रण है। इस संग्रह की कविताएँ समाज में पूँजीपति एवं श्रमिक वर्ग के बीच में देखनेवाली असमानता को दर्शाती हैं। इस

संग्रह की 'पिता', 'इमारत', 'सरकार' आदि कविताओं में श्रमिक एवं मज़दूर वर्ग के दर्द की प्रस्तुति है, तो 'महापुरुष', 'सुअर' आदि कविताओं में तत्कालीन राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट मानसिकता का अंकन है। 'सुनो कारीगर' और 'हालचाल' नामक कविताओं में अर्थाभाव से परेशान आम आदमी की दयनीय स्थिति का चित्रण है। इस संग्रह की प्रत्येक कविता वर्तमान समाज की विसंगतियों को यथार्थ रूप में उद्घाटित करने में सक्षम बन चुकी है।

३.३.२. अबूतर कबूतर

उदय प्रकाश का दूसरा कविता संग्रह 'अबूतर -कबूतर' १९८४ ई. में प्रकाशित हुआ। पसली का दर्द, अबूतर-कबूतर, करीमन और अशर्फी आदि तीन खंडों में विभाजित है यह संग्रह। कुछ बन जाते हैं, नींव की ईंट हो तुम दीदी, अब लौटें, भाई रे, पूरी ताकत से, समान्यतया ऐसा होता है, पसली का दर्द, एक शहर को छोड़ने हुए आठ कविताएँ, कविता, आलबम, घोड़े की सवारी, अजगर की नींद, घर की दूरी रीत की फूल, मेरी बारी, एक दिन जलूंगा मैं, दरवाज़ा, नोनो, शत्रु, तानाशाह की खोज, मदारी का खेल, चौथा शेर, राज्यसत्ता, दो, हाथियों की लड़ाई, खेल, एक था अबूतर एक था कबूतर, तितली, गाँधीजी, दुआ, व्यवस्था, वर्षा राग, करीमन और अशर्फी, महाजनों येन गतः, सरकारी कोयल, छींक, पांडेजी, बैरागी है आया गाँव आदि कविताएँ इसमें संकलित हैं। इस संग्रह की कविताओं में समसामयिक समस्याओं से गहरा सरोकार है। देश में व्याप्त सत्ता के अदृश्य पक्षों का उद्घाटन करनेवाली कविता है 'चौथा शेर'। संग्रह की अधिकांश कविताएँ सामाजिक यथार्थ से पाठक को अवगत कराती हैं। 'दो हाथियों की लड़ाई' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि यह व्यक्त करते हैं कि दो महाशक्तियों की लड़ाई में इन शक्तियों का कुछ नहीं बिगड़ता। लेकिन इनके बीच में जो कमज़ोर है वही कुचल जाता है। इस संग्रह की कविताओं में जीवन यथार्थ के प्रति कवि गहरी संवेदना प्रकट करते हैं। सामाजिक यथार्थ के अभिव्यक्ति के साथ-साथ सत्ता एवं राजनीति की नृशंसता का परिचायक भी है अबूतर-कबूतर संग्रह की कविताएँ।

३.३.३. रात में हारमोनियम

उदय प्रकाश का तीसरा कविता संग्रह 'रात में हारमोनियम' १९९८ ई. में प्रकाशित हुआ। पत्थर, अर्जी, मैं लौट जाऊँगा, ढेला, बचाओ, चंद्रमा, किताब, शरीर, औरतें, इस सदी में एक लड़की, वास्तविकता के बारे में एक कविता, सहानुभूति की मांग, तपस्या, पंचनामे में जो दर्ज नहीं है, कवि की पीड़ित खुफिया आँखें, एक नसीहत, घर, और पत्ते गिर रहे हैं, किसका शव, कौए, और लेखक का दिल्ली में देहांत, दिसंबर, तीली, वसंत की धूप में महिला, वर्तमान को धन्यवाद, ईलू-ईलू, महाभारत के बाद, प्रधानमंत्री रमेश जी, डायनोसोर, हत्यारे ने सीटी बजायी, पंजाब : कुछ कविताएँ, भीमसेन जोशी-प्रसंग, व्यवस्था, द्वारपाल, विद्वानलोग, मसखरों की पहचान में कुछ पंक्तियाँ, परदा, रात में छूट गया हारमोनियम, कप, पूरा होने वाला वाक्य, हत्या, अमरता, बस में पिता, इंजीनियर इंतजार में हैं, दुर्दिनों में कविताएँ, तिनसुकिया, बीतता हुआ दिन, कायदा, दशहरी आम, नहीं तो मैं रास्ता भूल जाऊँगा, बारिश में कंचे, मैं छुपाता हूँ, सरल रेखाएँ, की बोर्ड, माधो के लिए कुछ कविताएँ, झाड़ी, तीन वर्ष, कैदी, उजाला, परछाई, हम वही हैं, एक कविता के नोट्स, अलविदा आखिरकार, भागो, नमस्कार, हम हैं ताना-हम हैं बाना आदि ६५ कविताएँ इसमें संकलित हैं। समाज में व्याप्त अमानवीयता, राजनीतिक विद्रूपताएँ, असुरक्षा का भाव आदि इस संग्रह की कविताओं में देख पाते हैं। इसमें भारतीय न्यायव्यवस्था एवं सरकारी नीतियों के खोखलेपन के दर्शाने के साथ समकालीन बाज़ारवादी संस्कृति का अंकन भी है। कवि इस संग्रह की कविताओं के माध्यम से भ्रष्ट समाज का पर्दाफाश करते हैं।

३.३.४. एक भाषा हुआ करती है

उदय प्रकाश का चौथा काव्य संग्रह 'एक भाषा हुआ करती है' २००८ ई. में प्रकाशित हुआ। यह जो किसी कदर बचा -खुचा जीवन है धन्यवाद, जलते हुए दृश्य में अपने पंख बचाते हुए, एक भाषा हुआ करती है आदि तीन खंडों में विभाजित है इस संग्रह की

कविताएँ। मैं यहाँ हूँ, एक लिखी जा रही कविता का पहला ड्राफ्ट, छिपकली, समकालीन साहित्य की केन्द्रीय समस्या, मक्खियों की आत्माएँ, स्मृति-शेष, सफल चुण्पी, तनिक कान दें, एक जल्दबाज बुरी कविता में आँकड़े, चंकी पाण्डे मुकर गया है, एक डरे हुए रिक्शनरी कवि की कविता, जीवित, घर या मज़ार, रेख्ते में कविता, स्वर्ग, टेलिफोन, पता, पेड की भाषाहीनता के बावजूद, सुबह, पर्यावरण, एक अलग-सा मंगलवार, इस समूचे दृश्य के बाद, एक द्युति भर, न बरहमनी, न कैथी, यिद्दिश में था जीवन, उस दिन गिर रही थी नीम की एक पत्ती, विचार, वे यहीं कहीं हैं, आग, जो फिल्म नहीं है का दृश्य, पंटून पुल, राजधानी में बैल, समाज के बारे में एक व्यक्तिवादी कविता, ध्रुवपद, आँकड़े, एक भाषा हुआ करती है, माँ, बिरजित खान, और अंत में: एक अकेले का गाना आदि ३८ कविताएँ इसमें संकलित हैं।

इस संग्रह की कविताएँ सांप्रदायिकता, जातिवाद, सत्ता, अन्याय, एवं अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाती हैं। समाज के कई वर्गों का चित्रण इस संग्रह की कविताओं में देख पाते हैं। इस संग्रह की कविताओं में समाज की यथास्थिति का अंकन है।

३.३.५. अम्बर में अबाबील

उदय प्रकाश का पाँचवाँ कविता संग्रह 'अम्बर में अबाबील' २०१९ में प्रकाशित हुआ। विष्णु की खोज में गरुड, सिद्धार्थ, कहीं और चले जाओ, अरुन्धति, किसी पथ्य या दवा जैसी हँसी, क, तिब्बत अदि छः खंडों में विभाजित है इस संग्रह। मेरा मोबाइल नम्बर डिलीट कर दें प्लीज़, जलावतनी, विष्णु की खोज में गरुड, दुआ, न्याय, रोशनी, उल्का-पात, बेटी, नागरिक स्वतन्त्रता, एक ठगे गये मृतक का बयान, दुख, नक्षत्र, सिद्धार्थ कहीं और चले जाओ, स्वेटर, इस शहर में एक किसी रोज़ कोई जब विदा हुआ था, जाओ, कवि, सब ठाठ धरा रह जाएगा गोलाम्बर, सत्ता, मानसून में दिल्ली, कविता का बजट-सत्र, दुर्गा, फिलहाल, एक जल्दबाज बुरी कविता में आँकड़े, तनिक कान दें, मूवी में स्टिल, अरुन्धति : एक अ-समाप्त कविता, जो स्थगित हो गयी, डर, मुझे प्यार

चाहिए, स्वर्ग, मैं जीना चाहता हूँ, भाग्य-रेखाएँ, देवता, स्वतंत्रता, वन्दे-मातरम्, उनका उनके पास, भरोसा, नाइनटीन एट्टीफोर, छह दिसंबर उन्नीस सौ बयानवे, क्षेपक, रेख्ते में कविता, भाषा बहती वैतरणी, क, तिब्बत, दूसरी कड़ी, तीसरी कड़ी, अन्तिम कड़ी आदि ४८ कविताएँ इसमें संकलित हैं। उदय प्रकाश का पहला कविता संग्रह प्रकाशित होने के लगभग चार दशक बाद इस काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है। इस लंबी अवधि के दौरान दुनिया पूरी तरह से बदल चुकी है। संग्रह की अधिकांश कविताएँ विस्थापित जीवन यथार्थ का अंकन हैं। साइबरस्पेस के आभासी अंबर में अपने होने को प्रमाणित करती हैं इस संग्रह की कविताएँ। विस्थापन, निर्वासन, बे-दखली, भय, गृह-विहीनता, दिशाहारापन, व्याकुलता आदि इस संग्रह की कविताओं में देख पाते हैं।

३.४. मानवीय संवेदना के संदर्भ में

“मुझे प्यार चाहिए

बहुत ज़्यादा अपार अनहद अपरिमित प्यार

मैं किसी से भी कर लूँगा प्यार

कर सकता है तो कर ले कोई मुझे प्यार”^१

प्यार चाहनेवाले कवि प्यार करना भी जानते हैं। लेकिन इस ज़माने में प्यार चाहना एवं प्यार करना अपराध बन चुका है। ज़माना बदलने के साथ ही साथ ‘प्यार’ शब्द का अर्थ भी बदल चुका है। आज ‘प्यार’ का अर्थ है ‘पैसा’। ऐसी परिस्थिति में मानव-मानव के बीच और मानव-प्रकृति के बीच दूरियाँ बढ़ना स्वाभाविक है। अब कवि, हृदय की सहज स्वाभाविक मृदु विकारों को खोकर जीनेवाले एक झुंड मानव के बीच में हैं। समाज के कटु यथार्थ को दूर से नहीं बल्कि उनके बीच में से गुज़रकर अनुभव करनेवाले कवि उदय प्रकाश की वाणियों की अभिव्यक्ति मानवीय संवेदना से युक्त है। मानवता को बनाये रखने के लिए भरसक प्रयत्न करनेवाले कवि की पीड़ा की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है उनकी कविता।

डॉ.संतोष कुमार तिवारी के अनुसार “उदय प्रकाश की कविता जनता की सामूहिक चेतना के उद्भव की कविता है। कवि वर्गीय चरित्र को अच्छी तरह जानता है और शोषितों की पक्षधरता ग्रहण कर शोषण से मुक्ति का हिमायती है।”^२ वर्तमान शोषण व्यवस्था में पिसकर जीने के लिए विवश, सर्वहारा आम आदमी ही उनकी कविताओं के केन्द्र में है। अपनी कविता में सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ, वर्तमान राजनीति का खोखलेपन, वर्तमान लिंगनीति, आर्थिक असमानताएँ, कुप्रशासन, भ्रष्टाचार आदि जटिल समस्याओं को वे खुलकर दिखाते हैं। ऐसी समस्याओं से जूझकर निकलनेवाली कविता का भावपक्ष इतना मज़बूत है कि वह पाठकों के अंतर्मन में सुषुप्त संवेदनाओं को छूकर जागरित करने में सक्षम है।

मानवीय संवेदनाओं से हटकर स्वार्थ के रास्ते में चलनेवाले समाज के हर पक्ष पर कवि की नज़र है। उनके कवि मन समय और समाज के हर पक्ष को यथार्थ एवं संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करने में समर्थ बन चुके हैं। साथ ही साथ पूँजी और सत्ता की दौड़ा दौड़ी में खोई हुई संवेदना को वापस पकड़ने का सतत प्रयास भी वे करते हैं। मानवीय संवेदना के धरातल पर उदय प्रकाश के काव्य साहित्य के अंतर्गत समाज, राजनीति, अर्थ, संस्कृति, नैतिकता आदि कई विषयों को लेकर हम चर्चा कर सकते हैं।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। उनकी क्रियाओं का आदान-प्रदान समाज में होता रहता है। समाज मानवीय संबंधों का परिचायक है। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक का कार्यान्वयन समाज में संभव हो पाता है। “समाज एक क्रियात्मक संगठन, संस्था, सभा एवं समूह है, जिसमें मानवीय संबंध और विशिष्ट उद्देश्य निहित होते हैं।”^३ कई वर्ण, वर्ग, जातियों में विभक्त मानवीय समाज का वास्तविक अंकन करने में साहित्यकार सक्षम बन चुके हैं। उदयप्रकाश उन्हीं साहित्यकारों में अग्रणी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में कल्पना को छोड़कर जीवन यथार्थ का चित्र खींच रखा है। निश्चय ही उनकी कविताएँ समकालीन समाज की गवाही है। “कविता ही नहीं कोई भी कला-रचना उस समाज से

प्राप्त होती है। जिसमें उसका रचनाकार सौंस लेता है। वह उस समाज का महज शब्द-प्रतिबिम्ब नहीं होती बल्कि रचनाकार की चेतनता और जागरूकता के कारण उसे प्रभावित करती और बदलती भी है।”^४ उदय प्रकाश की कविता में अभिव्यक्त मानवीय संवेदनात्मक पहलुओं पर यहाँ विचार करेंगे।

३.४.१. समय की पहचान

कवि या साहित्यकार हमेशा अपने समय के प्रति जागरूक रहते हैं। हरेक समय में तत्कालीन काल में कविगण के क्रिया कलापों, अन्याय के प्रति जनता को अवबोध कराने का प्रयास करते हैं। अपराध, अपसंस्कृति, अक्रामकता राजनीति, दलाली प्रवृत्ति, सांप्रदायिकता, हिंसा, बिगड़ी हुई न्याय व्यवस्था, झूठी पत्रकारिता आदि कारणों से मानव का जीवन संकट में हैं। कवि उदयप्रकाश हमें इस भीषण समय से आगाह करता हुआ ‘चंकी पांडे मुकर गया है’ नामक कविता में ऐसा लिखते हैं-

“साथियों, यह एक लुटेरा अपराधी समय है
जो जितना लुटेरा है, वह उतना ही चमक रहा है
और गूँज रहा है
हमारे पास सिर्फ अपनी आत्मा की आँच है और
थोडा-सा नागरिक अंधकार
कुछ शब्द हैं जो अभी तक जीवन का विश्वास दिलाते हैं।”^५

समय की पहचान रखनेवाले संवेदनशील कवि उदयप्रकाश हमें चेतावनी देते हैं कि यह इतना अपराधी समय है, एक दिन हमारी नागरिकता, बच्चे कुचे शब्द एवं अपनी आत्मा को भी हमसे छीन लिये जायेंगे।

३.४.२. विस्थापित जीवन की त्रासदी

एक व्यक्ति या समूह को अपनी जड़ों से उखड़ने के संबंध में सूचना देनेवाला शब्द है ‘विस्थापन’। अपने जन्मदेश, अपने संस्कार, खान-पान, रहन-सहन इन सबको

छोड़कर एक बेगानी धरती में जाकर बसना मुश्किल की बात है। विशेषकर अपने देश की आतंकित स्थिति के कारण मज़बूरीवश विस्थापित होना और ज़्यादा दर्दनाक है। विस्थापन तो अपने जन्मदेश को छोड़कर दूसरे देश में चला जाना मात्र नहीं, बल्कि अपने इतिहास, संस्कृति, अपनी भाषा, अपनी प्रकृति इन सबको छोड़कर चला जाना है।

उदय प्रकाश की कविता 'तिब्बत' विस्थापित जनजीवन की त्रासदी को अभिव्यक्ति प्रदान की है। सन् १९८१ में भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित इस कविता में उन्होंने अपने गाँव में तिब्बत से आज हुए लामाओं का चित्रण किया है। तिब्बत पर जब चीन ने हमला कर दिया है तब ये लोग वहाँ से भागकर भारत आ गये हैं। चीन द्वारा इन लोगों के नागरिक स्वतंत्रता पर हनन होता गया और अब ये लोग शरणार्थी बन गये। एक छोटे बच्चे होते हुए भी शरणार्थी होकर घूमनेवाले इन तिब्बतियों को देखकर कवि का मन द्रवित हो उठते थे। मृतक लामा के दाह संस्कार देखकर कवि को ऐसा लगता है-

“जब लोग मर जाते हैं
वे मंत्र नहीं पढ़ते।
वे फुसफुसाते हैं - तिब्बत
तिब्बत - तिब्बत
तिब्बत - तिब्बत
तिब्बत - तिब्बत”^६

कविता केवल तिब्बतियों की आत्मपीडा की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि एक संवेदनशील कवि की पर पीडा का परिचायक भी है। स्वयं कवि के ही शब्दों में - “मैं आज तक नहीं जानता कि लामा मृतक का अंतिम संस्कार किस तरह करते हैं उसे दफनाते हैं, जलाते हैं, पारसियों की कहीं शव को छोड़ देते हैं या नदी में बहा देते हैं। लेकिन मुझे इतना ज़रूर लगता है कि अपने घर और देश से हज़ारों मील दूर, जब कोई तिब्बती किसी और पराये देश में मरता है, तो अंतिम संस्कार के समय लामा जो प्रार्थना करते हैं या मंत्र पढ़ते

हैं, तो वह असल में ध्यान से सुनो ता, और कुछ नहीं, एक विलाप जैसा कुछ होता है। बहुत मार्मिक । भीतर तक बेध डालनेवाला। व्याकुल कर डालनेवाला।”⁶

३.४.३. श्रमशील जीवन या मज़दूर वर्ग के पक्षधर

श्रमिक वर्ग बड़ी ईमानदारी से अपना खून पसीना बहाकर काम करनेवाले हैं। लेकिन कठिन मेहनत करने के बावजूद भी उनकी ज़िदगी अभावग्रस्त है। इस मशीनीकृत युग में दिन-प्रतिदिन श्रम एवं श्रमिकों की महत्ता कट जाती है। हर रोज़ उनके ऊपर दारुण विपत्तियाँ आ पड़ती हैं। असल में ये श्रमशील वर्ग दुनिया का निर्माता है। लेकिन उन्हें सहारा देने के लिए उनसे हाथ बंटाने के लिए कोई नहीं है।

कवि उदयप्रकाश समझते हैं कि इन श्रमिक वर्गों के साथ देना अपना कर्तव्य है। इसलिए उनकी कविताओं के द्वारा कारीगर, परमेसुर, डाकिया, दुःखिन बहू, बूढ़ा नौकर, पिता अपनी यातनापूर्ण जीवन यथार्थ पाठकों के सम्मुख अनावृत करते हैं। मानवीय संवेदना के साथ रचना धर्म निभाना मात्र नहीं कवि इस वर्ग से अपना जुड़ाव दर्शाते हैं। उनके साथ चलने की कवि की प्रतिबद्धता ‘सुनोकारीगर’ नामक कविता में यों व्यक्त करते हैं -

“मैं तुम्हारे साथ हूँ
तुम्हारी पुकार की ऊँगलियाँ थाम कर
चलता चला आऊँगा
तुम्हारे पीछे - पीछे”⁷

अपनी कविता ‘इमारत’ में वे एक कारीगर की जीवनस्थिति को व्यक्त करते हैं। कारीगर द्वारा बनाये गये इमारत में कवि पसीने में लथपथ हुआ कारीगर का चेहरा देखते हैं। कारीगर बूढ़ा होने के साथ ही साथ इमारत भी पुरानी हो गयी है। कारीगर और इमारत के बीच में संबंध है। कारीगर का चेहरा पसीने में लथपथ होने के कारण इमारत की दीवारों में सीलन है। कारीगर के शरीर में जख्म है तो इमारत की दीवारों में दरार है। कारीगर के

बाल झुड गये तो इमारत का प्लास्टर उखड़ रहे हैं। कारीगर तो असल में निर्माता है। अपनी सृजन के प्रति कारीगर का गहरे लगाव चित्र सामने उभर आते हैं।

“नहीं जानता इंजिनियर
या जानता है
कि इमारत हिल रही है
ज़ोर-ज़ोर से
क्योंकि तीन सौ मील दूर
गाँव में अपनी झिलंगी खटिया
पड़ा हुआ कारीगर
खास रहा है ज़ोर - ज़ोर से।”⁸⁹

ये कारीगर लोग तो निर्माता हैं। असल में ये लोग चीज़ों का निर्माण नहीं करते हैं, दुनिया का निर्माण अपने हाथों से कर रहे हैं। फिर भी ये लोग अभावग्रस्त ज़िंदगी जीने के लिए विवश हैं।

आज कंपनियों मज़दूरों के ऊपर काम का बोझ रखती हैं। काम के दबाव के कारण उन्हें विश्राम करने के लिए भी फुरसत न मिलता है। ८ या १० घंटे काम करनेवाले मज़दूरों को बीमारी हो तो भी छुट्टी न मिलती है। उदयप्रकाश ‘पूरी ताकत से’ कविता में बीमार होकर भी काम करने के लिए विवश कम से कम दस घंटे की नींद चाहनेवाले एक मज़दूर के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हैं। इस कविता में बीमारी से त्रस्त होकर विश्राम चाहनेवाले मज़दूर को कवि यों व्यक्त करते हैं।

“मैं कम से कम दस घंटे सोना
चाहता हूँ एक बार
क्या कहीं से मिल सकते हैं मुझे इतने घंटे
बोनस के बतौर?”⁹⁰

मज़दूरों के जीवन की दयनीय अवस्था पर कवि हमेशा चिंतित हैं। 'अनुकपूर जंक्शन' नामक कविता में खलासियों के माध्यम से कवि उनके जीवन की दयनीय अवस्था को चित्रित करते हैं। वे दिन-रात काम करते रहते हैं। वे हमेशा पटरियों की जाँच पड़ताल करते हैं। पटरियों के नट बोल्ट, फिश प्लेट, टेलिफोन के तार आदि पर ध्यान देकर ये खलासी लोग रात भर बिना नींद के रहते हैं। लेकिन उनके बारे में या उनके श्रम के बारे में कोई सोचता ही नहीं। तब कवि कहते हैं -

“कोई नहीं सोचता
खलासियों के बारे, में
लेकिन, खलासी सोचते रहते हैं
सबके बारे में”⁹⁹

उदय प्रकाश 'सुनोकारीगर', 'हालचाल', 'पिता', 'इमारत', 'सरकार', 'सुराही', 'अनुकपूर जंक्शन', 'गैम सैक्चुरी' कविताओं के माध्यम से श्रमिकवर्ग के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हैं। हमारे जीवन में उन लोगों का स्थान बहुत बड़ा है। जीवन के लिए उपयुक्त चीज़ों का निर्माण उन्हीं के हाथों से है। लेकिन कोई भी उनके बारे में सोचता ही नहीं। लेकिन कवि हमें याद दिलाता है कि-

“ऊँगलियों के बिना
माटी माटी है
घड़ा नहीं
ऊँगलियों के बिना
माटी माटी है
रोटी नहीं।”⁹²

संसार हर पल विकास की ओर चल रहा है। लेकिन इस प्रगति के पीछे इन श्रमिक वर्गों का हाथ है। लेकिन ये लोग कठिन मेहनत करने के बाद भी अभाव में जीने के लिए विवश हैं। जैनेन्द्रकुमार के अनुसार “मज़दूर अपने श्रम का तो मालिक है सिर्फ वेतन के नाते ही मज़दूर है।”³³

३.४.४. नारी जीवन की त्रासदी

आजकल स्त्रियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए अनेक नियम हैं। कई तरह के नियम द्वारा समाज में पुरुष के समान अधिकार स्त्री को भी प्रदान किया गया है। फिर भी पुरुष प्रधान समाज में ज्यादातर स्त्रियों की दशा आज भी दयनीय है। शिक्षा पाने का अधिकार नियम द्वारा स्थापित है। फिर भी कई स्त्रियाँ इससे वंचित हैं। आर्थिक ढंग से परतंत्र होने के कारण वे समाज और परिवार के दबाव में हैं। एक संवेदनशील रचनाकार होने के नाते उदयप्रकाश ने स्त्रियों की दयनीय स्थिति को अपनी रचनाओं के माध्यम से मुखर किया है। 'औरतें', 'तपस्या', 'परदा', 'पंचनामे' में दो दर्ज नहीं, 'मालिक आप नाहक नाराज़ है', 'बढई की लड़की', 'कवि की पीड़ित खुफिया आँखें', 'वसंत की धूप में महिला', 'मूंगफली और कुछ लोग', 'एक अलग सा मंगलवार', 'सफल चुण्पी', 'एक जलदबाज बुरी कविता में आंकड़े', 'चंकी पांडे मुकर गया है आदि कविताओं में स्त्री जीवन की त्रासदी को वाणी दी है।

'औरतें' नामक अपनी कविता में उन्होंने स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचारों का भयावह चित्र उपस्थित किया है। हमारे राष्ट्र में बलात्कार के विरुद्ध कई कानून हैं। लेकिन दिन प्रतिदिन बलात्कार का शिकार बननेवाली स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है। छोटी छोटी भोली भाली लड़कियों से लेकर बुजुर्ग महिलाओं तक बलात्कार का शिकार बनना एक सामान्य सी बात बन गई है। 'औरतें' नामक अपनी कविता में वे लिखते हैं -

“वह औरत पर्स से खुदरा नोट निकालकर
कंडक्टर से अपने घर
जाने का टिकट ले रही है
उसके साथ अभी ज़रा देर पहले बलात्कार हुआ है।”⁹⁸

अपने घर में भी स्त्री सुरक्षित नहीं है। अपने पति एवं ससुरालवालों के द्वारा उसे निरंतर प्रताड़ना सहनी पड़ती है। दहेज हत्या की संख्या भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इनकी ओर कवि ने इन पंक्तियों में संकेत किया है-

“वह पति या सास के हाथों मार दिए जाने से
 डरी हुई सोती-सोती अचानक चिल्लाती है
 एक औरत बालकनी में आधीरात खडी हुई
 इंतज़ार करती है
 अपनी जैसी ही असुरक्षित और बेवस किसी दूसरी
 औरत के घर से लौटने
 वाले अपने शराबी पति का।”⁹⁴

इस कविता में कवि कई तरह की पीडा सहनेवाली औरतों के माध्यम से स्त्रियों पर होनेवाले अन्याय का भयावह चित्र उपस्थित किया है। माँ की कोख में भी स्त्रीजीवन सुरक्षित नहीं है। इस दुनिया में जन्म लेने से इंकार करके लड़कियाँ गर्भ के अंधेरे में छुपना चाहती हैं। लेकिन यहाँ विचारणीय बात यह है कि -

“वहाँ भी खोज लेती है उन्हें भेडिया ध्वनि तरंगों
 वहाँ भी, भ्रूण में उतरती है हत्यारी कटार”⁹⁵

पुरुषप्रधान समाज स्त्री को हमेशा भोगवस्तु मानता है। वर्तमान उपभोगवादी समाज में इसे बढ़ावा मिल गया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादों को बेचने के लिए स्त्री शरीर और सौंदर्य का प्रदर्शन विज्ञापन द्वारा हो रहा है। विज्ञापन और फिल्मों ने महिलाओं के श्रम और देह को मुनाफे में बदल दिया है। बाज़ार के क्षेत्र में स्त्री एक व्यक्ति नहीं, बल्कि एक वस्तु मात्र बन गयी है। वह पुरुषों के लिए एक मनोरंजक वस्तु या भोग्या बनकर रह जाती है। उपभोक्ता संस्कृति में स्त्री की स्थिति की ओर संकेत करते हुए उदयप्रकाश ने ‘सफल चुप्पी’ नामक कविता में ऐसा लिखते हैं-

“सिनेमा हॉल की सबसे अगली कतारों पर बैठे हुए
 वे मनोरंजन उद्योग का बॉक्स ऑफीस तय करते थे
 और जब अस्सी लाख या डेढ़ करोड की फीस लेकर
 नाचती हुई एक
 आइटम गर्ल

हिलाती थी अपने कूल्हे और छातियाँ
तो उनकी सीटियाँ बजती थी अंधेरे में।”⁹⁹

‘पंचनामे में जो दर्ज नहीं है’ कविता स्त्रियों पर हो रहे अमानवीय कृत्यों का चित्रण करती है। कविता इस बात का साक्षी है कि स्त्री चरित्र भी दोहरा है। इसलिए ही रात में गहरी पीडा सहने के बाद वह दिन में शादियों में जाती है, खूब हँसती है, खूब खाती है। गहने और रंगीन कपडे पहनकर एक दूसरे को जलाती है। लेकिन अंधेरे में उसी औरत की नाक से खून बहता है। वर्षों तक पति की इच्छानुसार जीनेवाली औरत को निर्दय पति ही अपने हाथों से मार डालते हैं। और वह इस अत्याचार को चुपचाप सहती है। दिन के उजाले में वह जितनी खुश होती रहती है उतनी रात के अंधेरे में दुःखी होती है।

हिंदू विश्वासों में दुर्गा की आराधना महत्वपूर्ण है। दुर्गापूजा के अवसर पर हर गाँव में, हर शहर में, हर गलियों में दुर्गा की मूर्तियाँ रखकर हम दुर्गापूजा मनाते हैं। जय माता की आवाज़ अंतरीक्ष में गुँज उठती है। एक ओर देवता होते हुए भी दुर्गा का पूजा पाठ करते हैं। लेकिन दूसरी ओर स्त्री के प्रति अमानवीय व्यवहार भी। अपने कविता संग्रह ‘अंबर में अबाबील’ की ‘दुर्गा’ नामक कविता में कवि दुर्गापूजा के अवसर पर दुर्गा (एक स्त्री) पर होनेवाली बलात्कार को यों व्यक्त करते हैं-

“ठीक इन्हीं पलों में
हरियाणा के कैथल
या राजधानी की धौलाकुआँ या गुडगाँव में
किसी बी एम डब्ल्यू, एस्कोडा या सफारी की बन्द अंधी काँच की
खिडकियों के भीतर
चीखकर बेहोश हो चुकी होगी दुर्गा।”¹⁰⁰

क्योंकि कवि जानते हैं एक सौ नब्बे किलो का असबाब सिर पर उठाकर बैतूल के रेलवे प्लेटफार्म पर चलनेवाली २१ साल की साँवली दुर्गा के पीछे बाज जैसी आँख गडाकर आलूवाला चल रहा है। दुर्गा जो है कठिन मेहनत करनेवाली है, एक सौ नब्बे

किलो सिर पर उठाने की ताकत उनमें है। इतनी ताकतवाली होते हुए भी वह पुरुष का शिकार बन जाती है।

परिवार भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वहाँ पति-पत्नी, बच्चे एक साथ खुशी से रहते आये हैं। लेकिन परिवार आज कुछ स्त्रियों के मन में डरावना बन गया है। अब ऐसी स्थिति आई है कि अपने पति को भी घर के अंदर डरना है तो वह-

“औरत अपने पति के डर से भागकर

अजनबी किसी शहर में खोजती है अपना टिकाना।”^{१९}

‘एक नसीहत, जो हम बताये जाते हैं’ कविता में वे स्त्रीजीवन का चित्र यों व्यक्त करते हैं -

“समूची नागरिकता वहाँ पचास साल से खोखली है

स्त्रियाँ निरंतर प्रजनन् और प्रसव करती है।

कैमरों के सामने नंगी, अधनंगी परेड करती हुई अपनी

फटी मृत आँखों से सभ्यता को देखती है और बिना चीखे

चुपचाप किसी स्टोव या किसी तंदूर में दाखिल हो जाती हैं।”^{२०}

उदय प्रकाश की कविता ‘तपस्या’ में सिलाई करनेवाली औरत का वर्णन है। आँखें गडाकर, सिर झुककर अपने काम में तल्लीन होकर वह सिलती रही है। वह अपने काम में इतना मग्न है कि मानो तपस्या कर रही हो। दुनिया बदलती जा रही है, उसके बाल सफेद हो रहे हैं फिर भी उसके सामने तकलीफों का धागा कभी खत्म नहीं होता है। इसलिए जीवन के एक छोर को दूसरी छोर से जोड़ने के लिए वह विवश बन पडी है। अपने काम में मग्न होकर सालों से कठिन मेहनत करने के बाद भी उसकी जिंदगी अभाव ग्रस्त है। फिर भी वह मन ही मन इतना ताकतवर है कि उनकी आँखों की रोशनी मद्धिम ही नहीं पडी है। ‘मालिक आप नाहक नाराज़ है’ कविता में मालिक के घर में मेहनत करनेवाली एक कहारिन का चित्रण है। कविता में मालिक द्वारा शारीरिक और मानसिक शोषण का शिकार औरत का वर्णन है।

स्त्रियों पर हो रही हिंसा की समस्या दुनिया भर की समस्या है। भारत में स्त्री को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए कई योजनाएँ हैं। फिर भी भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में नारी सामाजिक आर्थिक स्वतंत्रता से वंचित है। अनेक स्त्री मुक्ति आंदोलन की वजह से नगरों में कुछ बदलाव आये हैं। पारिवारिक और सामाजिक बंधनों से मुक्ति का रास्ता निकाला जा रहा है। लेकिन इस नव उपनिवेशवादी दौर में स्त्री बाज़ारवादी शक्तियों की गुलाम बनती जा रही है। सिनेमा, विज्ञापन और बाज़ार उपभोक्ताओं को लुभाने के लिए स्त्री देह को माध्यम बना रहा है। अर्थात् स्त्री सदैव शोषण का शिकार है। उदय प्रकाश अपनी कविताओं में स्त्री के दयनीय रूप का चित्रण करने के साथ ही साथ महानतम गुणोंवाली ताकतवर औरत को भी सामने लाने की कोशिश की है। अपनी कविताओं के माध्यम से कवि हमसे यह बताना चाहते हैं कि असल में एक स्त्री नींव की ईंट है।

३.४.५. बाज़ारीकरण की अभिव्यक्ति

यह भूमंडलीकरण का समय है। यहाँ विश्व के एकीकरण अर्थात् विश्वग्राम की बातें कर रहे हैं। लेकिन यह वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण पूरे विश्व को धनी और निर्धन के दो रूपों में विभाजित कर रहा है। नव उपनिवेशी शोषण का दूसरा रूप है वैश्वीकरण। निजीकरण, उदारीकरण और बाज़ारीकरण, वैश्वीकरण की देन है। जनहित का मुखौटा पहनकर अयी इन पद्धतियों के पीछे एक ही लक्ष्य है, वह है शोषण। औपनिवेशिक शक्तियों को आर्थिक लाभ पहुँचाना ही इनका उद्देश्य है। इसने हमारे देश की संस्कृति, सभ्यता, रहन-सहन, खान-पान, वेश भूषा में ज़्यादा प्रभाव डाला है। आज हम हर चीज़ को, मानवीय संबंधों को भी व्यापार के नज़रिए से देख रहे हैं। मानव मानव के बीच में संबंध सिर्फ उपभोक्ता और विक्रेता के रूप में परिवर्तित हो गये हैं।

श्यामचरण दुबे के शब्दों में “अर्थ व्यवस्था के भूमंडलीकरण के साथ अपसंस्कृति का भी भूमंडलीकरण हो रहा है। भोगवादी संस्कृति जंगल की आग की तरह फैल रही है और

जीवनदृष्टि और जीवन शैलियों को विकृत कर रही है। मूल्य विश्रृंखलित हो रहे हैं, विघटनकारी शक्तियाँ सामाजिक ढाँचे को जर्जर कर रही हैं।”^{२३} बाज़ारीकृत उपभोग संस्कृति का विकास भारत में बहुत तेज़ी से चल रहा है। बड़ी बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय बाज़ार में पूँजी निवेश करती हैं। सूचना क्रांति का विकास, कंप्यूटर और मोबाइल के क्षेत्र में विकास, नव माध्यमों का उदय आदि ने विज्ञापन के मायावी जगत् को खोलकर बाज़ारीकृत उपभोग संस्कृति में मानव को गुलाम बना दिया है। इस उपभोक्तावादी या बाज़ार केन्द्रित सभ्यता ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर गहरी चोट पहुँचा दी है। अपना जो जीवन तरीका है वह भी बाज़ार के अनुरूप बदलना पडा है। इस उपभोक्तावादी सभ्यता के अंतर्गत मानवीय संवेदना का कोई स्थान नहीं है। दिन प्रतिदिन मानवीय मूल्यों का हास हो रहा है। संबंधों या रिश्तों का आधार पहले की तरह स्नेह, दया, करुणा, ममता नहीं, बल्कि मुनाफा मात्र रह गया है। स्नेहवादी मानव को बाज़ारवाद ने भोगवादी बना दिया है। हमारे देश में व्याप्त नव संस्कृति पर कवि उदयप्रकाश अपनी कविताओं के माध्यम से चिंता व्यक्त करते हैं।

भारत में कुटीर उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। कुटीर उद्योगों में कारीगरों ने कम पूँजी निवेश करके अपने हाथों के माध्यम से कुशलतापूर्वक अपने घरों में रहकर वस्तुओं का निर्माण करते हैं। लेकिन आज के बाज़ार में इनके लिए कोई स्थान नहीं। ये लोग चीज़ों को अपने मूल रूप में गढ़ नहीं सकते। ‘सुराही’ शीर्षक कविता के माध्यम से कवि व्यक्त करते हैं कि बाज़ार के मुताबिक चीज़ों को गढ़ने के लिए ये विवश बन चुके हैं-

“बाज़ार के मुताबिक

तैयार करो सुराही

नहीं तो वह गेंडा - सा तुन्दियल

टेढा मेढा हाथी का बच्चा ठेकेदार कहेगा।

परमेसुर, बोल

टेढी कैसी है
सुराही की गर्दन?"^{२२}

बाज़ारीकरण के दौर में कुटीर उद्योग लगभग समाप्त हो चुके हैं। आज विभिन्न यंत्रों के माध्यम से काम चल रहे हैं। तब कुम्हार, लुहार, सुनार, बढई जैसे लोगों की ज़िन्दगी यातनापूर्ण बनने लगी। लेकिन बाज़ार एक विस्तृत पेड के समान बडे होकर चुप चाप एक दूसरे की जड़ों को छू रहा है। कवि लिखते हैं -

“इन पेडों की छाँह में
चुप थकी बैठी
बढई की लड़की
तेरी उम्र क्या होगी इस वक्त?
इस वक्त
जब पेड चुप-चुप
एक दूसरे की
जड़ों को छू रहे है।”^{२३}

नई अर्थव्यवस्था देश में व्याप्त है। उदारीकरण के फलस्वरूप पूरे विश्व को भारत में निर्बाध व्यापार करने का अवसर मिल गया। आज भारतीय बाज़ारों में अमेरिका जैसे विकसित देशों का आधिपत्य है। यहाँ के बाज़ारों में भारतीयों का स्थान सिर्फ उपभोक्ता के रूप में बदल गया है। बड़ी-बड़ी विदेशी कंपनियाँ पश्चिम से मालों का आयात कर रहे हैं। अपने मालों को यहाँ बेच देते हैं। अच्छा लाभ लेकर अपने देश में भेजते हैं। फलस्वरूप इंडियन रुपये का मूल्य दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा है। हमारा आर्थिक ढाँचा कमज़ोर होता जा रहा है। यहाँ गरीबों की संख्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस बात को लेकर कवि उदय प्रकाश का चिंतन है। तो वे हमें चेतावनी देते हैं-

“साथियों, यह एक लुटेरा समय है
नयी अर्थव्यवस्था की यह नयी सामाजिक संरचना है
आवारा हिंसक पूँजी की यह एक विल्कुल नयी ताकत है

और इसमें जो कुछ भी
 कहीं लोकप्रिय है
 वह कोई न कोई अमरीकी ब्राण्ड है
 गुलाम होने और गुलाम बनाने के सारे खेलों में
 अब बहुत बड़ा पूँजी निवेश है।”^{२४}

विज्ञापनों के माध्यम से बाज़ारीकरण को बढ़ावा मिल गया है। मीडिया में प्रचलित रंगीन विज्ञापन हमारे मन और मस्तिष्क को प्रभावित करके हमें चीज़ों का गुलाम बनाने का काम कर रहे हैं। लगातार दोहराकर झूठ को सच में बदल लेने की ताकत हरेक विज्ञापन में है। उत्पादित वस्तु को लोकप्रिय बनाकर उसकी आवश्यकता महसूस कराने का कार्य विज्ञापन द्वारा चल रहा है। ‘कवि की पीड़ित खुफिया आँखें’ नामक कविता के माध्यम से कवि हमसे यह प्रश्न पूछ रहे हैं कि तमाम लोगों को आवश्यक जो अच्छी और ठीक ठाक है उन्हीं चीज़ों पर कहीं विज्ञापन क्यों नहीं दिखाई देता? हमारे मन को लुभाकर नकली माँग की स्थिति पैदा करके हमें चीज़ों का गुलाम बनाने की विज्ञापन संस्कृति से विरोध करते हुए कवि पूछते हैं -

“एक छोटी सी जेब में समा जानेवाली कंघी
 खैनी, राई, अरहर और गुड के लिए
 अपने कपड़े क्यों नहीं उतारती मधु सप्रे और अंजली कपूर
 बीडी के बंडल का रैपर क्यों नहीं बनाते अलेक पदमली
 वो कौन हैं जिनके लिए इतना सारा उद्योग”^{२५}

बाज़ारवादी संस्कृति की उपज है गुलामी मस्तिष्क और मन अपने ‘शरीर’ नामक कविता में इस गुलामी बौद्धिकता को कवि यों व्यक्त करते हैं -

“रहा मस्तिष्क तो उसकी भी अपनी अलग आत्मकथा है
 उसके कई हिस्से अभी तक उपनिवेश है, किसी अन्य साम्राज्य के।”^{२६}

कविता में हम शरीर को देश के प्रतीक के रूप में ले सकते हैं। विदेशी शासनकाल में हम प्रत्यक्ष रूप से गुलाम या उपनिवेश रहे तो आज अप्रत्यक्ष रूप से अन्य साम्राज्यों के गुलाम बन चुके हैं।

‘घोड़े की सवारी’ नामक अपनी कविता के माध्यम से उदय प्रकाश यह व्यक्त करते हैं कि बाज़ारू संस्कृति ढोनेवाले मानव को कभी भी, वह चाहने पर भी इनसे मुक्ति नहीं है। कविता में घंटे भर लड़के ने आदमी को घोड़ा बना रखा था। जब लड़का गिर पड़ता है तब आदमी स्वतंत्र होता है। कवि पुनः अपने स्वत्व पर जाना चाहते हैं-

“लेकिन उसके गले में से
थके हुए घोड़े की
हिनहिनाहट निकली सिर्फ।”^{२७}

अब दिन और रात में कोई फर्क नहीं है। रात भी दिन के समान प्रकाशमान है। दिन भर कठिन मेहनत करने के बाद रात में शांत माहौल में नींद होनी चाहिए। मनुष्य की बुनियादी ज़रूरत में एक है नींद। शरीर, मन और आत्मा को स्वस्थ रखने के लिए नींद ज़रूरी है। नींद की कमी कई स्वास्थ्य समस्याओं को अमंत्रित कर सकती है। रात में प्रकाश के बीच सोने से लोगों की नींद पूरी नहीं होती। आज बढ़ती हुई बाज़ारों के कारण ऐसी कोई जगह बाकी नहीं है कि जहाँ अंधेरे हैं। तब कवि लिखते हैं-

“नींद के लिए बाकी था कल तक किसी कोने में एक अंधेरा
उठा ले गया बाज़ार”^{२८}

आज मॉल संस्कृति का विकास तेज़ी से हो रहा है। इसके फलस्वरूप गाँवों का अस्तित्व भी मिट रहा है। क्षण भर में एक इलाके का चेहरा इतना बदल जाता है कि पहचानने में मुश्किल होता है। बड़े-बड़े शॉपिंग मॉलों को बसाने के लिए लोगों को निरंतर उजाड़ा जा रहा है। इनमें ज्यादातर गरीब लोग होते हैं। सरकार जनवास केन्द्रों में शॉपिंग मॉल या बड़ी-बड़ी बिल्डिंग बनाने की अनुमति देती है। लेकिन इन उजड़े हुए

लोगों को बसाने के लिए उचित प्रबंध न कर रही है। 'सफल चुप्पी' नामक कविता में इन उजड़े हुए लोगों के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए कवि बताते हैं -

“बहुत खदेडा जाता था उन्हें दिल्ली से बाहर
लेकिन वे कीड़ों और मक्खियों की तरह हर जगह आ जाते थे
उनके टपरे सुबह-सुबह उग जाते थे वहाँ, जहाँ कल तक नहीं था
उनका निशान
पुलिस आती थी बुलडोज़रों और बंदूकों के साथ
और उजाड़ती रहती थी
उनका संसार।”^{२९}

बाज़ारीकरण के इस दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व है। हमारी सभ्यता और संस्कृति का निशान, जो - जो वस्तुओं पर हम गर्व रखते थे वे सब अब गायब होते जा रहे हैं। हमारे जीवन के अंग खिचड़ी, तटेरा, मदारी, लोहार, किताब, भडभूँजा आदि का अस्तित्व खतरे में है। तब मानवीय संवेदना पर बल देनेवाले कवि के मुँह से 'बचाओ' शब्द निकलना स्वाभाविक है। जैसे-

“बचाना ही हो तो बचाये जाने चाहिए
गाँव में खेत, जंगल में पेड़, शहर में हवा
पेड़ों में घोंसले, अखबारों में सच्चाई, राजनीति में
नैतिकता, प्रशासन में मनुष्यता, दाल में हल्दी।”^{३०}

३.४.६. न्यायव्यवस्था पर प्रहार

हरेक मानव को जन्म से ही अधिकार प्राप्त है। साथ ही साथ कानून द्वारा ये अधिकार सुरक्षित हैं। अधिकार को प्रदान करना, आदर करना, और उनका बचाव करना सरकारों की ज़िम्मेदारी है। जब आदमी अपने अधिकारों से वंचित होकर अनेक संकटों एवं खतरों में फँस जाता है तब उन्हें बचाने के लिए देश में न्यायव्यवस्था कायम है। समाज में न्याय व्यवस्था का बड़ा महत्व है। एक अनुशासित समाज को बनाये रखने में

न्याय व्यवस्था की अहम भूमिका है। असहाय एवं लाचार व्यक्ति को अन्याय एवं अत्याचार से बचाने के लिए कानून का निर्माण किया गया है। आज कानून का पालन करनेवालों से ज़्यादा कानून तोड़नेवाले हैं। एक समय था जब न्यायालय में गरीब और अमीर दोनों को आसानी से न्याय मिलता था। आज स्थिति यह हो चुकी है न्यायालय में न्याय का आधार कुछ ओर बन गया है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर पर प्रतिष्ठावान लोग गरीबों को कुचल देने पर भी न्यायपालिका उन लोगों का कुछ नहीं बिगाडती। ऐसी कई घटनायें हम दिन प्रति दिन देख रहे हैं। इस हालत में किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के दिल में चोट पहुँचना स्वाभाविक है। उदयप्रकाश जैसे कवि अधिक भावुक और संवेदनशील होने के कारण इन बातों की खुली अभिव्यक्ति देते हैं।

‘नयी सदी का पंचतंत्र’ शीर्षक रचना में भारत सरकार के कानून पर उदय प्रकाश अपनी राय प्रकट करते हैं - “भारत सरकार का कानून ‘संदर्भ संवेदी’ है। कौन ऊँचा है कौन नीचा, कौन ब्राह्मण है, कौन शूद्र कौन हाई है कौन लो इन सबका ध्यान में रखते हुए ही कोई कानून लागू होता है।”^{३३} उदय प्रकाश की ‘दुर्दिनों में कविताएँ’ शीर्षक कविता में आज के न्याय को कवि यों व्यक्त करते हैं-

“न्यायाधीश तोड़ता है कलम
न्याय विद लेते है जमुहाइया
दुर्दिनों में ऐसे ही हुआ करता है न्याय।”^{३२}

आज अदालतों में बड़ी मात्रा में मुकदमे लंबित पड़े हुए हैं। सही समय पर न्याय न मिल पाना निश्चय ही वेदनादायक है। लंबे समय के बाद मिलनेवाला न्याय, न्याय होते हुए भी अन्याय के बराबर है। ‘कवि की पीडित खुफिया आँखें’ नामक कविता में कवि कहते हैं-

“हत्यारे ने उस औरत को मारने में दो मिनट लगाये
उस पर दो शताब्दियों तक चलता है मुकदमा

जिसने सार्वजनिक कोष से साफ-साफ उडा लिये सैकड़ों करोड रुपये
उसका सत्तर साल तक जांच करता है जांच आयोग।”^{३३}

न्यायालय में गवाहों का स्थान अहम है। किसी मामले में आरोप तय हो पाता है तो गवाहों का बयान दर्ज किया जाता है। कई बार ऐसा मामला भी देखने को मिलता है, गवाह अपने बयान से मुकर जाते हैं। पैसे के बल पर गवाहों को खरीदते हैं। सबूतों को नष्ट करते हैं। बड़े-बड़े हत्या कांडों में पकड़े गये अपराधी पैसे के बल पर जमानत से छूट जाते हैं। ‘चंकी पांडे मुकर गया है’ नामक अपनी कविता में कई मुकदमों का जिक्र करके कवि झूठी गवाही का यों व्यक्त करते हैं -

“तो लुब्धे-लुआव यह कि अबु सलेम को पहचानने के मामले में
सारे गवाह मुकर गये।

उसी तरह जैसे बी.एम.डब्ल्यू काण्ड में ‘कार’ से कुचले गये

पाँच लोगों के चशमदीद गवाह

संजीव नंदा और उसकी हत्यारी कार को पहचानने मुकर गये।

जैसे जेसीका लाल हत्याकांड के सारे प्रत्यक्ष दर्शी

मनुशर्मा को पहचानते से मुकर गये।

हर कोई मुकर रहा है इस मुलक में किसी भी सुनवाई

गवाही या निर्णय के वक्त कोई नहीं कहता कि वह समाज

या संस्कृति के किसी भी भूगोल के किसी भी हत्या को पहचानता है।”^{३४}

सत्ता, पूँजी और स्वार्थ का इतना आतंक है कि न्याय भी आम जनता से हडप लिया है। न्यायाधीश स्वयं अन्याय के पक्ष में खड़े हो तो न्याय कैसे मिल पाता है। ‘अपनी विचार’ नामक कविता में कवि लिखते हैं-

“कुछ न्यायाधीश दिखेंगे

अन्याय के पक्ष में जिसका फैसला पूर्वघोषित है

दिखेंगे कुछ चशमदीद गवाह जो कहेंगे हमने कुछ नहीं देखा

उस दिन हम इस पृथ्वी पर थे ही नहीं।”^{३५}

सत्ता के ऊँचे स्थानों में विराजित संसद, मंत्री, बड़े-बड़े अफसर, कलाकार, न्यायाधीश जैसे लोग ही आज जनविरोधी कार्य कर रहे हैं। बड़े-बड़े मुकदमों को ले लिया तो हम यह समझ सकते हैं कि यही लोग देश की न्यायव्यवस्था को बिगाड़ने में तुले हुए हैं। 'और पत्ते गिर रहे है इस तरह लगातार' कविता में इन बातों की खुली अभिव्यक्ति करने में कवि को कोई हिचक नहीं। यथा-

“कोई नहीं सोचेगा
कि सर्वोच्च न्यायालय से निकलता हुआ न्यायाधीश
काले कपडे में बार-बार
क्यों छुपा रहा है अपना चेहरा
कालिख क्यों जमा होती जा रही है
संसद की दीवारों पर।”^{३६}

न्याय का क्षेत्र इतना दुर्बल हो गया है कि इसके विरुद्ध आवाज़ उठाना खतरनाक है। 'न्याय' नामक कविता में कवि इस बात पर व्यंग्य करते हुए हमें चेतावनी देते हैं कि-

“हँसना ऐसी अंधेरी रात में
अपराध है
में गिरफ्तार कर लिया गया”^{३७}

अंधेरी रात शब्द तत्कालीन समय की सूचना देती है। इसके माध्यम से तत्कालीन न्याय व्यवस्था के अंधेपन की अभिव्यक्ति होती है। अपराधी को बचानेवाले एवं निर्दोषी को दोषी ठहरानेवाले न्यायिक व्यवस्था को सुधारना ज़रूरी है।

३.४.७. सांप्रदायिकता का धिनौना चेहरा

समकालीन भारत में सांप्रदायिकता की समस्या सबसे अधिक खतरनाक है। सत्ता में बने रहने के लिए हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच में जो विष बीज अंग्रेज़ों ने बोया था वह आज एक विशाल वट वृक्ष का रूप धारण किया है। उसी के फलस्वरूप देश-

विभाजन हो गया। साथ ही साथ सांप्रदायिकता की आग में गाँधीजी की चिता जल कर भस्म हो गई।

तब से लेकर सांप्रदायिक दंगे इधर-उधर होते रहे। इन दंगों का राजनीतिक दल अपने-अपने लाभ-लोभ के लिए प्रयोग करते रहे। हिंदू और मुस्लिम के बीच घृणा पैदा कराने लगे। आपस में शंका बढ़ने के फलस्वरूप सामाजिक रिश्ते टूट जाते हैं। साथ-ही साथ समाज की धर्म निरपेक्ष संस्कृति भी मिट जाती है। बाबरी मस्जिद विध्वंस को लेकर कवि बताते हैं दिसंबर का छठवाँ दिन अपनी स्मृति में सालों से गर्म राख में सुलगता हुआ अंगार है। इसकी यादों में कवि लिखते हैं -

“इसी दिन कोई गुंबद टूटा था

इसी तारीख में सारे रिश्ते हिज्जा-हिज्जा बिखर गये थे

इसी रोज़ चावल के नन्हे-नन्हे कण लेकर कतार में रेंगती चींटियों ने

अपनी दिशाएँ बदल ली थीं।”^{३८}

धर्म का मुखौटा पहनकर आनेवाली सांप्रदायिकता का मूल कारण वास्तव में सत्ता है। धर्म के नाम पर मानव मानव के बीच में विद्वेष की आग भभकानेवाला सत्ताधारी ही हैं। सांप्रदायिकता को मानव त्रासदी माननेवाले कवि उदय प्रकाश ने अपनी कविताओं के माध्यम से इसे खुलकर दिखाने का प्रयास किया गया है। बाबरी मस्जिद विध्वंस भारतीय इतिहास में एक ऐसी घटना थी कि जिसमें सांप्रदायिकता का भयावह रूप हम देख पाते हैं। इस घटना ने आपसी सौहार्द, सहिष्णुता, सद्भावनाओं एवं धार्मिक विश्वासों पर गहरी चोट पहुँचा दी। बाबरी मस्जिद ध्वंस को लेकर लिखी गई अपनी ‘तीली’ नामक कविता में कवि अपना विचार प्रकट करते हैं -

“किसी आस्था के ईश्वर

किसी धर्म के पैगंबर को राख

सिर्फ एक तीली चाहिए

किसी चिंपाजी, किसी गुंडे या गुरिला की
एक ज़रा सी हरकत।”^{३९}

३० अक्तूबर १९८४ को इंदिरागाँधी सिख्र अंगरक्षकों के हाथों से मारी गयी थी। तत्पश्चात् दिल्ली में सिख्रों के विरुद्ध अनहोनी घटनायें घटी हुई थीं। दिल्ली के चारों ओर फैली आग में निरपराधियों की चीख जलने लगी। अपनी कविता ‘आग’ में कवि इन बातों की याद करके राजधानी का दृश्य यों चित्रित करते हैं-

“उस रात
यमुना में आग लगी हुई थी उस रात
भोगल में आग लगी हुई थी उस रात
तिलकनगर, वज़ीरपुर, मुनीरका, अशोकविहार हर तरफ
आग थी।”^{४०}

उस रात के आग जनी का भयानक दृश्य कवि इस प्रकार अंकित करते हैं कि-

“क्या-क्या मैंने देखा बस रात भर के जीवन में
डर लग रहा था, उस बस में मेरे साथ सारे जले हुए मुसाफिर थे”^{४१}

हमारे देश में सांप्रदायिकता का जहर इतना फैल गया है कि हज़ारों निरपराधियों की हत्या वर्षों से हो रही हैं। इन दंगों के पीछे धार्मिक नेता एवं राजनीतिक नेता कार्यरत हैं। इन लोगों की स्वार्थता के कारण देश का वातावरण अमानवीय रूप ग्रहण कर लेता है। गोधरा, दिल्ली और पंजाब के नरसंहार के पीछे राजनेताओं की षड्यंत्रकारी प्रवृत्ति काम आयी थी। गुजरात के गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस का जलाना भारत के इतिहास का काला अध्याय था। हैदराबाद के एक होटल में आग लग जाने से मारे गये अभा दयाल और पुनीत टंडन की स्मृति में लिखी हुई कविता में उदय प्रकाश गोधरा, दिल्ली, और पंजाब के नरसंहार को याद करके यों लिखते हैं-

“यह साबरमती एक्सप्रेस के जलते हुए डिब्बे के भीतर का दृश्य नहीं था
यह अठारह साल बाद का गोधरा और गुजरात नहीं,
यह अठारह साल पहले की दिल्ली थी।”^{४२}

प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से स्त्रियों सांप्रदायिक हादसों का शिकार बनती हैं। स्त्रियों का जीवन शारीरिक और मानसिक तौर पर बुरी तरह झकझोर दिया जाता है। स्त्री देह को एक वस्तु के रूप में देखनेवाली पुरुष सत्तात्मक मानसिकता सांप्रदायिकता के संदर्भ में ही हम देख पाते हैं। अपने 'ध्रुवपद' नामक कविता के माध्यम से कवि यह व्यक्त करते हैं कि गुजरात में कौसरबानो के गर्भ को चीरकर उसके साथ रेप करके उसी के खून से उसके माथे पर 'ओम' शब्द लिखा गया। इस पशुता वृत्ति पर कवि दुःखी हैं, साथ ही साथ रोषाकुल भी। एक नये धर्म युद्ध की प्रतीक्षा करनेवाले कवि हम से कहते हैं -

“सबसे मुकद्दम
 सबसे पहली
 पहली से पहली
 सबसे पवित्र आवाज़ की हिफाज़त में
 एक सच्चा जेहाद....एक धर्म युद्ध
 एक नया इन्कलाव
 कौसर बानो के
 उस आजन्में की आवाज़ गुँजेगी हमारे भीतर अब सदा
 सारी कायनात
 समूची सृष्टि
 सारे हफ्तों....सारी लिपियों में
 हिंदी की सारी किताबों में
 गुँजेगी वो आवाज़
 समूचे व्योम, में सदा...सदा
 कौसर बानो के
 उस अजन्मे की आवाज़....
 सदा....सदा”^{४३}

सांप्रदायिकता के इस काले कारनामों को खुलकर दिखानेवाले कवि उसके विरुद्ध आवाज़ भी उठाते हैं। पशुतावृत्ति करनेवालों के विरुद्ध, आक्रोश भरे स्वर में धर्म युद्ध की घोषणा करते हैं -

“जिया फरीदुद्दीन डागर
 आप शुरु कीजिए अपना आलाप
 सबसे मुकद्दस
 गंगा से भी निर्मल
 पवित्रतम
 अनहद नाद
 हम करेंगे धर्मयुद्ध
 एक सच्चा जंहाद
 काफिरों केदरिन्दों के....शैतान के कारिन्दों के खिलाफ
 एक रिवोल्यूशन...
 एक सच्चा इन्कलाब
 आमीन।”^{४४}

स्वतंत्रता के पश्चात कश्मीर के बनते बिगडने की व्यथा हम देखते आये हैं। वर्षों से कश्मीर में क्रमशः बढ़ते चले गये आतंक आज भी निर्दोषों का खून बहाते रहते हैं। उनकी अस्मिता का हनन करते रहते हैं। वहाँ के जनजीवन को नरकतुल्य बनाते हैं। व्यवस्था की गलत नीतियाँ भी इसके पीछे कार्यरत हैं। कश्मीर में घटित हो रहनेवाले अमानवीय व्यवहारों को लेकर कवि व्यथित हैं। उनकी नींद और स्वप्नों में भी कश्मीर की चीख है।

अपनी कविता ‘क’ में कवि यह व्यक्त करता है कि हिंदी वर्णमाला के पहले वर्ग का पहला व्यंजन ‘क’ से हम कई शब्द बच्चों को पढ़ाते हैं। बच्चे एक साथ इन शब्दों को रटने पर निकलनेवाली गूँज कवि को ऐसा लगता है कि ‘क’ माने कश्मीर। यथा-

“लेकिन अगर कोई सुन सके
 संसार भर और ब्रह्मांड भर के बच्चों की नींद
 या स्वप्न या अंतरात्मा की आवाज
 तो सुनाई देगी एक अजीब सी गूँज

दसों दिशाओं में गुँजती उस गुँज की अनगणित प्रतिध्वनियाँ

‘क’ माने

‘कश्मीर’^{४५}

कश्मीर तो अब केवल कश्मीरी जनता की चीख मात्र नहीं। बल्कि संसार भर में उनकी चीख शब्दबद्ध होती रहती है। हमारी संस्कृति का आधार करुणा, दया, क्षमा, ममता, नैतिकता आदि मानवीय गुण है। संविधान तो अहिंसा की नींव में बना है। लेकिन समय इसका साक्षी है कि मानवीय गुण धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं। विकल मानसिकता को पुष्ट करनेवाली सामाजिक व्यवस्था हत्यारों के सत्ता के पक्ष में हमेशा खड़े रहे तो इन नराधम प्रवृत्तियों का अंत संभव हो पाना कठिन है। धर्म के नाम पर चलनेवाला सांप्रदायिकतावाद समाज में आतंक फैलाकर मानवीय संबंधों को तोड़ने की कोशिश कर रहा है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को बचाये रखना जनता के लिए एक चुनौती बन गई है। तब मानवीय संवेदना पर बल देनेवाले एवं मानवीय पक्ष पर खड़े होनेवाले कवि का ऐसा पूछना स्वाभाविक है।

“क्या कुम्हार, धर्मनिरपेक्षता और

एक दूसरे पर भरोसा को बचाने के लिए

नहीं किया जा सकता संविधान में संशोधन।”^{४६}

३.४.८. कृषक जीवन का क्रन्दन

खेती और किसान भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है। लेकिन बाज़ारीकरण एवं औद्योगीकरण के दौरान किसानों की स्थिति दर्दनाक है। कर्ज, बीज, बिजली, खाद, पानी, फसल आदि को लेकर कई समस्याओं से आज किसान परेशान हैं। आज किसानों पर चालाकी से शोषण कर रहे हैं। कृषि प्रधान देश में बढ़ती हुई किसान आत्महत्याओं की संख्या चिंतनीय है। हमारे देश के बदकिस्मत किसानों की समस्याओं की अभिव्यक्ति उदयप्रकाश की कविताओं में देख पाते हैं।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया से किसानों की कृषि योग्य उपजाऊ भूमि का अधिग्रहण चल रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को ज़मीन अधिग्रहण के लिए सरकार ही योजनाएँ बनाती है। इसलिए अपनी खेती बचाये रखने के लिए सिंगूर और नंदीग्राम के किसानों को जीवत्याग करना पड़ा। विकास के नाम पर खदेडा जानेवाले किसानों की स्थिति दर्दनाक है। उन्हें अपने गाँव में ठिकाने के लिए कोई जगह नहीं है तो जीविका चलाने के लिए शहरों में जाना पड़ता है। वहाँ भी उन्हें अपनी जगह नहीं है। फूटपथों में सोने के लिए विवश उन लोगों की दयनीय हालत का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं -

“वे जो कुचल दिये जायेंगे
 किसी नाइट क्लब से अपनी
 धुत्त बिंदास दोस्त को आधी रात नशे में
 चूमते हुए लौटते
 महान N.R.I भारतीयों के B.M.W या मर्सिडीज कार के
 स्पेशल रेडियल टायरों के नीचे
 फुटपथों में गहरी नींद में उस नाजुक पत्त
 जब वे किसी आई टी सिलिकोन काम्प्लेक्स, किसी रिसार्ट
 या किसी विशाल बाँध में डूबे
 अपने गाँव और घर
 के स्वप्न देखे रहे होंगे।”^{४७}

‘सफल चुप्पी’ नामक कविता के माध्यम से कवि यह व्यक्त करते हैं कि-

“उनके टपरे सुबह-सुबह उग जाते थे वहाँ, जहाँ कल तक
 नहीं था
 उनका निशान
 पुलिस आती थी बुलाडाज़रों और बंदूकों के साथ और
 उजाडती रहती थी
 उनका संसार”^{४८}

धनिक वर्ग की बड़ी-बड़ी परियोजनाओं के लिए, सड़क को चौड़ा करने के लिए, नव निर्माण के लिए, इत्यादि कई विकास प्रक्रियाओं के लिए किसानों का संसार उजाड़ता रहता है। जनता के वोटों से जनता के हित के लिए सरकार बनायी जाती है। लेकिन सत्ता प्राप्त हो जाने पर वह जनहित को मानती ही नहीं, बल्कि जनता के विरुद्ध कानून लागू किया जाता है। इधर सरकार द्वारा लागू किये गये कई कानून किसान विरुद्ध होते हैं। 'सरकार' नामक कविता में दुखखनबहू के माध्यम से किसानों की समस्याओं को कवि यों व्यक्त करते हैं -

“दुखखन बहू ने कहा
सरकार लगान के बावत
फरियाद है कि बारिश
नहीं हुई
धरती झुरा गयी
खेत फट गये
गाछों के पात खड-खड बजने लगे
कुठिला में दाना भी नहीं
जो था सो हमने खा लिया
जब खा ही लिया
तो खेत में छीटते क्या
सो लगान के बावत, फरियाद है।
जो सरकार हो रियाया का दुख समझो
बारिश करो
खेत में फसल पैदा करो
ये तुम कौन से सरकार हो जी
राच्छस की तरह आते हो
तबाही मचाते हो
सब समेट-बटोरकर ले जाते हो

दुखन तुम्हारे डर से
 चार महीना जंगल में लुका रहा
 फिर जाने कौन सा
 सरकारी बाघ उस खा गया...”^{४९}

हाल ही में देश में आये कृषि कानूनी बिल से किसान डरते हैं। किसानों का डर इस बात को लेकर है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य खतम हो जायेगा। इस बिल के जरिए मंडी से बाहर भी कृषि कारोबार का रास्ता खोल दिया जाने के कारण फसलों का उचित मूल्य न मिल पायेगा। हमारे देश में एक ऐसी सामाजिक संरचना पहले से ही बनाई गई है कि जिसमें मेहनत करके फसल उत्पाद करनेवालों को अपने उत्पादों पर कोई अधिकार नहीं। अपने उत्पादों पर उचित मूल्य न मिलने के कारण उन्हें आर्थिक समस्याओं को झेलना पड़ता है। लेकिन इनके पीछे जो संचालक वर्ग या बिचौनिये लोग हैं, वे अधिकाधिक संपन्न होते जा रहे हैं। ‘सुअर’ नामक कविता में कवि यह व्यक्त करते हैं -

“एक दिन सुअर ने कहा
 हम उत्पादन बढ़ायेंगे
 वह मोटा होता
 चला गया।”^{५०}

भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है कृषि। प्राकृतिक आपदायें, सरकारी नीतियाँ, औद्योगीकरण, बाज़ारीकरण आदि कई कारणों से खेती धीरे-धीरे मिट रही है। खेती के मिटना से तात्पर्य यह है कि देश का या विकास का मिटना। खेती ग्रामीण जीवन का निशान है। शहरीकरण के परिणाम स्वरूप गाँव का चेहरा बदल गया है। साथ ही साथ खेत-खलिहान भी अप्रत्यक्ष हो रहे हैं। ‘पिता’ नामक कविता में कवि हमसे बताते हैं कि गाँव के हर खेत की छाती पर पिता का कुदाल धँस गया था। हल की हर मूठ पर पिता की घट्टेदार हथेलियों की छाप थी। बैलों के पुट्टों पर उनके डण्डे के दाग भी थे। अर्थात् पिता खेती करते थे। लेकिन धीरे-धीरे खेती का नामोनिशान

खो जाने के साथ मनुष्य की अस्मिता भी नष्ट होती है। इसकी ओर इशारा करते हुए कवि कहते हैं -

“बाद में पिता
गायब हो गये
कहते हैं खेत, कुदाल
बैल, इमारतें, ईंट, दरवाज़ें, बाज़ार
उन्हें पचा गये।”^{५१}

‘राजधानी में बैल’ नामक अपनी कविता में भी कवि नष्ट होते हुए ग्रामीण सभ्यता एवं खेत खलिहानों के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हैं। राजधानी में खड़े हुए बैल की स्मृति में जंगल से गाँव लौटते अपने पितर-पुरखे हैं। उसकी स्मृतियों में हरा-भरा खेत है। अर्थात् यह जो ग्रामीण सभ्यता है, वह सब स्मृति मात्र रह गई है। बैल जो है हमारी पुरानी कृषक संस्कृति का चिह्न है। वह आधुनिक नगरीय सभ्यता के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है। इस पक्ष पर प्रकाश डालते हुए कवि कहते हैं -

“कहाँ जाना चाहिए उसे
पितरों - पुरखों के गाँव की ओर
जहाँ नहीं बचे है अब चरागाह
या फिर कनॉट प्लेस या पालम हवाई अड्डे की दिशा में
जहाँ निषिद्ध है सदा के लिए
उसका प्रवेश।”^{५२}

उदय प्रकाश ग्रामीण परिवेश में जीवित रहने के कारण कृषक समस्याओं को वे भली भाँति समझते हैं। गाँव में खेतों को बचाने की आवाज़ अपनी कविताओं के माध्यम से वे उठाते हैं। किसानों को अपने हक और न्याय के लिए लड़ने की प्रेरणा भी देते हैं। पूरे देश के अन्नदाता किसानों की स्थिति में सुधार होना ज़रूरी है। नहीं तो भविष्य में भयंकर स्वाद्य संकट को सामना करना पड़ेगा।

३.४.९. पर्यावरण पर प्रहार

प्रकृति और मानव के बीच में अटूट संबंध है। लेकिन आज की उपभोक्तावादी सभ्यता ने प्रकृति और मानव के बीच स्वस्थ संबंध को मिटा दिया है। उपभोक्तृ संस्कृति में मानवीय संवेदना के लिए कोई जगह नहीं। वहाँ मुनाफा कमाना ही एकमात्र लक्ष्य बन गया है। लाभ-लोभकारी उपभोक्ता संस्कृति में संबंधों का वस्तुकरण देख पाते हैं। आज मानव के लिए प्रकृति भी वस्तु मात्र रहकर शोषण का साधन बन गयी है। मनुष्य, पेड़-पौधे एवं जीव जंतुओं को इस प्रकृति में समान अधिकार है। लेकिन मानव ने उसे छीन लिया है। प्राकृतिक संतुलन बिगाड़ने का मुख्य कारण है प्रकृति पर मानव का अनियंत्रित हस्तक्षेप।

उदयप्रकाश की कविताओं में पर्यावरण संकट एवं पारिस्थितिक सजगता देख सकते हैं। वैज्ञानिक प्रगति एवं औद्योगिक विकास प्रकृति पर गहरी क्षति पहुँचाते हैं। औद्योगिक विकास के साथ औद्योगिक दुर्घटनाएँ भी बढ़ रही हैं। 'भीमसेन जोशी प्रसंग १९८४' यूनियन कार्बाइड के भोपाल गैस-कांड पर आधारित कविता है। कविता में भोपाल गैस-कांड की भयावहता का चित्रण करने के साथ कवि सत्ता की नृशंसता पर विमर्श भी करते हैं। ३ दिसंबर १९८४ को भोपाल में स्थित अमेरिकी कंपनी यूनियन कार्बाइड के कारखाने में मीथिल ऐसोसयनेट नामक ज़हरीली गैस का रिसाव हुआ जिससे लगभग १५००० से अधिक लोगों की मृत्यु हो गई।

बहुत सारे लोग अनेक तरह की शारीरिक अपंगता के शिकार बन गये। कई लोग अंधे हो गए। इस भीषण घटना ने सिर्फ तत्कालीन जनता को नहीं आनेवाली पीढ़ी को भी बर्बाद कर दिया। इस त्रासद घटना का वर्णन कविता में हुआ है-

“हमारे शरीर में भी है
तीसरी दुनिया के वे थके हुए पसीने से सराबोर
बीमार फेफड़े
जिनके भीतर खुल गयी है

पता नहीं जितनी जहरीली पाइप लाइनें
 भोपाल के उस पाँच हज़ार लोगों के
 फेफड़ों में भी थे सांसे
 जो बन सकती थी किसी भी शुद्ध संगीत का आलाप
 या बंसुरी में राग-बाग श्री।”^{५३}

‘अंबर में अब्बाबील’ संग्रह के ‘नाइन्टीन एट्टीफोर’ नामक कविता में भी कवि इस त्रासद घटना पर इशारा करते हुए इसप्रकार कहते हैं -

“नाइन्टीन एट्टीफोर में
 संस्कृति की एक सरकारी राजधानी में यूनियन कारबाइड ने
 छेडा था राग मिथाइल ऐसोसयनेट
 पाँच हज़ार को सुलाकर और पचहत्तर हज़ार
 नशे में छोड़कर भागा था चुपके से एंडरसन एक रात”^{५४}

इस घटना के बाद अधिकारियों की सहायता से यूनियन कारबाइड के मुख्य प्रबंध अधिकारी चारेन एंडरसन रातो-रात भारत छोड़कर अमेरिका रवाना हो गये थे। इस घटना पर उदयप्रकाश लिखते हैं “और इस सदी की सबसे बड़ी रासायनिक औद्योगिक दुर्घटना, जिसमें सिर्फ एक रात में ५०००से ज्यादा लोग मरे और इन मरनेवालों में ज्यादा तादाद बच्चों, औरतों और अल्पसंख्यकों की थी और आज भी इस दुर्घटना से प्रभावित लोगों की संख्या पंद्रह हज़ार से ऊपर है, जिन्हें तेरह साल बाद भी कोई भारतीय, सरकार एक विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनी-यूनियन कार्बइड से आज तक कोई मुआवजा नहीं दिला सकी है, वह भोपाल गैस ट्रेजडी भी इसी आधुनिकीकरण का परिणाम है।”^{५५} व्यवस्था के अमानवीय व्यवहारों के खिलाफ करुणा और क्रोध का गीत गाने के लिए भीमसेन जोशी से विनती करते हुए कवि कहते हैं -

“गाओ
 जहरीले कारखानों, परमाणु अस्त्रों और नक्षत्र युद्धों के खिलाफ गाओ

कि होना चाहिए अंतरिक्ष में
 और पर्यावरण में
 सिर्फ ऑक्सिजन और संगीत
 भीमसेन जोशी, गाओ
 कि आज भी कविता और संगीत की
 सबसे ज़रूरी धातु है
 करुणा और क्रोध।”^{५६}

हमारी पृथ्वी निरंतर प्रदूषित होती रहती है। इस्पात, फाइबर, प्लास्टिक एवं अन्य जहरीले पदार्थ पृथ्वी पर निरंतर पड रहे हैं। इससे उत्पन्न कचरा दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यह जल और भूमि में विघटित नहीं होता है। यह वातावरण में सैकड़ों वर्षों तक बना रहता है, जिससे भूमि, जल और वायु प्रदूषण का कारण बनता है। ‘बचाओ’ कविता उसकी ओर इशारा करते हैं-

“चली आ रही हैं इस्पात, फाइबर और अज्ञात यौगिक
 धातुओं की तमाम अपरिचित - अभूतपूर्व चीज़ें
 किसी विस्फोट के बादल की तरह हमारे संसार में
 बैटरी का हनुमान उडा रहा है प्लास्टिक का पहाड़।”^{५७}

पेड़-पौधे, पक्षी, जीव जंतु, फल- फूल आदि प्रकृति के संतुलन के लिए अनिवार्य हैं। वृक्ष हमारा प्राण है। ऑक्सीजन के अभाव में जगत में जीव-जंतुओं का जीवन मिट जाएगा। लेकिन आज प्राणवायु तक दुर्लभ होने की आशंका ‘अर्जी’ नामक कविता में कवि व्यक्त करते हैं-

में जिससे कर सकता था प्यार
 विशेषज्ञ जानते हैं, वर्षों पहले मेरे बचपन के दिनों में
 शिवालिक या मेकल या विध्य की पहाड़ियों में
 अंतिम बार देखी गयी थी वह चिडिया

जिस पेड़ पर बना सकती थी वह घोंसला
विशेषज्ञ जानते हैं, वर्षों पहले अंतिम बार देखा गया था वह पेड़
अब उसके चित्र मिलते हैं पुरा-वानस्पतिक किताबों में
तन के फॉसिल्स संग्रहालयों में।”^{५८}

‘बचाओ’ कविता में कवि जंगल में पेड़ और पेड़ों में घोंसले को बचाये रखने की आशा रखते हैं। पानी भी आजकल बिकारू चीज़ बन गया है। जगह-जगह बन रही जल विद्युत परियोजनाएँ, गंदगी और ग्लेशियरों के रूप में आ रहे परिवर्तन आदि नदियों के संकट का कारण बन रहे हैं। नदियों का अस्तित्व भी खतरे में है तो कवि यह पूछने के लिए विवश हो चुके हैं -

“कितनी नदियाँ है अब
पंजाब में?”^{५९}

बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा कर लिया है। प्रकृति शोषण की प्रक्रिया को बढ़ावा देने में सत्ताधारी भी शामिल हैं। वे भी पूँजिपतियों के साथ हाथ मिलाते हैं। आज लोकतंत्र तो नाम मात्र बन गया है। आज लोकतंत्र के भीतर जनता कैद है। नदी का जल पीने में भी कई तरह को प्रतिबंध लगाया गया है। अतः हमारी धरती, पहाड़, जंगल, नदी जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर हमें कोई अधिकार नहीं। प्राकृतिक संसाधनों पर मानव का अनियंत्रित हस्तक्षेप भविष्य में मानवराशि के लिए ही खतरा है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से प्राकृतिक आपदाओं का भी सामना करना पड़ता है। हमारे भीतर हमेशा यह चिंता होनी चाहिए कि प्रकृति के बिना मानव अपूर्ण है। मानवीय भावों और भावनाओं की अभिव्यक्ति देने के लिए उन्होंने प्रकृति को हमेशा साथ लिया है। पक्षी, बसंत, बहेलिए दिन आदि कविताएँ इसके उदाहरण हैं। मानवीय स्थिति को कविता में उजागर करने के लिए पक्षी, सुअर, पेड़, हिरण, पिंजड़ा, घोंसला, मेमना आदि अनेक प्रतीकों को उन्होंने प्रकृति से ही चुन लिया है।

कवि इस तथ्य को भली-भाँति जानते हैं कि भूमंडलीकरण के दौर में तेज़ी से बढ़ते औद्योगीकरण, पूँजीवाद और बाज़ारीवाद ने प्रकृति और पर्यावरण पर गहरा आघात पहुँचाया है। प्रकृति के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हुए 'ईश्वर की आँख' निबंध संग्रह में वे लिखते हैं - "प्रकृति और पर्यावरण के विरुद्ध इसने लगभग २५०-३०० सालों से एक विनाशकारी युद्ध घोषित कर रखा है। और इसने आज हमें वहाँ धकेला है, जहाँ हमारे पास न साफ हवा है, न पानी, न भोजन, न स्वास्थ्य। हमारे पास न जंगल और पेड़ बचे हैं, न वन्य प्राणी। हमारे वायुमंडल में जहर भर चुका है। धरती धीरे-धीरे आग के तपते गोल में तब्दील हो रही है।"^{६०}

३.४.१०. शासक वर्ग के अत्याचारों का चित्रण

हमारे देश में जनता के लिए जनता द्वारा जनता की ही शासन प्रणाली चल रही है। चुनाव के द्वारा चुने गए जनता के प्रतिनिधि बाद में शासक बन जाते हैं। साधारण जनता शासकों से यह आशा रखते हैं कि आर्थिक और सामाजिक तौर पर देश का भविष्य उज्ज्वल हो जाये। लेकिन शासक वर्ग अपने हाथ में सत्ता मिलने के बाद जनसाधारण के हितों से दूर रहता है। उच्चवर्ग या पूँजीपतियों से हाथ मिलाकर साधारण जनता पर शोषण भी कर रहे हैं।

शासक वर्ग के अमानवीय व्यवहार के कारण साधारण जनता की ज़िंदगी में व्याप्त अंतर्विरोधों से उदयप्रकाश जैसे संवेदनशील कवि बेचैन हैं। आम जनता की मुक्ति की आकांक्षा रखनेवाले कवि कविता को हथियार बनाकर अपनी प्रतिक्रिया ज़ाहिर करते हैं। उदय प्रकाश का पहला कविता संग्रह 'सुनो कारीगर' में 'सुअर' नामक छः कविताएँ हैं। इसमें 'सुअर' एक ऐसा राजनेता या शासक का प्रतीक है जो गरीब जनता पर निरंतर शोषण करता रहता है।

“सुअर ने कहा
 मेमने, अपने नर्म-गर्म
 रोओं से कती
 ऊनी रूमाल मुझे दे
 जो खूब साफ-सफेद हो।
 मेमना तीन दिन पहले ही तो
 मूडा गया था।
 उसकी रोओ से कती जाकिट
 सुअर ने पहन रखी थी।”^{६१}

आज शासन में लोकतंत्र के मूल्यों का ध्वंस हम देख पाते हैं। प्रशिक्षण देकर अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए अपराधियों और अत्याचारियों को पैदा करने की राजनीति यहाँ चल रही है। इसके बारे में कवि लिखते हैं-

“सुनो हमारे आका
 किसी भी सुअर के बच्चे
 शुरू में
 सुअर नहीं होते
 वे खरगोश और मेमने से भी ज्यादा
 मुलायम नर्म और
 गये- गुजरे होते हैं।”^{६२}

शासक वर्ग सत्ता या राजनीति को उपभोग की वस्तु मानता है। इसके ज़रिए अपनी कमाई बढ़ाकर सुकून और चैन से जीनेवाले शासक वर्गों का चित्रण ‘सुअर’ कविता में ऐसा करता है कि दुनिया के हर बड़े शहरों में सुअर के लिए इमारते हैं, वे विशाल यंत्र में बैठकर शहरों में जाते हैं। जिस देश में जनता गरीबी से त्रस्त है उसी देश में जन संरक्षक का पोशाक पहनकर शासक सुखलोलुपता से जी रहा है। इस कविता में शासकों के अन्याय के कई उदाहरण मिलते हैं। अभावों के संबंध में शिकायत करनेवालों को खतम करने की राजनीति

यहाँ चल रही है। कविता में घास की कमी पर शिकायत करनेवाले हिरणों की संख्या कम करने के लिए सुअर आदेश देता है।

‘चौथा शेर’ नामक कविता में अशोकस्तंभ के चौथा शेर के माध्यम से वे सत्ता के अदृश्य चरित्र का उद्घाटन करते हैं। यह ‘चौथा शेर’ चिंता का विषय बन गया है कि, अशोक स्तंभ के तीन शेर दिखाई देते हैं, चौथा नहीं दिखाता। यह सवाल उठता है कि चौथा शेर कहाँ है? अखबारों की खबरों के माध्यम से इसका उत्तर भी कविता में मिलता है। अखबारों में छपे समाचार जो हत्या, लूट, डकैती, आत्महत्या, औरतों और बच्चों की गुमशुदा आदि से संबंधित हैं। इन काले कारनामों के पीछे यह चौथा शेर है। अर्थात् चौथा शेर सत्ता का अमानवीय पक्ष है। कभी न दिखाई पड़नेवाला यह ‘चौथा शेर’ हर कहीं मौजूद है। ‘राज्यसत्ता’ में अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए जनता पर दबाव रखनेवाले शासकों का चित्रण है। अपने विरुद्ध होनेवाले आंदोलनों को दबाने के लिए क्रूर व्यवहार करनेवाले राजनेताओं या शासकों का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं-

“राज्यसत्ता

प्रजातंत्र क प्रजापति है

और प्रजा अगर तंत्र से

टकराती है कभी

तो तन्त्र की हिफाज़त में तैनात

बंदूक की नाल से

बोलती है राज्यसत्ता।”^{६३}

कवि बताते हैं कि इस प्रजातंत्र में जनता को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं। प्रजातंत्र में जनता की भागीदारी मतदान तक सीमित कर दिया गया है। सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठाये तो बंदूक का शिकार बन जाते हैं। ‘मदारी का खेल’ नामक कविता में धर्म और कानून के नाम पर जनता पर शोषण करनेवाले राजनेताओं का चित्रण है। कविता में खुद को मदारी समझनेवाला आदमी दूसरे आदमी को भालू बनाकर अपने अधीन में रखता

है। भालू पर पूरा नियंत्रण मदारी को ही है। मदारी ढोंग रचता है कि भालू का पालन मदारी ही कर रहा है। असल में भालू मदारी का पालन कर रहा है। कानून की किताब कहनेवाला एक धर्मग्रंथ मदारी के पास खतरनाक हथियार था। कविता के अंत में भालू की प्रतिक्रिया सत्ता के विरुद्ध जनता की प्रतिक्रिया है।

सिर्फ भाषणों में संवेदनशीलता रखनेवाले तानाशाह का चित्रण करता है 'तानाशाह की खोज' कविता में। आज तानाशाह को पहचानना मुश्किल है। वे सफेद - सफेद कपड़े पहनकर आते हैं। सफेद-सफेद कबूतरों (जो शांति का प्रतीक है) को उड़ाते हैं। भाषणों में विनोबा भावे, संत तुकाराम एवं निशस्त्रीकरण की बातें, पुलिस और सेना के खिलाफ की बातें, चिड़ियों और बच्चों से प्यार की बातें करते हैं। अस्पताल, पुस्तकालय, धर्मशाला, नृत्यकेन्द्र आदि खोलने की झूठी बातें करके जनता को अपने वश में लाते हैं। लेकिन इन लोगों के कथनी और करनी में अंतर अवश्य है अपने भाषणों से जनता पर इतना विश्वास दिलाता है। जैसे-

“संभव है
हमारे बीच के लोग हमसे बहस करें
और कहें
कि यह है प्रमाण उसकी संवेदनशीलता का
और यह भी बिल्कुल संभव है
कि उस वक्त उसको शक्ति का नोबेल पुरस्कार
दिया जा चुका हो या उसका नाम
उस सूची में सबसे ऊपर हो।”^{६४}

सत्ता लोलुपों की आपसी टकराहट का प्रभाव हमेशा निर्दोष जनता पर पड़ता है। यह टकराहट चाहे दो राष्ट्रों के बीच में हो या कोई राजनीतिक दलों के बीच में हो निर्दोष जनता इसका शिकार बनती है। 'दो हथियों की लड़ाई' नामक कविता के द्वारा कवि ऐसा बताते हैं -

“दो हाथियों की लड़ाई में
 सबसे ज्यादा कुचली जाती है
 घास जिसका
 हाथियों के समूचे कुनवे से
 कुछ भी लेना-देना नहीं
 जंगल से भूखी लौट जाती है
 गाय
 और भूखा खोजाता है
 घर में बच्चा।”^{६५}

ऐसी लड़ाई में सत्ता लोलुप पक्ष एवं विपक्ष का कुछ भी नहीं बिगाडता है। इसका परिणाम बेचारे जनता पर पड़ता है। आज जनता की जिंदगी उजड़ी जाती है। कवि कहते हैं हाथियों के उन्मत्तर शरीर पर जितने घाव बनते हैं उनमें ज्यादा गहरे घाव जंगल पर बनते हैं। एक ओर गरीबी से त्रस्त जनता मुट्ठी भर खाने के लिए तरस रही है, तो दूसरी ओर जनता के वोटों से चुने गये शासक लोग आम जनता के शोषक पूँजीपतियों के साथ आधीरात की पार्टियों में मौज मस्ती से शामिल हैं-

“मल्होत्रा और मुरारीलाल के फार्म हाऊसों में
 इसी हफ्ते आधी रात होनी हैं पार्टियों
 ध्यान रहे....आधी रात....शून्यकाल
 मुद्दा वही है - आज़ादी..”^{६६}

‘कौए और लेखक का दिल्ली में देहांत’ कविता में भ्रष्टाचार का पर्दफाश, करते हैं। शर्कों को जलाने के लिए लायी गयी लकड़ियों को गीला किया जाता है ताकि वजन बढ़ाए। कविता की पंक्तियाँ हैं-

“कहा जाता है निगम बोध में बहुत मारा-मारी
 भ्रष्टाचार तो है ही

लकड़ी कम तौलते है, वजन बढ़ाने के लिए
गीली कर देते हैं”^{६७}

भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि शवों के साथ लाये गये नारियल तक बेचते हैं। ‘सरकारी कोयल’ नामक कविता में सरकार के चापलूसों पर व्यंग्य करते हैं। आज हर कहीं इन सरकारी कोयलों की भरमार है। वे सरकार के स्तुतिपाठ करके सरकारी संरक्षण और सेवाएँ प्राप्त करते हैं। उदय प्रकाश ने अपनी कविताओं के माध्यम से सत्ता की नृशंसता को रेखांकित करने का प्रयास किया है। वे यह भली भाँती जानते हैं -

“अच्छा हो, हम स्थानों और तथ्यों के
इस जंजाल में अपना सिर न खपायें
क्योंकि हर मूल सत्य अपने मूल उद्गाम में
होता है स्थानहीन और तथ्यहीन”^{६८}

३.४.११. गरीबी का चित्रण

गरीबी और भूखमरी आज दिनों दिन बढ़ती जा रही है। निर्धनता और अभाव में जीनेवाले लोगों के प्रति कवि हमेशा अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं। आर्थिक असमानता इतनी बढ़ गयी है कि एक ओर बहुसंख्यक खाने के लिए मुट्ठी भर अन्न को तरसते हैं तो दूसरी ओर कुछ लोग अपनी कमाई बढ़ाते रहते हैं। ‘छिपकली’ नामक कविता में गरीबी का चित्रण मार्मिक ढंग से किया है। यहाँ छिपकली गरीबों का प्रतीक है। कवि बताते हैं कि देश के किसी भी जगह में इन्हें कोई स्थान नहीं। यहाँ सारी जगह अमीरों के लिए है। हमारी सरकार के आँकड़ों में भी गरीब लोग नहीं है। जैसे-

“छिपकलियाँ नहीं छिपी मिलेंगी आपके बैंक के
लाकरों या एकाउंट में
आपके पर्स या जेब में भला कैसे घुस सकती है
बेचारी छिपका लियाँ
क्रेडिट कार्ड के चिकने लेमिनेटेड सतह पर तो उनकी हथेलियों का

अद्भूत निर्वात तकनीक भी एक नहीं कर पाता
 अगर कविता या कहानी की सूची में न पाया जाये
 हमारा नाम
 तो इसमें आश्चर्य कैसा।
 छिपकलियाँ भला कैसे पंजीकृत हो सकती है आप की सभ्यता में
 कैसे मिलेगा उन्हें रोज़गार, राशनकार्ड, टेलिफोन नंबर”^{६९}

निर्धनता एवं अभाव का अभिशाप झेलने के लिए विवश है आम जनता। दुनिया की आबादी के कुछ हिस्सों को अक्सर लगातार भूखमरी का सामना करना पड़ता है। भूख की विवशता से तरसनेवाले आम आदमी की दयनीय दशा का चित्रण है ‘वैरागी आया है गाँव’ नामक कविता में। कविता की पंक्तियाँ हैं-

“जहाँ तुम्हारा चूल्हा टंडा पडा है
 पतीली आँधी धरी है
 और पाँच दिन की भूखी कानी कुतिया
 जहाँ सो रही है
 पाँच दिन की बुझी राख पर।”^{७०}

भूखमरी ज़्यादा खतरनाक स्थिति है। अपने नागरिकों को स्वस्थ और पौष्टिक भोजन देना सरकार का दायित्व है। बेरोज़गारी की समस्या, खेती का विनाश आदि कारणों से जनता गरीबी में जीने के लिए विवश बन गयी है। गरीबी को मिटाने के लिए एवं गरीबों का पौष्टिक भोजन देने के लिए सरकार द्वारा कई योजनाएँ बनायी गयी हैं। फिर भी हरेक मिनट में हज़ारों लोग भूख से मर रहे हैं। कवि लिखते हैं -

“कविता का एक वाक्य लिखने में दो मिनट लगते हैं
 इतनी देर में चालीस हज़ारोंवाले मर चुके होते हैं
 ज़्यादातार तीसरी दुनिया के
 भूख और रोग से

दस वाक्यों की खराब जल्दबाज कविता में अमूमन लग जाता है
बीस से पच्चीस मिनट
इतनी देर में चार से पाँच लाख बच्चे समा जाते हैं
मौत के मुँह में”⁹⁹

एक ओर आदमी भोजन को बर्बाद करते हैं तो दूसरी ओर आदमी भूख से मर जाते हैं। कुपोषण भूखमरी का एक कारण है। भारत में कुपोषण एवं भूखमरी की समस्या अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति, पिछड़ी जाति और ग्रामीण समुदाय के बीच में है। गरीबी और अशिक्षा के कारण ग्रामीण परिवेश में बच्चों का पालन ठीक ढंग से नहीं हो पाता है। इसी वजह से कुपोषण और बीमारियों से बच्चे मर रहे हैं। ‘समकालीन साहित्य की केन्द्रीय समस्या’ नामक कविता में कवि बताते हैं कि सबसे सुसंगठित, फुर्तीला और ताकतवर आदमी सुनियोजित तरीके से गरीबों की रोटी छीन लेते हैं। गरीबी को सुधारने के लिए कई योजनाएँ हैं। लेकिन जो गरीब हैं वे इन योजनाओं के निकट भी न पहुँच सकते हैं। तब कवि लिखते हैं-

“शासन तो कमला जी, उन मरियलों की थी
जो हड्डी के आसपास भी पहुँच पाते थे
भूख ने उनको कटखना और लाचारी ने बेचैन बना डाला था।”¹⁰²

गरीब लोगों के जीने का परिवेश भी दर्दनाक है। उनकी बस्तियाँ गंदगी माहौल में होने के कारण वे हमेशा संक्रामक रोगों का शिकार हो रही हैं। ‘मानसून में दिल्ली’ नामक कविता में कवि यह व्यक्त करते हैं -

“दलदल में पैदा होते हैं स्वाइन-फ्ल्यू, डेंगू, चिकन गुनिया
मलेरिया के मच्छर, केंचुए, जोंक, पंडोड
दलदल में बसती हैं मलिन असली दलित बस्तियाँ”¹⁰²

बाल मज़दूरी का जनक है गरीबी। कानून के द्वारा बाल मज़दूरी को अपराध घोषित किया गया है फिर भी यहाँ बच्चे बचपन बेचकर कमाते हैं। बचपन बचाओ

आंदोलन चलने के बावजूद भी स्कूल जाने की उम्र में बच्चों को काम करते और भीख माँगते देखते हैं। 'सफलचुप्पी' नामक कविता में बालमजदूरों का दर्दनाक चित्र यों खींचा गया है-

“लाखों या करोड़ों ऐसे बच्चे प्लेटें धोते थे,
भुट्टे, ब्रेड, प्लास्टिक के सामान
अण्डे - अखबार
और अटरशटर चीज़ें बेचते मकोड़ों की तरह रेंगते थे
शहर भर में
और सौ साल से ज़्यादा लगती थी उनकी उम्र।”⁹⁴

अपनी 'हालचाल' नामक कविता के द्वारा कवि यह व्यक्त करते हैं कि रोजी-रोटी बड़ी समस्या है। दो वक्त की रोटी के लिए इधर-उधर भागनेवालों के घर में किसी को बीमार भी आये तो उस घर के चूल्हा भी बीमार पड़ जाएगा। चिकित्सा का क्षेत्र आज बहुत खर्चीला होने के कारण गरीब बीमार लोग अपना सही इलाज नहीं कर पा रहे हैं। अपनी मेहनत की कमाई चिकित्सा में गंवाने पर परिवार पालने में बड़ी मुसीबत झेलना पड़ता है। अपनी 'शरीर' नामक कविता में कवि व्यवस्था पर प्रहार करते हैं। सालों से गरीबी और भूख झेलने के लिए विवश आदमी की हालत कवि यहाँ व्यक्त करते हैं-

“आमाशय ने बचपन से ही बहुत दुःख झेल हैं
जीभ की स्मृति में बार-बार कौंधता है माँ का
चेहरा चुल्हे की मद्धिम आंच में चंद्रमा-सा
धुएं और भूख के पार से आकाश में दिप-दिपाता”⁹⁵

सालों से गरीबी का शिकार होना इसका प्रमाण है कि भ्रष्टाचार और प्रभावहीन प्रबंधन की वजह से गरीबों के लिए बनी सरकारी योजनायें सफल नहीं हो जाती हैं। आज महंगाई बहुत बड़ी समस्या बन गई है। एक साधारण व्यक्ति को मेहनत करके परिवार का गुजारा करना मुश्किल हो गया है। रोटी, कपडा जैसी बुनियादी चीज़ों की पूर्ति करना भी मुश्किल बन गयी है। 'इस सदी में एक लड़की जिससे दिल्ली में मैंने प्यार किया था' नामक कविता में कवि बताते हैं -

“हम चाय पीते थे और सर्दियों में मूंगफली खाते थे सबसे सस्ती चीजों में सबसे ज़्यादा स्वाद होता है, इस सिद्धांत को हमने ही खोजा था।”⁹⁶

‘घर की दूरी’, ‘करीमन और अशर्फी’ कविताओं में भी महंगाई का चित्रण है। महंगाई का ग्राफ यह सिद्ध करता है कि गरीबों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जायेगी। गरीबी की असलियत को पहचानकर आम जनता की बुनियादी ज़रूरत की पूर्ति करके उनकी जिंदगी सुधारना है।

३.४.१२. महानगरीय जीवन का संत्रास

महानगरों की सुख-सुविधाओं को देखकर गाँव से लोग शहरों की तरफ पलायन करते हैं। कभी-कभी रोज़गार के अवसरों की तलाश करना भी लोगों का उद्देश्य है। लेकिन महानगरों का जीवन संत्रास से भरा हुआ है। वहाँ जाकर संवेदनशील आदमी का दम घुटता जा रहा है। उदयप्रकाश की कविताओं में आधुनिक महानगरीय जीवन की अभिव्यक्ति है। महानगरों में सब लोग व्यस्त हैं। गाँवों की तरह वहाँ आपसी संबंध नहीं है। वहाँ हमेशा लोगों को अकेलापन महसूस होता है। भीड़ के बीच में भी आदमी को अकेला होने का एहसास होता है। ‘दिल्ली’ शीर्षक कविता में कवि महानगर के अकेलापन को यों व्यक्त करते हैं -

“समुद्र के किनारे
अकेले नारियल के पेड़ की तरह है
एक अकेला आदमी इस शहर में।”⁹⁷

महानगरीय सभ्यता इस प्रकार है कि वहाँ आपसी संबंधों के लिए कोई जगह नहीं। महानगर की व्यस्त और भागदौड़ भरी जिंदगी ने आदमी को स्वार्थ बनाया है। ‘ढेला’ नामक कविता में कवि एक ऐसे आत्मकेन्द्रित व्यक्ति का चित्रण करते हैं कि जो अपने आसपास की घटनाओं से भी उदासीन हो गया है-

“और भूल जाओ
 उसी तरह जैसे राजधानी की सड़क पर हर रोज़
 हम भूल जाते हैं कोई न कोई
 दहशतनाक दुर्घटना।”⁹⁸

कवि की राय में खून के आंसू चुपचाप पीने के लिए विवश हैं महानगर के लोग। महानगरों की संस्कृति अपराध की संस्कृति बन गयी है। अपराधी एवं अक्रामकों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस पर कवि लिखते हैं -

“राजधानी में सबसे ज़्यादा रोशनी से जागमगाती सड़क पर
 जब छा जायेगा आँखों के सामने अंधेरा ...
 एक मारुति कार तेज़ी से स्टार्ट होकर गुजर पायेगा
 अपराध, संस्कृति, अक्रामकता, राजनीति
 प्रापर्टी, दलाली, सांप्रदायिकता, पत्रकारिता, हिंसा
 सबका एक साथ बजता होने,
 पूरी पृथ्वी पर गुंजता-सा लगेगा उस आखिरी पल।”⁹⁹

महानगरों की जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण प्रदूषण बढ़ गया है। ‘ड्रेनेज सिस्टम’ भी अच्छी तरह न होने के कारण हर कहीं दलदल है। महामारी भी फैल रही है। ‘मानसून में दिल्ली’ शीर्षक कविता के द्वारा कवि यह व्यक्त करते हैं। महानगरों में संबंधों की ताज़गी कम दिखाई पड़ती है। आदमी आदमी के बीच दूरियाँ बढ़ गई हैं। संवेदनाएँ इतनी खो गयी हैं कि औरों का दुःख दिल को छूता भी नहीं। संवेदना शून्य मनस्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं-

“खासियत है दिल्ली की
 कि यहाँ पेड़ों के भी सूखने से पहले
 सूख जाते हैं आँसु।”¹⁰⁰

महानगरीय परिवेश के दबाव में मानवीय जीवन असुरक्षा, खोखलापन, अमानवीयता एवं अजनबीपन से भरा हुआ है। शहरी जीवन का दबाव उनकी भावनाओं को तोड़ दिया है। महानगरों में लोग इतना स्वार्थ बन चुके हैं कि अपने अलावा किसी और की चिंता तक नहीं। भौतिक सुख के पीछे भागनेवाले ये लोग समाज से कट जाते हैं एवं अधिकाधिक संवेदनशून्य बन जाते हैं।

३.४.१३. घर-परिवार और रिश्तों में आत्मीयता

सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है परिवार। पारिवारिक रिश्तों में औपचारिकता से ज्यादा आत्मीयता का महत्व होना चाहिए। पारिवारिक रिश्तों में प्रेम, ममत्व, स्नेह, ऊर्जा, सुरक्षा और पारस्परिकता पर बल देनेवाले कवि हैं उदय प्रकाश। घर, परिवार और रिश्तों में आत्मीयता की अनुभूति उनकी कविताओं में देखा जा सकता है। 'पिता' शीर्षक कविता में मेहनती पिता का याद करते हुए कवि बताते हैं कि बचपन में पिता के कंधे पर बैठकर मैं बाजार घूमने जाता था। उन्हें इस बात पर गर्व है कि वहाँ के हरेक इमारतों पर, एक-एक दीवार पर, दरवाज़े के काठ पर, खेत की छाती पर, हल की मूट पर पिता की हथेलियों की छाप थी। लेकिन आधुनिक सभ्यता के विकास के बीच पिता कहीं गायब होते हैं। 'बस में पिता' नामक कविता पिता के प्रति संवेदना को व्यक्त करते हुए करुणा का स्वर सुनाते हैं। पिता के प्रति पुत्र का स्नेह एवं पिता के नष्ट होने पर दुःख का चित्रण दोनों कविताओं में देख पाते हैं। जैसे-

“उस बस पर बैठकर

इस तरह क्यों चले गये पिता?”^{८९}

माँ पर कई मार्मिक कविताएँ उन्होंने लिखी हैं। उदयप्रकाश की छोटी उम्र में माता की मृत्यु कैंसर से हुई। उन्हें अपनी माता से गहरा लगाव था। अपनी 'माँ' शीर्षक कविता में कवि यह व्यक्त करते हैं कि मरने के बाद भी माँ हमें न छोड़ देंगी। हमारी विषमताओं में हमेशा साथ देंगी।

“अचरज है कि आज तक
जब भी घिरता हूँ मैं अंधेरे और अकेलेपन में अपनी जर्जरता
के साथ
हर बार पता नहीं कहाँ से चला आता है वही पहला वाक्य
मेरी ओर अपने व्याकुल हाथ बढ़ाता हुआ।”^{८२}

अपनी ‘अरुन्धती’ शीर्षक कविता में माँ के प्रति भावात्मक संवेदना कवि यों व्यक्त करते हैं -

“साठ की उम्र में भी
मैं माँ की उँगलियाँ भूल नहीं पाता।”^{८३}

उदय प्रकाश ने सिर्फ माता-पिता पर कविताएँ न लिखीं। अपने भाई और बहन पर भी कविताएँ लिखी हैं। ‘नींव की ईंट हो तुम दीदी’ कविता में दीदी को कई प्रतीकों से अभिव्यक्त किया है। पीपल, ढिबरी, नदी, चट्टान आदि प्रतीकों के माध्यम से दीदी के विशेष विशिष्ट गुणों को कविता में प्रस्तुत करते हैं। अपनी दीदी पर उन्हें गर्व है कि शादी के बाद वे पति के घर की नींव की ईंट हुई हैं। दीदी के प्रति आत्मीयता व्यक्त करते हुए कवि दीदी से बिछुड़ने की वेदना का मार्मिक चित्रण करते हैं-

“घोंसले नहीं बनाये हमने
बसे नहीं आज तक
कठिन है
हमारा जीवन भी
तुम्हारी तरह ही।”^{८४}

‘भाई रे’...नामक कविता भाई पर लिखी हुई है। भाई की यादों में वे लिखते हैं-

“नीम की ठंडी छाँह में
नहीं है इतनी ठंडक
कि ठंडे हो सके

भाई के गर्म फेफड़े
 कि दुनिया-घर-परिवार
 भूल-भाल सब कुछ
 पागुर करता रहे।”^{८५}

प्रवास जीवन के बाद लौटनेवाले भाई के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए कवि बताते हैं।

“हम तुम्हारे दुःख के आँसू है भइया
 हम तुम्हारे गुस्से की आँच है
 तुम्हारे खून की ताकत है हमी
 हमी है तुम्हारे दुर्दिनों में कहीं अंतरे-कोने से
 निकलकर अचानक उमग पड़ती कोई हँसी।”^{८६}

३.४.१४. संबंधों में दरार

आज के दौर में संबंधों की डोर कमजोर पड़ती दिख रही है। आपसी समझ सद्बिश्वास एवं प्रेम की नींव पर टिका होनेवाला प्रत्येक रिश्ता आज सिर्फ पैसे पर आधारित है। रिश्तों की आत्मीयता पर बल देनेवाले कवि उदयप्रकाश संबंधों में आई हुई संवेदनशून्यता का चित्रण भी रचनाओं के माध्यम से कर रहे हैं। घर हमारे लिए सुरक्षा का स्थान है। घर ऐसा होना चाहिए की वहाँ रहनेवालों के बीच जो आपसी संबंध है वह स्नेहमय, परिपक्व एवं ऊर्जावान हो। लेकिन आज लोगों के मन में घर के प्रति संवेदना नष्ट हो चुकी है। वह सिर्फ पत्थर, ईंटों से बना हुआ मकान मात्र रह गया है। घर से जुड़ी आत्मीयता नष्ट हो चुकी है। जैसे-

“इस समय
 जबकि घर का वह अर्थ नहीं रहा।”^{८७}

आपसी रिश्तों के टूटने पर कवि बेहद दुःखी हैं। अतीत के घर में वापस जाने की इच्छा प्रकट करते हुए कवि पूछते हैं-

“क्या कोई खोलेगा मेरे घर का दरवाजा मेरी खातिर”^{८८}

आज कई रिश्ते -नाते फीके पड़ गये हैं। आपसी रिश्तों को बनाये रखने के लिए जो मधुर संवेदना मन में होनी चाहिए, वह आज नष्ट हो चुकी है। 'कविता' शीर्षक कविता में पत्थरीले संबंधों को कवि यों व्यक्त करते हैं -

“सब पत्थर के
सब पत्थर के
पत्थर के सब रिश्ते-नाते
पत्थर के सब।”^{८९}

दांपत्य जीवन में रागात्मकता होनी चाहिए। लेकिन आज रागात्मक संबंधों में भी संवेदनहीनता देख रहे हैं। 'परदा' नामक कविता में कवि बताते हैं कि परदे के बाहर कुछ स्त्रियाँ जीवन का अभिनय कर रही हैं। परदे के पीछे वे असली ज़िंदगी जी नहीं रही हैं-

“परदे के बाहर कभी भी नहीं गिरेंगे
उस स्त्री के आंसू
उसके लिए इतने और ऐसा असह्य
दुःख लिखे हैं
किसी अघ्याचारी पुरुष ने।”^{९०}

घर में माँ-बाप की स्थिति भी खतरनाक है। आज ऐसी स्थिति आ गई है कि उनकी सारी संपत्ति लूटने के बाद बूढ़े माँ-बाप के संरक्षण करने में बेटे इनकार करते हैं। उन्हें कहीं बाहर छोड़ जाते हैं। घर में उनकी सुरक्षा पर भी शंका है। तब-

“बूढ़ा बाप अपने बेटे से सुरक्षा के लिए
सरकार को भेजता है अर्जी।”^{९१}

पारिवारिक हो या सामाजिक हो सारी रिश्ता मुनाफे पर टिका हुआ है। दोस्तों पर भरोसा रखना भी नामुमकिन बन गया है। 'दुर्दिनों में कविताएँ', शीर्षक कविता में एक आदमी जो नौकरी से बरखास्त हुआ है अपने पिता के इलाज के लिए सहायता माँगकर बीस

साल पुराने बचपन के दोस्त से मिलने जाता है। वह मिल नहीं सकता है क्योंकि दोपहर में दोस्त सो रहा है। इस प्रसंग को लेकर कवि यह बताते हैं -

“दुर्दिनों में नहीं कहीं मिलता उधार
फिर भी हम खो जाते-फिरते हैं प्यार।”^{९२}

‘परछाई’, ‘हालचाल’, ‘पूरा होनेवाला वाक्य’ आदि कविताओं में भी वर्तमान रिश्तों की संवेदनहीनता का पर्दाफाश करते हैं।

३.४.१५. कलाकार एवं साहित्यकारों की झूठी नीति

साहित्य, संगीत और कला मानव जीवन के लिए अनिवार्य है। ये आदमी पर इंसानियत को जगाते हैं। मनुष्य में ज्ञान एवं संवेदनाओं को उभारकर उसे समाज के प्रति प्रतिबद्ध बनाते हैं। आज साहित्यकार एवं कलाकार समाज के प्रति अपना जवाबदेह भूलकर पैसे के पीछे चले जाते हैं। अपने क्षेत्र में विश्वास होने के बाद कुछ भी करने के लिए, चाहे वह बेईमानी की बातें हो वे तैयार हैं। उदय प्रकाश इस क्षेत्र के अनैतिक व्यवहार को लेकर दुःखी हैं। अपनी कविताओं में उन्होंने इसे खुलकर दिखाने का प्रयास किया है। आज बहुत सारी ऐसी अकादमियाँ और संस्थाएँ हैं। वहाँ कलाकार पैसे देकर पुरस्कार खरीदते हैं। सारे मूल्यों को हावी बनाकर धन की चपेट में आई अकादमियों का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं-

“आप देखते हैं कि उसी गली में,
अंत में एक इमारत है
जिसपर किसी संस्था या किसी अकादमी-
का बोर्ड टंगा हुआ है
वहाँ कतार से पार्किंग में कारें खड़ी हैं
और कुछ अफसर अपने चमकदार दांतों में
अपने पुरस्कारों को छिपाते हुए समोसे खा रहे हैं।
एक ढल चुकी नृत्यांगना चेहरे पर सफेदा

और आँखों में यक्षगान जैसा कोयला - पोतकर
पद्मश्री होने के लिए
नाच रही है।”^{९३}

आज कलाकार और साहित्यकार सरकार के चापलूस बनकर सरकारी संरक्षण और सेवाएँ प्राप्त करते हैं। वे आम जनता को संविधान पर भरोसा रखने के लिए दुहाई देते हैं। सरकार को ये वादा भी देते हैं कि उनके पापों को कला के पवित्र जल से धो डालेंगे। कवि की राय में उनका विचार जो है वह बतख के पैर के जैसे ठंडे पड गये हैं। ज्वलंत विचारों को तजकर सत्तानुगामी बन गये ऐसे कवि शासक वर्ग से प्रार्थना करते हैं-

“हमें पुरुस्कृत करें अन्नदाता
विधाता।
हम कोयल हैं
सरकार के
हम साजिन्दे हैं
दरवार के।”^{९४}

देश में अन्यायों को देखकर उसके ज़िम्मेदार लोगों की भर्त्सना करना साहित्यकारों का उत्तरदायित्व है। लेकिन कई वर्तमान साहित्यकार अन्यायों को देखकर चुप रहते हैं, यह अपराध है। अन्यायों के खिलाफ मौनधारण करनेवाले कवियों की निष्क्रियता पर प्रकाश डालते हुए कवि कहते हैं -

“यह सच राजधानी का हर सफल कवि
जानता है कि ये स्त्रियाँ सदियों से
बलात्कार की सन्तानें पैदा करती रही है
लेकिन सारी सफलताएँ ऐसी कोई चुण्पियों पर ही निर्भर हैं”।^{९५}

स्वयं को बुद्धिजीवि मानकर चुप रहनेवाले जो लोग हैं उन्हीं से समाज को कोई उपकार नहीं। ‘विद्वान लोग’ नामक कविता के द्वारा कवि उन लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-

“कम ही बोलते हैं विद्वान
 चुप ही देखा गया हैं उन्हें ज्यादातर
 हंसते उन्हें देख पाना एक कठिन सी चीज है
 और ज़ोर -ज़ोर से हंसते तो बिल्कुल भी नहीं।”^{९६}

समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को भूलकर सत्ता का गुलाम बनकर जीनेवाले साहित्यकारों का चित्रण है ‘कायदा’ नामक कविता में। कवि बताते हैं कि ये लोग हमेशा एक सुंदरजीवन और सुंदर कविता के बारे में सोचेंगे। बिना खर्च करके संस्थाओं के द्वारा विदेश जाकर शाल से सम्मानित होने के सुंदर सपनों में जी रहे हैं ये लोग। साहित्यकार आम आदमी के जीवन से जुड़ी हुई बातों को नज़र अंदाज कर रहे हैं। इसके बारे में कवि लिखते हैं-

“कवि के जीवन में होती है
 इतनी कविता - इतनी कविता
 कि दिखाई नहीं पड़ता जीवन।”^{९७}

‘किताब’ शीर्षक कविता में असत्यता को दुनिया के सामने परोसनेवाले लेखकों की निंदा करते हैं। अपराध या असत्यता से प्रदूषित ‘किताब’ का चित्रण करते हुए कवि बताते हैं -

“वाक्य कोहरे से ढंके थे, प्रदूष वहाँ भी था, आँसू थे
 जिससे हवा में नमी और खरापन था
 मात्राएं अनंत की ओर जा रही थी
 शब्द किसी रुलाई की तरह रोके हुए थे अपना अर्थ
 कोई दारुण घटना घटी थी, भाषा जिसे ढँक रही थी
 कोई सत्य था विकट, आख्यान जिसे छिपा रहा था।”^{९८}

सत्ता के विकट पक्ष में खड़े रहकर, शासकों के चापलूस बन गये लेखक गणों या कवि गणों की खामोशी पर ही मुनहसार है उनका साहित्यिक भविष्य। पुरस्कारों की राजनीति इसी खामोशी पर निर्भर है। ‘सफलचुप्पी’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“लेकिन हमें फिलहाल कविता की
सफलता के बारे में सोचना है
जिसका रहस्य ऐसी जगहों की खामोशी पर ही मुनहसार है।”⁸⁹

उदय प्रकाश अपनी कविता ‘चंद्रमा’ से लेखक गणों से यह बताना चाहते हैं कि समाज में व्याप्त अन्याय रूपी अंधेरे को मिटाकर प्रकाश फैलाना ही कवि का कर्तव्य है। जनता के पक्ष पर खड़े होकर अपराध, अपसंस्कृति, अन्याय आदि के विरुद्ध आवाज़ उठाना कवि का कर्तव्य है। उदय प्रकाश यह अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए वे कविगणों से मानवीय संवेदना को बनाये रखने का बयान कर रहे हैं।

“मैं तो कहता हूँ
कि वही है सच्चा कवि, जिसका शरीर रात में चमकता है
चंद्रमा की तरह
जो जानता है समुद्र के बुखार के बारे में
बजाता है संसार के सारे घंटाघरों को
नियमपूर्वक
जीवनभर
लगातार।”⁹⁰

३.४.१६. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

अभिव्यक्ति की आज़ादी दुनिया भर के अधिकाँश देशों के नागरिकों को दिये गये मूल अधिकारों में एक है। १९४८ के मानव-अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में यह बताया गया है कि हर किसी को अपने विचारों और राय को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। भारत जैसे जनतंत्र देश का आधार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अधिष्ठित है। अपने विचारों को प्रस्तुत करने और समाज में परिवर्तन लाने के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए। अभिव्यक्ति की आज़ादी पर बल देनेवाले कवि उदयप्रकाश की कविताएँ अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाती हैं। उनका मत यह है कि,

अभिव्यक्ति की आज़ादी के बिना मानव का अस्तित्व ही नहीं । ‘मरना’ शीर्षक अपनी कविता में कवि ऐसा बताते हैं -

“कुछ नहीं सोचने
और कुछ नहीं बोलने पर
आदमी
मर जाता है।”^{१०१}

लेकिन आज हर कही अभिव्यक्ति की आज़ादी का हनन हम देख रहे हैं। जो सत्य को उद्घाटित करता है उनकी ओर शस्त्र उठाने में कोई हिचक नहीं। उदय प्रकाश की अनेक कविताओं में स्वतंत्र अभिव्यक्ति करने में डरनेवाले आदमी का चित्रण मिलता है। बाबरी मस्जिद के विध्वंस पर लिखी गयी कविता है ‘तीली’। इस कविता में कवि यह व्यक्त करते हैं कि सिर्फ एक तीली से महान चीज़ों को नष्ट कर सकते हैं। सत्ताधारियों के विरुद्ध आवाज़ उठाकर विचारों की अभिव्यक्ति करना आज खतरनाक है। किसी कवि, किसी संन्यासी, किसी सूफी, किसी मुंहफट जोकर, किसी विरोधी को राजधानी की सड़क पर सदा के लिए चुप और ठंडा करने के लिए डेढ़ ओंस का ढला हुआ सीसा काफी है। आज यहाँ ऐसी नीति चल रही है-

“जो यथार्थ को व्यक्त करता है
वह मार दिया जाता है अफवाहों से।”^{१०२}

आज का समय ऐसा है कि बहुत डरावना है । अपनी शिराओं में झुरझुरी और नींद में दुःस्वप्न देखकर आदमी जी रहे हैं। समय इतना जटिल बन गया है कि एक दूसरे को देखने पर हर किसी की आँखों में खौफ है। भय इतना बढ़ गया है कि खतरा उठानेवाला और शिकार होनेवाला दोनों आपस में डरते हैं। अपनी एक कविता में ईश्वर को धन्यवाद देते हुए कवि बताते हैं-

“ईश्वर! वर्तमान को धन्यवाद
जिसने ऐसा भय दिया

कि इतने सारे शत्रुओं को
फिल्हाल एक किया।”⁹⁰³

‘एक डरे हुए रिएक्शनरी कवि की कविता’ शीर्षक कविता, जो कात्यायनी के लिए समर्पित है। इसमें कवि बताते हैं अपराधियों और भ्रष्टों को स्तुति करके उन पर सोहर गानेवाले लेखकों को समकालीन साहित्य, अख़बार, साहित्यिक संस्थाएँ और सरकार द्वारा संरक्षण और सेवायें प्राप्त हैं। लोग विभिन्न पुरस्कारों से पुरस्कृत भी रहे हैं। क्योंकि वे सत्ता के अन्याय और अत्याचारों पर स्तुति पाठ करनेवाले चापलूस हैं। लेकिन एक प्रतिक्रान्तिकारी कवि को पुरस्कार ही क्या, निडरता से जीना भी मुश्किल बन गया है। इसका चित्रण करते हुए कवि कात्यायनी से कह रहे हैं-

“कात्यायनी
विडंबना ही है कि इस पल
प्रतिक्रान्तिकारी कवि के ही चारों ओर है
भूख, भय, लांछना, दंड और निर्वासन का दुर्निवार अंधकार।”⁹⁰⁴

स्वतंत्र लेखकों की स्थिति आज ख़तरे में हैं। हिंदी के स्वतंत्र लेखकों की अवस्था पर कवि दुःखी हैं। ‘कौए और लेखक का दिल्ली में देहांत’ कविता में कवि कहते हैं हिंदी का स्वतंत्र लेखक अपने पारिश्रमिक के दम पर दिल्ली से आगरा भी नहीं जा सकता। उनके लिए कोई अकादमी या संस्था ही नहीं। मानवीय सोच और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निरंतर ज़ोर देनेवाले कवि ‘मैं जीना चाहता हूँ’ कविता के माध्यम से यह व्यक्त करते हैं-

“कविता में हारकर
विचारों में विजेता मैं नहीं होना चाहता
कविता में जीतकर
विचारों में हारना नहीं चाहती।”⁹⁰⁵

कवि इस सच्चाई को अच्छी तरह से पहचानते हैं कि अपने विचारों को अपने ही अंदर कैद करनेवाला नहीं, बल्कि कविता के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति करनेवाला

ही सच्चा कवि है। वे ही सच्चे समाज का निर्माता हैं। कवि को पूरा विश्वास है कि हरेक अन्याय और अपराध के मूल में सत्ता और पूँजी ही काम आते हैं। नकदी की भाषा से कभी भी किसी कवि अपने सहजीवियों की वाणी नहीं बन सकता। इसलिए ही नये इतिहास का सपना देखनेवाले उदय प्रकाश जैसे, नकदी की भाषा से निर्वासित कवि अकेले में गाते हैं-

“जिस रोज़ से एटिएम की मशीनें
अपने, जबड़ों से नकदी नहीं
कविताएँ उगलने लगेंगी
उस रोज़ से चिड़ियों, धरती और कविता का
नया इतिहास लिखा जायेगा।”⁹⁰⁶

नया इतिहास रचने के लिए अभिव्यक्ति की आज़ादी अनिवार्य है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता संविधान की किताबों में लिखने मात्र से नहीं, बल्कि लोकतंत्र में सबको अपना अहसास दिलाने का माध्यम भी है। हमारे देश में अनेक पत्रकारों, लेखकों और आर.टी.आई कार्यकर्ताओं की हत्या की गई है। क्योंकि उन्होंने पर्दे के पीछे की सच्चाई लोगों के सामने रखने की कोशिश की थी। सवाल यही है कि पंख विहीन स्वतंत्र पक्षी बनकर हम विस्तृत आकाश में कैसे उड़ पायेंगे?

३.४.१७. भाषा की चिंता

नव औपनिवेशिकता के दौर से हम गुज़र रहे हैं। नव उपनिवेशवाद ने हमारे देश की संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला है। परिवर्तन की दुनिया में कई बहुमूल्य चीज़ें हमसे नष्ट होती रहती हैं। मानवीय संबंध, मानवीय मूल्य, मानवीय आस्था एवं मानवीय संवेदनाएँ हम से नष्ट होती रहती हैं। भाषा की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। भाषाओं के अस्तित्व पर भी खतरा मंडरा रहा है। भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन मात्र नहीं, संस्कृति की वाहिका भी है। भाषा का नष्ट होना संस्कृति का नष्ट होना है। इसलिए हम देखते हैं उदय

प्रकाश जैसे संवेदनात्मक कवि की कविताओं का केन्द्र शब्द बन गया है 'बचाना'। हिंदी भाषा की लुप्त होती ध्वनियों को लेकर उदय प्रकाश आशंकित हैं। ध्वनियों को बचाने का आह्वान करते हुए कवि बताते हैं-

“चिंता करो मूर्खन्य 'ष' की
 किसी तरह बचा सको तो बचा लो 'ड'
 देखो, कौन चुरा कर लिये चला जा रहा है खडीपाई
 और नागरी के साथ अंक
 जाने कहाँ चला गया ऋषियों का 'ऋ'”^{१०७}

कवि की राय में किताबों में असत्यता का बयान करते-करते भाषा प्रदूषित होती जा रही है। 'किताब' कविता के माध्यम से कवि यह बताते हैं कि वाक्य कोहरे से ढके थे और दारुण घटनायें भाषा से भी ढक रही थीं। यहाँ 'ढँकना' शब्द से कवि यह बताना चाहते हैं कि कभी-कभी भाषा सच्चाई को छिपाती है। 'एक नसीहत जो हम बताये जाते हैं' कविता के माध्यम से कवि यह व्यक्त करते हैं- “हम धोखे को पहचान जाते हैं। भाषा ही वह छल है जो हमें इस इमारत तक ले आयी। इतने सारे शब्द, निश्चय है, कुछ व्यक्त करने के लिए नहीं, कुछ छिपाने के लिए होते हैं।”^{१०८}

'अपना घर' शीर्षक कविता में भाषा के बदलते अर्थों की ओर इशारा करते कवि बताते हैं इस समय कोई भी वाक्य पहले का अर्थ नहीं देता। 'एक भाषा हुआ करती है' नामक कविता में अपनी भाषा को लेकर कवि को गर्व है कि यह साधारण से साधारण असंख्य जनों की भाषा है। लेकिन इस बात को लेकर कवि दुःखी भी हैं कि दुनिया की समूचा सूचना संजाल इसकी लिपियाँ स्वीकार करने से इंकार करते हैं। सूचना संजाल के इस युग में लिपियों का लुप्त होना एक डरावनी सच्चाई है। तब कवि लिखते हैं -

“हम स्वप्न में डरे हुए देखते हैं टूटते उलका पिंडों की तरह
 उस भाषा के अंतरीक्ष से
 लुप्त होते चले जाते हैं एक-एक कर सारे नक्षत्र”^{१०९}

‘बिरजित खान’ शीर्षक कविता में भी भाषाई संवेदना हम देख पाते हैं। अफगानिस्तान में अमेरिकी बमबारी के दौरान अपनी भेड़ों के साथ -घायल हुआ गडरिए का नाम है बिरजित खान। घायल होते हुए भी वह अपने लिए नहीं मेमनों और भेड़ों के लिए चीख रहा था। क्योंकि वही उनका सर्वस्व था। साम्राज्यवादी ताकतों ने बिरजित खान एवं उनके भेड़ों और मेमनों को घायल किए थे। ये साम्राज्यवादी शक्तियाँ हमारी भाषा के ऊपर भी हमला कर रही हैं। तब कवि को ऐसा लगता है कि अपनी ही भाषा के भूगोल में हम सब बिरजित खान हैं। कवि हमसे बताते हैं -

“मेमनों और भेड़ों के शवों के बीच
चीखता है बिरजित खान
जैसे चीखते हैं हम
अपनी ही भाषा के भीतर”⁹⁹⁰

उपभोगवादी संस्कृति को प्रकट करनेवाली नकदी की भाषा से नफरत करनेवाले कवि संवेदनयुक्त भाषा पर अधिकाधिक बल देते हैं। संसार का भविष्य मानवीयता की भाषा पर निर्भर है। संसार के उज्ज्वल भविष्य का सपना देखनेवाले कवि ‘कविता का बजट सत्र’ शीर्षक कविता में ऐसा बताते हैं-

“परिन्दों के रैनबसेरों की चिलचिलाहट
उस भाषा की ध्वनियाँ हैं
जिस भाषा में धरती का भविष्य
हर रोज़ अपनी डायरी के पन्ने भरता रहता है।”⁹⁹¹

उदय प्रकाश ने जिस भाषा में ये कविताएँ लिखी हैं वह एक महानदी की तरह है। जहाँ अनेक भाषाई नदियाँ समाहित हैं। कवि के लिए भाषा बहती वैतरणी है। उन्होंने लिखा है - “भाषा में रहना और भाषा में जीना, उसी में होना और उसी में बीत जाना। सब कुछ को ऐसा देखना जैसा यह सब भाषा का प्रपंच है लेकिन इसी प्रपंच के पार

झलकता हुआ वह धुंधला-सा सच भी, जिसे कहने में जीवन की सारी निश्चितता निरास्त हो जाती है।”^{३१२}

३.४.१८. निष्कर्ष

संक्षेप में कहा जाए तो उदयप्रकाश की कविताओं का भावपक्ष इतना विस्तृत है कि उन्होंने समाज के हर कोण से जीवन को परखने का भरसक प्रयास किया है। कवि कर्तव्य को अच्छी तरह से जाननेवाले कवि ने अपनी कविताओं में कल्पना के मायावी जगत को पूरी तरह से तिरस्कृत करके समाज की वास्तविकता का चित्र खींचा है। समाज के हर वर्ग के साथ आत्मीयता प्रकट करके उनकी ऊँगलियों को थामकर उनके साथ-साथ चलने की प्रतिबद्धता उनकी कविताओं में देख पाते हैं। परिवेशगत सच्चाई को हूबहू ज़ाहिर करके मानवीय संवेदना को बनाये रखने की क्षमता उनकी कविताओं में दिखाई पड़ती है।

भावपक्ष के साथ ही साथ कविता का कलापक्ष भी काफी महत्वपूर्ण है। उनकी भाषा तेज़ है। भाषिक संरचना के प्रति सतर्क कवि ने भावपक्ष को तीव्रता मिलाने के लिए अपनी कविता में प्रतीक, बिंब, फ़ैन्टसी जैसे तत्वों का प्रयोग किया है। जनपक्ष में खड़े रहने का जो सामाजिक बोध उनकी कविता में है, वह पाठकों के मन में बेचैनी और संत्रास पैदा करता है। ये कविताएँ पाठक मन में मानवीय संवेदना को जगाकर सच्चाई के धरातल पर अडिग रहकर सही दिशा की ओर अग्रसर करने के लिए प्रेरणा देती हैं।

संदर्भ सूची

१. उदय प्रकाश - अम्बर में अब्बाबील, पृ.सं.९०
२. डॉ.संतोषकुमार तिवारी - अज्ञेय से अरुणकमल, पृ.सं.२१२.
३. मंजुलागुप्ता - हिंदी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, पृ.सं.९
४. जगदीश नारायण श्रीवास्तव - समकालीन कविता पर एक बहस, पृ.सं.३०
५. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.४०-४१.
६. उदय प्रकाश - अम्बर में अब्बाबील, पृ.सं.१२६
७. उदय प्रकाश - अम्बर में अब्बाबील, पृ.सं.१५०
८. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.१०
९. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.१९
१०. उदय प्रकाश - अबूतर - कबूतर, पृ.सं.२२
११. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.२२-२३
१२. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.११
१३. जैनेन्द्रकुमार - समय समस्या और सिद्धांत, पृ.सं.२०३
१४. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.३१
१५. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.३१
१६. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.३३
१७. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.३१-३२
१८. उदय प्रकाश - अम्बर में अब्बाबील, पृ.सं.६६
१९. उदय प्रकाश - अम्बर में अब्बाबील, पृ.सं.८८
२०. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.५१
२१. श्यामचरण दुबे - विकास का समाज शास्त्र, पृ.सं.१५७-१५८

२२. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.१
२३. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.१३-१४
२४. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.४०
२५. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.४९.
२६. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.२९
२७. उदय प्रकाश - अबूतर - कबूतर, पृ.सं.४४
२८. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.५०
२९. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.३०
३०. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.२२
३१. उदय प्रकाश - नई सदी का पंचतंत्र, पृ.सं.२४२
३२. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.११३
३३. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.४९.
३४. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.४०
३५. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.७४
३६. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.५८
३७. उदय प्रकाश - अम्बर में अबाबील, पृ.सं.२४
३८. उदय प्रकाश - अम्बर में अबाबील, पृ.सं.११०
३९. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.६५
४०. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.७८
४१. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.८०
४२. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.७९
४३. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.१०३
४४. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.१०४

४५. उदय प्रकाश - अम्बर में अबाबील, पृ.सं.१२२
४६. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.२२
४७. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.४७
४८. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.३०
४९. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.३८-३९
५०. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.५८
५१. उदय प्रकाश - पचास कविताएँ, पृ.सं.४०
५२. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.९५
५३. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.८६
५४. उदय प्रकाश - अम्बर में अबाबील, पृ.सं.१०९
५५. उदय प्रकाश - ईश्वर की आँख, पृ.सं.४२
५६. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.८७-८८
५७. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.२१
५८. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.१४
५९. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.८३
६०. उदय प्रकाश - ईश्वर की आँख, पृ.सं.४०
६१. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.६१
६२. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.६६-६७
६३. उदय प्रकाश - अबूतर-कबूतर, पृ.सं.७१.
६४. उदय प्रकाश - अबूतर-कबूतर, पृ.सं.६२.
६५. उदय प्रकाश - अबूतर-कबूतर, पृ.सं.७४.
६६. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.५६
६७. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.६१-६२

६८. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.७४
६९. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.२२
७०. उदय प्रकाश - अबूतर-कबूतर, पृ.सं.१०३
७१. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.३५
७२. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.२५
७३. उदय प्रकाश - अंबर में अबाबील, पृ.सं.५९
७४. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.३०
७५. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.२९
७६. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.३४
७७. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.९७
७८. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.१९
७९. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.५७
८०. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.६०
८१. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.१०८
८२. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.११५
८३. उदय प्रकाश - अम्बर में अबाबील, पृ.सं.७६
८४. उदय प्रकाश - पचास कविताएँ, पृ.सं.३८
८५. उदय प्रकाश - अबूतर - कबूतर, पृ.सं.२०
८६. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.१३५
८७. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.५३
८८. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.५१
८९. उदय प्रकाश - अबूतर - कबूतर, पृ.सं.३९
९०. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.९७

९१. उदय प्रकाश - अंबर में अब्बाबील, पृ.सं.८८
९२. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.१११
९३. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.५२
९४. उदय प्रकाश - अबूतर-कबूतर, पृ.सं.९६
९५. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.३१
९६. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.९१.
९७. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.१४१
९८. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.२६
९९. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.३२
१००. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.२५
१०१. उदय प्रकाश - सुनो कारीगर, पृ.सं.९३
१०२. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.५०
१०३. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.७०
१०४. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.४३.
१०५. उदय प्रकाश - अंबर में अब्बाबील, पृ.सं.९३
१०६. उदय प्रकाश - अंबर में अब्बाबील, पृ.सं.६३
१०७. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.२१
१०८. उदय प्रकाश - रात में हारमोनियम, पृ.सं.५२
१०९. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.१११
११०. उदय प्रकाश - एक भाषा हुआ करती है, पृ.सं.११७
१११. उदय प्रकाश - अंबर में अब्बाबील, पृ.सं.६३
११२. उदय प्रकाश - नयी सदी का पंचतंत्र, भूमिका.

चौथा अध्याय

अरुण कमल की कविताओं में अभिव्यक्त
मानवीय संवेदना

मानव मन में सुषुप्त संवेदनाओं को बाहर लाने के लिए एक सशक्त माध्यम है कविता। दुनिया के बदलते चेहरे का परिदृश्य कविता में देख पाते हैं। धूल-धूसरित जीवन को सहलानेवाली कविता की अभिव्यक्ति वे कर सकते हैं जो अपने आसपास की ज़िन्दगी को भरी-पूरी संवेदना की दृष्टि से देखते हैं।

पुतली में संसार देखनेवाले कवि अरुणकमल को समकालीन कविता के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान है। मानवीय संवेदना पर बल देनेवाले कवि दुनिया की तमाम गतिविधियों को आत्मसात् करके उसे एक कवि की पूरी ज़िम्मेदारी के साथ अपनी कविताओं में चित्रित करते हैं। उनकी कविताओं के मूल में सहज जीवन स्पर्श है। कविता को वे अभावग्रस्त मेहनतकश आम जनता की ज़िन्दगी से जोड़ते हैं। वे लिखते हैं “यह जो जीवन है क्षुद्र, भंगुर और गंदगी से भरा वही कविता का अपना घर है। इसी काँडों - कीचड़ में धँस कर कविता अपना काम करती है। जो बिल्कुल साधारण है वही कविता के लिए पवित्र और महत्तम है।”³

४.१. जीवन-परिचय

अरुण कमल का जन्म १५ फरवरी १९५४ में बिहार के रोहतास जिले के नासरिंगंज में हुआ। अरुण कुमार उपाध्याय आपका असली नाम है। उनके पिता का नाम कपिलदेवमुनि और माता का नाम सुरेश्वरी देवी थी। सरकारी शिक्षक पिता के स्थानान्तरण के कारण आपका बचपन गडहनी; बारुन, शेरघाटी, कुदरा, हसनबाजार आदि जगहों पर व्यतीत हुआ। घर का वातावरण पढ़ाई-लिखाई तथा किताबों का था। इसलिए बचपन से ही वे पुस्तकों से लगाव एवं साहित्यिक अभिरुचि रखते थे। हसनबाजार से

१९६९ में मैट्रिक उत्तीर्ण करने के बाद एम.ए. तक की शिक्षा पटना विश्वविद्यालय से की। एम.ए.की परीक्षा समाप्त होने के बाद पंजाब नेशनल बैंक में बतौर क्लर्क की नौकरी मिल गयी। इसके पश्चात् मोतिहारी के एम.एस कॉलेज के अंग्रेज़ी विभाग में लेक्चरर के तौर पर काम किया। बाद में १९७८ से लेकर आज तक पटना विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर पद पर कार्यरत हैं। सन् १९८० में उनकी शादी हो गई। आपकी दो संतानें हैं, एक पुत्र और एक पुत्री।

४.२. सृजन परिचय

अरुण कमल ने अपनी पहली कविता 'परियार चुनाव के बाप रहे एसों बचवा आइल बा' नाम से भोजपुरी भाषा में लिखी। पटना के बी.एन कॉलेज की परिशचन्द्र सभा की कविता प्रतियोगिता में भाग लेकर उन्होंने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। वहाँ उनकी कविता का पाठ भी हुआ। वहाँ कवि रामकृष्ण पांडेय से परिचय होने के कारण उनके साहित्यिक जीवन में नई दिशा मिली। रामकृष्ण पांडेय की साइक्लोस्टाइल्ड पत्रिका 'प्रक्रिया' में अरुण कमल की कविता पहली बार प्रकाशित हुई। इसी माध्यम से नंदकिशोर नवल से उनका परिचय हुआ। यहाँ से उनके साहित्यिक जीवन में कई बदलाव आए। नवल के माध्यम से धूमिल, मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल जैसे अनेक महान कवियों से उनका परिचय हुआ। इन लोगों का काफी प्रभाव अरुण कमल पर पडा। इसके बारे में वे कहते हैं - "मुक्तिबोध ने मेरे नितांत निजी संकटों से मुझे संभाला। कविता की इस शक्ति का मुझे पहले अंदाज़ा न था। ये सारे कवि वो थे जो संपूर्ण जीवन के कवि थे, प्रेम उद्दाम आवेग से संपन्न और गहरी करुणा के कवि। मैं अपने कवियों को पाने लगा था। आप कैसा लिखेंगे या लिखना चाहते हैं, यह बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि आप किन कवियों को, किस कवियों को प्यार करते हैं। किन्हें कब रास्ते के किसी पडाव पर छोड़ दूसरे का साथ करते हैं और फिर इसी तरह चलता जाता है। लेकिन आप किसी कवि को प्यार करेंगे यह बहुत कुछ आपके निजी, जीवन, विचार तथा बनावट

पर निर्भर करता है। आपके अपने अनुभवों पर मेरा रास्ता नागार्जुन से होकर निराला का रास्ता था। लेकिन गति तो मेरी थी क्षुद्र और डगमग।”^२

अरुण कमल कवि के साथ ही साथ अच्छे समीक्षक, अनुवादक और संपादक भी हैं। ‘अपनी केवलधार’ (१९८०) ‘सबूत’ (१९८९) ‘नये इलाके में’ (१९९६) ‘पुतली में संसार’ (२००४) ‘मैं वो शंख महाशंख’ (२०१२) ‘योगफल’ (२०१९) आदि आपके प्रमुख काव्यसंग्रह हैं। कविता और समय (१९९९), गोलमेज(२००९) आदि उनके आलोचनात्मक ग्रंथ हैं। ‘कथोपकथन’ नाम के साक्षात्कारों की एक किताब भी प्रकाशित की है।

‘कविता और समय’ में १९८० से लेकर १९९७ तक विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित आलोचनात्मक निबंध हैं। दो खंडों में विभक्त इस किताब के पहले खंड में निराला, शमशेर, नागार्जुन, त्रिलोचन, फैज़, हरिशंकर परसाई, विजयदान देथा, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, मलयज, केदारनाथ सिंह, परमानंद श्रीवास्तव और डॉ. नामवरसिंह आदि महत्वपूर्ण लेखकों की रचनाओं पर आलोचना है। दूसरे खंड में साहित्य, विशेषकर कविता संबंधी टिप्पणियाँ तथा वक्तव्य हैं।

‘गोलमेज’ २००९ में प्रकाशित आलोचनात्मक पुस्तक है। इस पुस्तक में कबीर से लेकर कई समकालीन कवियों की कविताओं पर समीक्षात्मक लेख हैं। निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, नेमीजी, मलयज, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, चिरंजीव दास, रामजीवन शर्मा, ‘जीवन’ तथा राजेश जोशी आदि कवियों की कविताओं की समीक्षा है। भिखारी, ठाकुर और पाब्लोनेरूदा की कविता पर आलोचनात्मक लेख भी इसमें संकलित हैं। नामवरसिंह की कविता संबंधी समीक्षा पुस्तक ‘कविता के नए प्रतिमान’ पर अपना विचार व्यक्त किया है। ‘गोलमेज’ शीर्षक निबंध में अनुवाद संबंधी विचार प्रस्तुत किया है। भीष्मसाहनी, निर्मल वर्मा, प्रेमचन्द, श्रीलाल शुक्ल, प्रभाकर श्रोत्रीय, विश्वनाथ त्रिपाठी आदि के साहित्य का समीक्षात्मक विवेचन एवं सत्यप्रकाश शर्मा से संबंधित कुछ प्रश्नोत्तर भी इस पुस्तक में संकलित हैं। पुस्तक का

अंतिम भाग है 'पारचुन'। इसमें कविता और समाज पर की गई कुछ संवादात्मक शैली के टिप्पणियाँ एवं वक्तव्य हैं।

२००९ में प्रकाशित 'कथोपकथन' साक्षात्कारों की एक पुस्तक है। इसमें लीलाधर मंडलोई, वीरेन्द्र सिंह, एकांत श्रीवास्तव, कुसुम खेमानी, धर्मेन्द्र सुशांत, ओम निश्चल, अजित राय, वीरेश चन्द्र, वाल्मीकी विमल, प्रमोदरंजन, सुधीर रंजन, कलाराय, राजेन्द्र शर्मा, विश्वजित सेन, विजयकुमार, महावीर अग्रवाल, अजित राय, हरे प्रकाश उपाध्याय आदि साहित्यकारों द्वारा अरुणकमल से की गई विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साक्षात्कारों को शामिल किया है।

अरुण कमल समाचार पत्रों के लिए स्तंभ लेखन तथा आलेख लेखन करके पत्रकारिता से भी जुड़े रहे हैं। साथ ही साथ 'आलोचना' त्रैमासिक पत्रिका के संपादक कार्य भी किया गया है।

वे एक सफल अनुवादक भी हैं। अंग्रेज़ी के कई साहित्यिक कृतियों को उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया है। वियतनामी कवि 'तो हू' की कविताओं का अनुवाद, मायकोवस्की की आत्मकथा का अनुवाद, 'वायसेज' नाम से भारतीय युवा कविता का अनुवाद, किपलिंग की 'जंगलबुक' का अनुवाद आदि आपके कुछ महत्वपूर्ण अनुवाद कार्य भी हैं।

अरुण कमल के साहित्यिक योगदान को ध्यान में रखकर समय-समय पर उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। भारत भूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार (१९८०) सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार (१९८४) श्रीकांतवर्मा स्मृति पुरस्कार (१९९०) रघुवीर सहाय स्मृति पुरस्कार (१९९६) शमशेर सम्मान (१९९७) साहित्य अकादमी पुरस्कार (१९९१) आदि सम्मान उन्हें प्राप्त हुआ है।

वे कई साहित्यिक सम्मेलनों एवं साहित्यिक यात्राओं में भाग लेते रहे। आप अफ्रोएशियायी युवा लेखक सम्मेलन, ब्राजाविले एवं कांगों में भारत के प्रतिभागी थे।

रुस, चीन तथा इंग्लैंड जैसे अनेक राष्ट्रों में साहित्यिक यात्रायें की हैं। राँची से प्रकाशित 'दैनिक प्रभात खबर' में अनुस्वर नामक अनुवाद स्तंभ लेखन किया है। नवभारत टाइम्स के लिए जन-गण-मन स्तंभ में सामयिक टिप्पणियाँ एवं 'लिटरेट वेल्ड' नामक इंटरनेट पत्रिका के लिए स्तंभ लेखन का कार्य भी किया है। आप साहित्य अकादमी के सामान्य परिषद एवं सलाहकार समिति के सदस्य रहे हैं। साथ ही साथ हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की समिति के भी सदस्य रहे हैं।

४.३. कविता संग्रह - एक परिचय

अरुण कमल के अभी तक छः काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'अपनी केवलधार' (१९९८) 'सबूत' (१९८९) 'नये इलाके में' (१९९६) 'पुतली में संसार' (२००४) 'मैं वे शंख महा शंख' (२०१२) 'योगफल' (२०१९) आदि आपके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं।

अरुण कमल जनता के पक्ष में खड़े होकर उनके लिए कविता लिखते हैं। उनका काव्य चिंतन या काव्यदृष्टि निश्चय ही जनवादी विचारधारा को लेकर है। शोषित-पीडित, निर्बलतम श्रमजीवी वर्ग के पक्ष में वे कविता लिखते हैं। उनकी मान्यता यह थी कि "कविता निर्बलतम का पक्ष है। जिसका कोई नहीं उसकी कविता है। जो सबसे कमज़ोर, दलित और असहाय है उसका बल है। मुए बैल की खल से बनी भाँथी की धौंकती साँस है जिससे लौह भी भस्म हो जाए। इसके सिवा कविता की दूसरी भूमिका नहीं हो सकती। ऐसे समय में जब देश में पूँजी का कोई वास्तविक विपक्ष बचे ही नहीं, कविता जीवन का अंतिम मोर्चा, अंतिम चौकी है। इसलिए वैसे कवि पीकदान में डूब जाएँगे जो ग्लैमर, वृत्ति और वित्त के प्यासे हैं।"^३

अरुण कमल की कविता इस बात की साक्षी है कि वे हमेशा प्रतिपक्षधर्मी है। उनकी कवितायें मेहनतकश आम जनता के पक्ष में खड़े रहकर सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठाती हैं। उन्होंने निर्बल, कमज़ोर, पीडित सर्वहारा जनता के भोगे हुए यथार्थ को गहरी संवेदना के साथ कविता फलक में अंकन किया है।

४.३.१. अपनी केवल धार

अरुण कमल का पहला कविता संग्रह अपनी केवल धार १९८० में प्रकाशित हुआ। जाना है, यात्रा, सौंदर्य, खबर, होटल, मर्डे का एक दिन, धरती और भार, सूर्य ग्रहण १, सूर्य ग्रहण २, सूर्य ग्रहण ३, तमसो मा ज्योतिर्गमय, जितना दो आँखें, फिर वही आवाज़, और बेचानी कुबड़ी बुढ़िया, पृथ्वी किसलिए घूमती रही, युद्ध-क्षेत्र, जिद्दी लतर, मुक्ति, इसके पहले, दरजिन, आँधी की एक रात, डायरी: मार्च ७८, जाल, हाथ, रावण के माथे, निस्पृह, झरना, अहिंसा और भीख माँगते बच्चे, एक नवजात बच्ची को प्यार, अर्पण, ईर्ष्या, हम यहीं रहते हैं, वे और हम, अपील, टेलिफोन की तार, करमा की गीत, एक रात घाट पर, वृद्धि, भूसी की आग, गंगा को प्यार, स्नान-पर्व, असंवैधानिक मौत, उड़ी एक चिडिया, एक रात की टंडक, फिर से, उर्वर प्रदेश, भाग्य-फल, कल्याणी, प्रस्ताव, खुशबू रचाने हैं हाथ, बच्चा हँसता क्यों हैं? डैली पैसेंजर, शहंशाह मैकबेथ, धार आदि ५४ कवितायें इसमें संकलित हैं।

इस संग्रह की कवितायें हमेशा साधारण जनता के जीवन से जुड़े रहनेवाले कवि की वाणी हैं। वर्तमान भारतीय समाज में होनेवाले अन्याय और अत्याचार का चित्रण है। रोज़ी रोटी के लिए अपना घर छोड़कर कहीं दूर जाने के लिए विवश कृषक, अपने बच्चों की भूख मिटाने के लिए प्रयासरत औरतें (माँ), घर के देख-भाल करने के लिए विवश स्कूल मास्टर, सांप्रदायिक एवं जातीय दंगों से पिस जानेवाली आम जनता, कठिन मेहनत करने के बाद भी अभाव में जीने के लिए विवश श्रमिक वर्ग आदि कई तरह की ज़िंदगियों का यथार्थ चित्रण इस संग्रह की कविताओं में देख पाते हैं।

देश की ऐसी सामाजिक स्थिति को सुधार करना युवा लोगों का उत्तरदायित्व है। लेकिन इसमें भी कवि को आशंका है। क्योंकि गरीबी एवं अभावग्रस्त ज़िंदगी के कारण युवा पीढ़ी कमज़ोर बन गयी है। 'वृद्धि' नामक कविता में कवि युवा लोगों के भविष्य के संबंध में आशंका प्रकट करते हैं। हमारे समाज में हर कहीं असंतुलन की स्थिति है। सामाजिक असंतुलन की दुःस्थिति की अभिव्यक्ति 'धार' कविता में इस प्रकार की है-

“अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार
सारा लोहा उन लोगों का
अपनी केवल धार।”^४

विषय जो भी हो ‘अपनी केवलधार’ की कविताओं के केन्द्र में आदमी है। आदमी के बिना अरुण कमल की कवितायें अपूर्ण हैं। अरुण कमल का विश्वास यह है कि “एक कविता में बाकी सबकी ज़िदगी और उनकी बात उनकी बोली सब कुछ होता है, नहीं तो वो कविता फिर सबके लिए नहीं होगी। क्योंकि कविता मनुष्य के जीवन के महत्तम समापवर्त की खोज है वह सर्वनिष्ठ।”^५ हमारे समाज में हर कहीं असंतुलन की स्थिति है।

‘अपनी केवल धार’ की कविताएँ यह स्थापित करती हैं कि कविता के लिए किसी भी विषय त्याज्य नहीं है। छोटे-छोटे जीवन संदर्भों को लेकर उन्होंने इस संग्रह की कविताओं के माध्यम से जीवन के प्रति अदम्य लालसा प्रकट की है।

४.३.२. सबूत

अरुण कमल का दूसरा कविता संग्रह १९८९ में प्रकाशित हुआ। निशान, जीवधारा, जेल में याद, जेल का गिलास, जेल का अमरुद, मुझसे इतना भय था, यातना, एक बार भी बोलती, एकालाप, हत्यारा, उम्मीद, झड़ना, हरा दस्ताना, मानुष गंध, बुढापा, कथावाचक, धनतेरस, अमरफल, मतलब, संबंध, हक, सखियाँ, दसमुख फूल, महात्मा गाँधी सेतु और मज़दूर, एक यात्रा, नींद, भेंडाघाट, आखिर हर्ज ही क्या है, वार्ता वैष्णवन की, जुर्म, बोलना, मौत, स्थिति, ईद ८२, जीत, ऐसा क्यों हो रहा है, तुम चुप क्यों हो, उत्सव, जय हो जय हो सबकी जय हो, सबूत, खतरा, उल्टा जमाना, वक्त, रात के दो बजे, एक दिन, फिर भी, स्वगत, इक्कीसवीं शताब्दी की ओर, छोटी दुनिया, अफ्रीका : एक यात्रा, दुःस्वप्न, पसंद आदि बावन कवितायें इस संग्रह में संकलित हैं।

अरुण कमल की कविता का जनवादी पक्ष नामक किताब में संजय रणखॉबे ने ऐसा उद्धृत किया है कि “इस संग्रह की कविताएँ उनके पहले संग्रह की तुलना में काफी संयत और सशक्त ढंग से विकसित रूप में सामने आयी हैं। लेकिन इस संग्रह में भी उनके सामने आदमी मौजूद है।”^६

इस संग्रह की प्रत्येक कविता में पूरी संवेदना के साथ कवि अपने विचारों को वाणी देते हैं। जीवन में निरंतर संघर्ष करने के बाद भी शोषण का शिकार बननेवाले सर्वहारा वर्ग का चित्रण ‘महात्मागांधी सेतु और मज़दूर’ कविता में देख पाते हैं। पृथ्वी के एक खंड को दूसरे खंड से जोड़ने के लिए पुल बनाने के बाद वे मज़दूर कहीं विलीन हो गए। कवि का ध्यान खुबसूरत पुल या और किसी पर नहीं, बल्कि उन श्रमरत मज़दूरों पर है।

आज स्थिति ऐसी हो गयी है कि अपने ही राष्ट्र के विभिन्न प्रांतों में हम बाहरी बन जाते हैं। अपनी ही मिट्टी के प्रति आत्मीयता रखनेवाली जनता की आकुलता को कवि ‘स्वगत’ नामक कविता में व्यक्त करते हैं। ‘ऐसा क्यों हो रहा है’ कविता में कवि आज के संवेदनशून्य मानव का चित्रण करते हैं। कवि कहते हैं कि हज़ारों वर्ष लेकर पेड़ पत्थर बन जाते हैं, लेकिन आजकल आदमी देखते-देखते पत्थर बन रहा है। वे इतना संवेदन शून्य बन गये हैं कि अपने चारों ओर के अन्याय एवं अक्रमों को देखकर भी उनका दिल पिघल नहीं रहा है। उनके विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए भी तैयार नहीं है। अपने चारों ओर की घटनाओं को अनदेखा करके चुपचाप खड़े रहनेवाले आधुनिक संवेदनहीन कवि यह प्रश्न करते हैं कि ऐसा क्यों हो रहा है? कवि पूछते हैं -

“सामने सड़क पर एक औरत की इज्जत जा रही है
और लोग अपने-अपने ओटों पर खड़े हैं चुपचाप
ऐसा क्यों हो रहा है
बगल में एक आदमी का खून हो रहा है

और लोग अपने-अपने दरवाजे बंद कर सुन रहे हैं चुपचाप
ऐसा क्यों हो रहा है।”⁹

‘इक्कीसवीं शताब्दी की ओर’ नामक कविता के द्वारा वे नव उपनिवेशवादी ताकत की ओर सूचना देते हैं। अपने ही घर में किरायेदार होकर जीने के लिए विवश जनता की बेगानेपन को कवि वाणी देते हैं। नीलाम पर चढ़े हुए देश की स्थिति पर कवि आशंकित हैं। पूरे देश को निगलने के लिए आनेवाले नव उपनिवेशी ताकत की ओर संकेत करते हुए कवि कहते हैं-

“आ रहे है डाक बोलने अमरीकी फ्रांसीसी
इतालवी अंग्रेज़ व्यापारी
घर का फूटा हुआ दिन भी वे लादेंगे जहाज पर
आ रही है कब की बिट्टी झाडती ईस्ट इंडिया कंपनी
डलहौज़ी के घोड़ों की टाप है रोड पर
टाप कनपट्टी पर
और मेरा चेहरा फूटा हुआ डेला कम्प्यूटर का दाना
अपने ही घर में किरायेदार हम।”¹⁰

इस संग्रह की प्रत्येक कविता में चारों तरफ की भयावहता का अंकन है। साथ ही साथ वर्तमान व्यवस्था से निरंतर संघर्ष करके मानवीय यातनाओं से मुक्ति की रास्ता तलाशती है।

४.३.३. नये इलाके में

१९९६ में प्रकाशित ‘नये इलाके में’ अरुण कमल का तीसरा काव्य संग्रह है। ‘नये इलाके में’ १९९८ का साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित काव्य संग्रह है। ‘कविता का अर्थात्’ नामक पुस्तक में डॉ.परमानंद श्रीवास्तव इस संग्रह के संबंध में लिखते हैं -
“अरुण कमल ने ‘नये इलाके में’ प्रवेश कर सच्चे अर्थों में जीवन के आवरण की नहीं ‘अस्तर’ की कविताएँ लिखी हैं।”¹¹

इसमें ५५ कविताएँ संकलित हैं। नये इलाके में, यह वो समय, सबसे ऊँची छत पर, एक रात जब मैं सफर में था, हाट, सोये में चलना, सातवीं कक्षा के एक विद्यार्थी का शोध प्रबंध, बात, अन्त, शेष, काष्ठखंड की गाथा, स्थावर, निवृत्त, भय, लगभग, चेहरा, लौ, कर्णफूल, अभिसार, रात का ढाबा, एक मंदिर की गाथा, आपरेशन के बाद, अगहन, अकेले ताड़ की गाथा, वृत्तांत, रात, श्राद्ध का अन्न, कोना, हासिल, वाकया, लोककथा, जागरण, संयोग, सुख, चारदीवारी की गाथा, जैसे, असत्य के प्रयोग, घोषणा, संविधान का अंतिम संशोधन, चार दिन, दाना, डेला और पत्ता, नैतिक प्रश्न, अपवाद, ऐसे में, आत्मा का रोकड, शोक, श्रद्धांजली, शेली के प्रति, यही बचाना, हमारे युग का नाटक, जीवन का चौथाई, गृह प्रवेश, जितनी भी है दीप्ति, चरथ भिक्खवे चारिक आदि इस संग्रह में संकलित कविताएँ हैं।

इस संग्रह की कविताओं के केन्द्र में भी मनुष्य है। वर्तमान समय की चुनौतियों को इस संग्रह की कविताएँ वाणी देती हैं। संग्रह की अधिकांश कविताओं में भूमंडलीकरण से उत्पन्न अपसंस्कृति का अंकन है। 'पुराने' के प्रति उदास होकर 'नए' को पाने की लालसा की ओर कविता में संकेत किया है। 'नए इलाके में' शीर्षक के संबंध में कवि का मत कुछ इस प्रकार है - "ये कविताएँ अपने समय को पहचानने, परिभाषित करने तथा उस समय में मनुष्य के आंतरिक - बाह्य जीवन को देखने की कोशिश है। यह वो समय है जब सोवियत संघ ध्वस्त हो चुका है, भारत में सबसे तेज़ गति से परिवर्तन हो रहे हैं, पुराने मूल्य टूट चुके हैं, नये मूल्य प्रगट नहीं हैं, मनुष्य निरंतर छीजते हुए भी अपनी मनुष्यता बचाने के लिए संघर्षरत है, जहाँ आपके विश्वास, स्वप्न सब पर संदेह किया जा रहा है, जहाँ जीवन बने रहना भी कठिन हो रहा है और जहाँ आकर भारतीय जीवन और संस्कृति गंभीर संकट में पड़ जाती है। मैंने जो करना चाहा उसका सारांश कर पाना कठिन है। दूसरी बात यह कि हर कविता एक नये अनुभव की देन होती है और एक नये अनुभव की जननी भी।"^{१०}

भूमंडलीकृत दुनिया तो तेज़ी से बदल रही है। आर्थिक वैश्वीकरण तो देश की सभ्यता, संस्कृति, एवं जीवन तरीका ही नहीं बल्कि पूरे देश में नख शिखर परिवर्तन लाया है। यहाँ पुराना जो है वह सब कुछ घट रहा है और इसके बदले में रोज़ कुछ बन रहा है। एक ही दिन में पुरानी पड़ जानेवाली दुनिया के संबंध में 'नये इलाके में' शीर्षक कविता में कवि कहते हैं -

“अब यही है उपाय कि हर दरवाज़ा खटखटाओ और पूछो
क्या यही है वो घर?”^{११}

जीवन को अच्छी तरह से परखने एवं समझनेवाले कवि बाज़ारीकरण के दौर की ज़िंदगी को 'शेली के प्रति' शीर्षक कविता में ऐसा व्यक्त करते हैं कि आजकल जीवित रहना बहुत बड़ा भार है और युवा होना तो भीषण अभिशाप है। आतंक और आशंका से भरे वर्तमान युग की ज़िंदगी की भयावहता को कवि ने अपनी कविताओं के द्वारा दर्शाया है। वास्तव में इस संग्रह की कविताएँ भूमंडलीकरण के परिणाम स्वरूप तेज़ी से बदलती दुनिया की सामाजिक और आर्थिक पहलू का अंकन हैं। “अरुण कमल के काव्य विकास पर विचार करते हुए उनका तीसरा संग्रह - नए इलाके में बहुत निर्णायक साबित होता है। यही वह संग्रह है जो उनके तीस पैंतीस वर्षों में फैले काव्य-कर्म के दो भागों में बाँटा देता है। इसी संग्रह की कविताएँ अरुण जी की रचनाशीलता के नये इलाके का द्वार घोलती हैं। इसी संग्रह की कविताएँ पिछली कविताओं की सीमा को उजागर भी करती हैं।”^{१२}

४.३.४. पुतली में संसार

२००४ में प्रकाशित 'पुतली में संसार' अरुण कमल का चौथा काव्य संग्रह है। कवि की व्यापक जीवन दृष्टि का परिचायक हैं इस संग्रह की कविताएँ। साधारण जीवन की स्थितियों एवं अवस्थाओं से गुज़रकर कवि इस संग्रह की कविताओं के माध्यम से संपूर्ण भारतीय जीवन के दुःख एवं विषाद को वाणी देते हैं।

पुतली में संसार, पूँजी, आत्मकथा, आंतरिक, तडाग, तड़ग, वापस, उल्लंघन, सूचकांक, स्वप्न, ग्रहण, जिसने खून होते देखा, उधर के चोर, पक्ष का कारण, बैटकी, राजकीय सम्मान, बिछावन, मुठभेड़, शिविर, घर, कथा, दस बजे, मातृभूमि, अपनी पीढ़ी के लिए, उत्तर जीवन, दोस्त, साथ, ईख का रस, खीरा, आत्मकथ्य, हर आम और खास को, भीतर, एक घटना, उस रात, बच्चों के डॉक्टर की मौत पर, उस दिन, डोर, भीत, सींग, इस श्मशान पर, घर-बाहर (चीन और इंग्लैंड के यात्रा : प्रयोग पर आधारित कविता श्रृंखला), शाम, मेख, आतप, आश्विन, अनुभव, देह-गाथा, बारिश, रात की गाथा, वृथा, इच्छा, राख, भार, धमक आदि ५९ कवितायें इसमें संकलित हैं।

महाभारत के विख्यात प्रसंग को लेकर रची हुई 'पुतली में संसार' शीर्षक कविता से यह संग्रह शुरू होता है। इस कविता के मूल धनुर्धर अर्जुन द्वारा अपनी धनुर्विद्या दिखाने का प्रसंग है। अर्जुन की दृष्टि केवल मछली की पुतली में केन्द्रित होनेवाला था। लेकिन यहाँ कविता में अर्जुन मछली की पुतली के बजाय वहाँ उपस्थित सब कुछ देख रहा है। एक अर्थ में देखे तो कवि स्वयं अर्जुन बन गया है। उनकी दृष्टि में एकाग्रता के बजाय व्यापकता है। संपूर्ण समकालीन परिदृश्य को वे अपने आँखों से देख रहे हैं। निस्सहाय होकर कवि पूछते हैं-

“मुझे तो देखना था आँख का गोला

और मैं इतना अधिक सब कुछ क्यों देख रहा हूँ देव।”^{१३}

विभिन्न विषयों को लेकर लिखी गयी इस संग्रह की कविताओं में एक असुरक्षित समाज की भयावहता, विषाद, एवं उदासी का चित्रण है। अपने समय की भयावहता को व्यक्त करने के लिए 'कथा' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ काफी हैं। इस कविता में कवि लिखते हैं कि अब हमारे सामने ऐसा भी एक समय आया है कि यहाँ मरना जीने से अच्छा लग रहा है। आजकल यह एक बहुत बड़ी विडंबना है कि पूरे संसार में सिर्फ कब्रगाह ही सबसे सुरक्षित स्थान है। इस संग्रह की कविताओं में कवि एक ओर साधारण जनता के जीवन

की दशाओं एवं स्थितियों को व्यक्त करते हैं। वहीं दूसरी ओर देश के शासकों एवं राजनेताओं पर करारा व्यंग्य प्रहार करने को भी वे नहीं भूलते। इस संग्रह की कविताओं का मूलस्वर घटनाओं के भीतर से प्रकट होनेवाला जीवन यथार्थ है।

इस संग्रह में कवि जन्म से लेकर मृत्यु तक के हर पल को अभिव्यक्त करते हैं। पुतली में संसार को समाहित करनेवाले कवि संग्रह की अंतिम कविता 'धमक' में मृत्यु की सच्चाई को स्वीकारते हुए लिखते हैं-

“जीने के श्रम का अंतिम पसीना ललाट पर शायद
उतर जायेगी आखरी फिल्म पुतली पर से”^{१४}

इस संग्रह की कविताएँ निश्चय ही अरुण कमल की व्यापक दृष्टि से विभिन्न सामाजिक संदर्भों को पाठकों के सम्मुख उजागर करती हैं। कल्पना के मायावी जगत् को छोड़कर जीवन की सच्चाई को छूने में कविता सक्षम बन चुकी है।

४.३.५. मैं वो शंख महाशंख

२०१२ में प्रकाशित 'मैं वो शंख महाशंख' अरुण कमल का पाँचवाँ कविता संग्रह है। उनके अन्य काव्य संग्रहों की तरह इस संग्रह की कविताएँ भी आम आदमी के जीवन यथार्थ का अंकन हैं। २००५ से लेकर २०१० तक लिखी गयी ६४ कविताओं का संकलन है 'मैं वो शंख महाशंख'। इसमें संकलित कविताएँ हैं - जनगणना, निर्बल के गीत, सेवक, संबंध, किसी के लिए तीन कविताएँ, तलवे की छाप, वापस, पुरातन, संवत्, गया, मोतिहारी, दूसरा, आँगन (जब तुम किसी के करीब आते हो, दोस्ती, शाम को इंतज़ार, अनारकली, मैंने लाहौर में एक तोता देखा, बिदेस, मातृभूमि पर प्यार, जिसने लाहौर में एक तोता देखा, जिन्दा बाद), इच्छा थी, एक वृद्ध दंपती की गाथा, एक वृद्धा जो कुछ सोच निकल गई घर से, चाँपा, आवर्त, क्रिया, अन्त्येष्टि, बारात दरवाजे लगी, शोभयात्रा, एक भक्त का संवाद, पीछे से, थूक, वित्त मंत्री के साथ नाश्ते की मेज़ पर, जीभ की गाथा, पुराना सवाल, एक पुराना गान, कुछ परिभाषाएँ, एक स्वप्न, बस एक

निशान छूट रहा था, हार की जीत, जिसने झूठी गवाही दी, महाशक्ति, घर और घूर, खुली मुट्ठी, एक बिंब, रेल में बात, उधर के मुसाफिर, सरकार और भारत के लोग, संधि-पत्र, डर, आराम कुर्सी में, जब तुम, हवा में हाथ, परिवर्तन, चकल का मालिक, योग, नदी और नाला, युद्ध और शांति, सेवाग्राम से (प्रणाम, अहिंसा, संपत्ति की घोषणा के पहले, सत्याग्रही कौन) हिचक, रोटी को रोटी, एक कलावादी प्रस्ताव, अमरता की खोज, किसकी ओर से, एक बार, निजी एलबम से, शायर की कब्र, आलोचना परनिबंध अभागा, निगेटिव फोटो आदि।

यह एक ऐसा समय है यहाँ साधारण जनता के लिए स्थितियाँ प्रतिकूल हो गयी हैं। मेहनतकश आम आदमी उपेक्षित, अपमानित और प्रताडित होता जा रहा है। ऐसे निरुपाय, विवश, अकेला एवं निहत्थे साधारण आदमी ही इस संग्रह की कविताओं के केन्द्र में हैं।

इस संग्रह की पहली कविता 'जनगणना' मेहनतकश आम आदमी के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाती है। कवि हमसे यह बताते हैं कि शोषित, गरीब आदमी की गिनती सरकार के आँकड़ों में भी नहीं अर्थात् जो शंख महाशंख है वह गणना से बाहर है। कवि ऐसे लोगों के पक्ष में खड़े होकर कहते हैं-

“मैं वो हूँ जिसकी गिनती होने से रह गई
पूरी आबादी में जो एक कम होगा वो मैं हूँ
वो मैं हूँ मैं वो अंक वो शंख महाशंख।”⁹⁴

इस संग्रह की कई कविताएँ वर्तमान, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विसंगतियों का पर्दाफाश करती हैं। व्यवस्था इतनी खोखली बन गयी है कि पूरा देश गरीबी और बेरोज़गारी के चक्कर में फँसे रहने पर भी सत्ताधारी शासकवर्ग विलासिता पूर्ण जीवन बिताते हैं। जनता को धोखा देनेवाली ऐसी शासन प्रणाली पर वे अपनी कविताओं के माध्यम से तीव्र प्रहार करते हैं। “अरुण कमल की कविताएँ उन्हीं शंख

महाशंख लोगों, बाहर कर दिए गए, गणना से छूटे हुए गरीब, निर्बल किंतु स्वाभिमानी, संघर्षशील लोगों की कविताएँ हैं।”^{१६}

भूमंडलीकरण, बाज़ारीकरण और निजीकरण के इस दौर में ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है कि पूँजी से वंचित आम आदमी जीवन से बाहर धकेले जा रहे हैं। जनता अमीर और गरीब दो वर्गों में बँटी हुई है। तब कवि आम आदमी के जीवन से जुड़ा हुआ पुराना सवाल बार-बार पूछते हैं कि यह दुनिया ऐसी क्यों है?

उनके अन्य संग्रहों की तरह इस संग्रह की कविताएँ भी जनता के पक्ष में खड़े होकर शोषण, अन्याय, असमानता, बेबसी एवं लाचारी का अंकन करती हैं। निश्चय ही अरुण कमल के जनवादी चिंतन का परिचायक है 'मैं वो शंख महाशंख'।

४.३.६. योगफल

२०१९ में प्रकाशित 'योगफल' अरुण कमल का छठा कविता संग्रह है। इस संग्रह में ३९ कविताएँ संकलित हैं। इसमें संकलित कविताएँ ये हैं - योगफल, गुन गाऊँगा, जीने का नशा, जानूँ, खुदरा, तीन क्षण, मणि-कर्णिका, वास, शहर, दुर्दिन के मजे, घर भी उतनी ही दूर जितना कब्रिस्तान, कोई खून होगा इस रात, एक वृद्ध की रात, सत्तरवीं वर्षगाँठ पर, अभी तैयार नहीं, कबूल, अर्घ्य, अपने लिए, अंतिम युद्ध, चाह, कवि थे, उन कवियों की स्मृति में, स्थाई पता, अभिनंदन पत्र, अनुवादक की खोज में एक कविता, कामरेड पानसरे के लिए, प्रगतिशील लेखक संघ के ऐलबम से, घाट शिला, देश, सबसे ज़रूरी सवाल, सात दोस्त, माननीय के नाम संदेश, एक लोकप्रिय सरकार के सात दिन, मुश्किल, किस वतन के लोग, खाने की बात, शोक गीत, कविता-२०१३, प्रलय आदि।

इस संग्रह की कविताएँ एक नये आयाम की कविताएँ हैं। लेकिन हर कविता में मानवता को बनाये रखने का भरसक प्रयास है। किसी-न-किसी तरह से उभर आनेवाले आदमी ही कविता के केन्द्र में हैं। “यहाँ अरुण कमल की कविता के प्राय सभी पूर्व

परिचय अवयव या स्वर उपस्थित हैं। लेकिन जो बाकी सबसे किंचित भिन्न और नवीन है वह है कविता का बहुमुखी होना। वह एक साथ कई दिशाओं में खुलती हैं। एक ही रश्मि अनेक पहल और कटाओं से आती-जाती है। पहली कविता 'योगफल' से लेकर अंतिम कविता 'प्रलय' तक इसे देखा जा सकता है जहाँ दोनों तरह के खदान हैं - धरती के ऊपर खुले में तथा भीतर गहरे पृथ्वी की नाभि तक। हर अनुभव को उसके उद्गम और फुनगियो तक टोहने का उद्यम।”^{१७}

'योगफल' नामक पहली कविता में कवि इस सच्चाई को पहचानते हैं कि प्रत्येक जीवन चौरासी लाख योनियों से उद्भूत समस्त जीव-जगत् का समाहार है। वे सारे पशु पक्षियों एवं वनस्पतियों में भटकना फिरना चाहनेवाले कवि अपने योगफल को लेकर चिंतित हैं। वे पूछते हैं-

“जब अन्न को भी भूख लगेगी पानी को प्यास
तब मेरा योगफल कितना होगा बाबा गोरखनाथ?”^{१८}

कविता इसकी ओर इशारा करती है कि अन्न और पानी ही संपूर्ण ब्रह्मांड का पालन करता है। फिर भी उसी अन्न और पानी को भी भूख और प्यास लगेगी तो संपूर्ण ब्रह्मांड को भूलकर सिर्फ अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए जीनेवाले आधुनिक मानव का योगफल क्या होगा? उसी प्रकार संग्रह की अंतिम कविता 'प्रलय' इस बात का साक्ष्य है कि हर योगफल अन्ततः अपूर्ण है। दैनंदिन जीवन के हर द्रन्द्रों को समावेश करती है 'प्रलय' कविता। समसामयिक जीवन यथार्थ का चित्रण इस संग्रह की कविताओं में देख पाते हैं। वर्तमान समय और समाज की भयावहता, विह्वलता, संवेदनहीनता, अविश्वसनीयता का यथार्थ चित्रण है इस संग्रह की कविताओं में।

विधि शर्मा के अनुसार “अरुण कमल अपने परिवेश की वस्तुओं को गहराई से पहचानते हैं। उन्होंने अपने परिवेश के अनुभवों को बहुत प्रामाणिकता के साथ अपनी

कविताओं में अभिव्यक्त किया है। अपनी मिट्टी और अपने परिवेश से जुड़कर कविता का सृजन किया है। उनकी कविताएँ अपने परिवेश के संपूर्ण बिंब को उभारती चलती हैं। अपने समय की एक सही तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविताओं में हमारा चिर-परिचित भरा-पूरा परिवेश एकदम सीधे यथार्थवादी ढंग से सहजता के साथ चित्रित दिखाई देता है।”³⁸

लगभग पिछले बीस वर्ष के बीच में लिखी गई कविताएँ इसमें संकलित हैं। इसलिए ही बीस साल के अंतर्गत देश-दुनिया की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तन के बेहद बारीकी नज़रिए से कविता में अंकन किया है। अतः आम आदमी के द्वन्द्वों एवं विरुद्धताओं को रखकर लिखी हुई ‘योगफल’ की कविताएँ अत्यंत मार्मिक हैं।

४.४. मानवीय संवेदना के संदर्भ में

अरुण कमल की कविताओं के केन्द्र में वह आम आदमी है, जो जीवनभर कठिन मेहनत करने के बाद भी बुनियादी सुविधाओं से वंचित होकर जीने के लिए विवश है। एक संवेदनशील कवि ही मामूली आदमी के जीवन, उसके संघर्ष एवं अंतर्द्वन्द्वों को अच्छी तरह से पहचानते हैं। अपनी मनुष्यधर्मी चेतना के कारण कवि मामूली आदमी के जीवन संघर्षों को आत्मसात करके जनता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को अभिव्यक्त करते हैं। उनकी कवितायें ‘स्व’ और ‘पर’ जीवनानुभूतियों का योग है। इसलिए ही उनकी कविताओं की भावभूमि अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। चाहे उनकी ‘जाना है’ कविता की पंक्तियों की भाँति धरती-आकाश तक फैले संबंध।

अपने इंद्रियानुभवों से जीवन के अति सूक्ष्म पक्षों को उन्होंने महसूस किया है अर्थात् मामूली जनता के जीवनानुभवों से गुज़रे हैं। इसलिए ही उनकी कविताएँ जीवन के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करती हैं। मानवीय संवेदना पर बल देनेवाले, सामाजिक प्रतिबद्धता को जीवनधर्म समझनेवाले कवि की कलम से ही ऐसी वाणी निकलती है - ‘सारा लोहा उन लोगों का अपनी केवलधार’।

उनकी कविता में अभिव्यक्त समाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विद्रूपताएँ, व्यवस्था के प्रति आक्रोश, प्रकृति और मनुष्य के बीच रागात्मक संबंध, जनसाधारण के जीवन संघर्ष आदि संवेदनशील कवि के निजी जीवनानुभवों के सबूत हैं। अरुण कमल की कविता में मानवीय संवेदना को हम निम्न बिंदुओं के माध्यम से परख सकते हैं।

४.४.१. यथार्थ की अन्विति

मानवीय मूल्यों पर इतना अधिक बल देनेवाले कवि होने के कारण अरुण कमल ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक युगीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण अपनी कविताओं में किया है। साधारण जनता के जीवन और संघर्ष को वे वाणी देते हैं। समाज के शोषित, पीड़ित, उत्पीड़ित मेहनतकश वर्ग की अभावग्रस्त जिंदगी का चित्रण उनकी कविताओं में देखने को मिलता है। कवि भली भाँति जानते हैं कि प्रचलित व्यवस्था ही गरीबी, भूखमरी, अभाव एवं अमानवता आदि को बढ़ावा देती है। धनिक और दरिद्र के बीच की दूरी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह पूँजीवादी व्यवस्था की देन है।

उनकी कविताएँ सामाजिक जीवन के अनेकानेक संदर्भों से जुड़ी हुई हैं। सामाजिक जीवन से जुड़े रहने के कारण व्यवस्था के प्रति आक्रोश भी उनकी कविताओं में दिखलाई पड़ता है। उनकी कविताओं से हमें यह मालूम होता है कि वे समझते हैं अपना दायित्व समाज से है। इसलिए वे हमेशा समाज के भविष्य की चिंता में हैं। कवि की राय में इस मौजूदा दौर के सबसे बड़े और महत्वपूर्ण सवाल हरेक व्यक्ति के अस्तित्व को लेकर है। वे कहते हैं - “अभी जो रोटी मैं तोड़ रहा हूँ कल मेरे हाथ से छिन सकती है। आज रात मैं जिस कमरे में सो रहा हूँ कल मुझसे छिन सकता है। हज़ारों किसानों की मौन, लाखों लोगों का बेघर-बार होना, करोड़ों नौजवानों की बेकारी-ये सब ज़रूरी सवाल हैं। कल आपके घर के पास मल्टिप्लेक्स खुलेगा और सैकड़ों ठेलेवाले, ख्रॉमचेवाले, फेरीवाले बर्बाद हो जाएँगे। जब तक आपके पास साधारण जीवन के भी साधन नहीं तब तक आप पूर्ण मनुष्य की तरह भावों-भावनाओं का भी अनुभव नहीं कर सकते। जहाँ सारी शक्ति जीवन जीने में ही नष्ट हो जाये

वहाँ भावों की बारीकी और जटिलता भी मुश्किल है। इसलिए आज का सबसे ज़रूरी सवाल है करोड़ों लोगों को जीवन जीने का वाजिब साधन मुहैया करना।”^{२०}

कवि यह भली-भाँति जानते हैं कि इस पूँजीवादी दौर में सबसे ज्यादा खतरा गरीबों के अस्तित्व पर पड़े हैं। कवि इस बात को लेकर बहुत चिंतित हैं कि यह दुनिया सिर्फ अमीरों के लिए है। गरीब और अभागों के हाथ से सब कुछ छिन सकते हैं। कवि की राय में जब से यह दुनिया बनी तब से गरीब और अभागे बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं। इसलिए कवि पुराना सवाल बार-बार पूछने के लिए विवश बन चुके हैं कि “यह दुनिया ऐसी क्यों है ?”^{२३} एक - एक कर उजड़े गए घर एवं गाँव को देखकर कवि चिंतित हैं । ‘पुराना सवाल’ नामक कविता में वे लिखते हैं।

“पहले खेत बिके
फिर घर फिर जेवर
फिर बर्तन
और वो सब किया जो गरीब और अभागे
तब से करते आ रहे है जब से यह दुनिया बनी
इस तरह एक-एक कर घर उजड़े गाँव उजड़े
और नगर महानगर बने
पर कोई नहीं बोलता ऐसा हुआ क्यों
अब कोई नहीं पूछता यह दुनिया ऐसी क्यों है
वेबस कगालों और बर्बर अमीरों में बँटी हुई।”^{२२}

रोटी की समस्या आज भी देश की एक ज्वलंत समस्या है। अन्न के अभाव के कारण देश में कई मौतें हो रही हैं। भूख से तड़पनेवाले लोगों की दयनीय दशा पर कवि चिंतित हैं। ‘असंवैधानिक मौत’ कविता में भूख से छटपटाते आदमी की करुण दशा का चित्रण कवि यों करते हैं।

“वह आदमी
बीच सड़क पर

औंधे मूंह पडा था
 और गुबडियों में
 अँटके जल को
 अपनी रुखडी सफेद जीभ से
 चाट रहा था।”^{२३}

भूख, गरीबी एवं दरिद्रता में जीनेवाले लोगों के बच्चों की स्थिति भी शोचनीय है। पढ़ने एवं खेलने कूदने की उम्र में वे काम करने के लिए विवश बन गए हैं। अपनी अभावभरी जिंदगी के कारण वे कठिन से कठिन काम करने के लिए मज़बूर बन गए हैं। इस प्रकार अपने बचपन से वंचित होकर होटल में काम करनेवाले लड़के के प्रति कवि हमदर्दी प्रकट करते हैं। ग्राहकों को खाना परोसनेवाला वह लड़का अपनी भूख के कारण परोसी हुई थाली को देखकर किवाड के पीछे खड़े होकर रोने का यथार्थ कवि होटल कविता में यों लिखते हैं-

“जैसे ही कौर उठाया
 हाथ रुक गया।
 सामने किवाडे से लगकर
 रो रहा था वह लड़का
 जिसने मेरे सामने
 रखी थी थाली।”^{२४}

यह एक बहुत बड़ी विडंबना है कि जहाँ जनता भूख और गरीबी में तड़प रहे हैं वहाँ गोदामों और मंडियों में अन्न सड़ रहा है। अन्न की लड़ाई लड़नेवाली आम जनता की चिंता में कवि ‘कविता २०१३’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“जो खुद उपवास पर है वह दूसरों को अन्न क्या देगा
 और यह सारी लड़ाई अन्न की लड़ाई थी
 यह लड़ाई थी धान के खेतों और वालियों की लड़ाई

भरे थे अन्न से कोठार गोदान और मण्डियाँ
और भूखे थे जन”^{२५}

कवि अरुण कमल समय के यथार्थ को अच्छी तरह पहचानते हैं। मज़दूर या श्रमिक इस दुनिया का निर्माता है। फिर भी व्यवस्था द्वारा वे उपेक्षित हैं। कवि इन मज़दूर वर्ग की जीवन स्थितियों पर अपनी गहन दृष्टि डालते हैं। पृथ्वी के एक खंड को दूसरे खंड से जोड़नेवाले मज़दूरों की उपेक्षा तथा अभाव भरी ज़िंदगी का यथार्थ चित्रण ‘महात्मागाँधी सेतु और मज़दूर’ शीर्षक कविता में अरुण कमल ने किया है। उचित व्यवस्था के अभाव के कारण गंगा के किनारे बसनेवाले ये मज़दूर अचानक एक रात गंगा का ग्रास बन जाते हैं। तब कवि लिखते हैं-

“उन मज़दूरों का कहीं कोई जिक्र नहीं आज
जो दुनिया के सबसे बड़े पुल को बनाते हुए गंगा का ग्रास बने
पृथ्वी के एक खंड को दूसरे खंड से जोड़ते विलीन हुए
कितने ही घरों के पुल टूटे
इस पुल को बनाते हुए।”^{२६}

इस प्रकार दुनिया के सबसे बड़े पुल को बनानेवाले मज़दूर गंगा की छाती में विलीन हो जाते हैं। काम की तलाश में कहीं से आये मज़दूर एक रोज़ अचानक लुप्त हो जाते हैं। सरकार को पता नहीं ये लोग कहाँ से आए हैं? इसलिए ही इनकी मौत की खबर न मिलने के कारण घरवाले उनके इंतज़ार कर रहे हैं। उपेक्षा की ज़िन्दगी जीनेवाले नव निर्माण कर्ता मज़दूरों के जीवन का यथार्थ चित्रण कवि ने किया है। देश के भविष्य बनाने वाले शिक्षक वर्ग की स्थिति इस देश में कितनी दयनीय हो चुकी है इसका यथार्थ चित्रण ‘मुक्ति’ कविता में मिलता है। कविता में एक मध्यवर्गीय मास्टर की त्रासदपूर्ण जीवन का चित्रण है।

एक रिटायर्ड स्कूल मास्टर अपने जीवन भर इस-उसके बेटे-बेटियों को पढ़ाने में व्यस्त रहते हैं। वे सुबह-शाम इधर उधर घूमकर दूसरे बच्चों को पढ़ाते हैं। जीवन के एक

छोर को दूसरे छोर से जोड़ने की विवशता के कारण उसके अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए उनके पास समय नहीं था। जब मास्टर को यह मालूम होता है कि अपना बेटा कुछ भी नहीं जानता तो वह उस पर हाथ उठाता है। लेकिन अगले क्षण में वह दुःखी बन जाता है और बेटे की इस अवस्था के लिए वे स्वयं अपने को दोषी ठहराता है। क्योंकि दूसरे बच्चों को तो वह लगातार ज्ञान देते रहे लेकिन वे अपने लड़के को न पढ़ा सके। 'मुक्ति' शीर्षक कविता में एक रिटायर्ड स्कूल मास्टर के जीवन यथार्थ का अंकन करते हुए अरुण कमल लिखते हैं-

“अभी भी ज़िंदगी ढूँढती है धुरी
अभी भी ज़िंदगी ढूँढती है मुक्ति
कहाँ अवकाश, कहाँ समाप्ति
अभी ही तो शुरु हुई ज़िन्दगी
अभी ही तो चरखे में डाली है पूनी।”^{२७}

कवि ने अपनी कविताओं में भारत के नवयुवकों का वास्तविक चित्र अंकित किया है। अभाव में जीनेवाले देश की युवा पीढ़ी का भविष्य अंधकारमय है। अपनी 'वृद्धि' नामक कविता में कवि यह व्यक्त करते हैं कि गरीबी एवं अभाव के कारण देश की युवा पीढ़ी कमज़ोर बन गयी है। समय के साथ-साथ उनकी उम्र तो बढ़ती है लेकिन देह तो सूखता जा रहा है। कविता में अपने जवान लड़के की देह को हाथों से टोहनेवाले एक अंधे बूढ़े के माध्यम से देश के प्रत्येक युवाओं को लक्ष्य करके कवि पूछते हैं-

“तुम जवान हो गये हो बहुत
लेकिन तुम्हारे गाल भरे तो नहीं हैं
तुम्हारी आँखें धँसी क्यों हैं
चेहरा इतना ठंडा क्यों हैं?”^{२८}

देश के उज्ज्वल भविष्य का भार जिन युवा पीढ़ी के कंधों पर है वे गरीबी, दरिद्रता एवं अभाव के कारण क्षीणकाय बन गये हैं। इन स्थितियों का अत्यधिक संवेदनात्मक चित्रण कविता में देखने को मिलता है।

कवि यह भली भाँति जानते हैं कि देश में लगातार गरीबी बढ़ने का कारण यहाँ की पूँजीवादी व्यवस्था ही है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में सिर्फ धन की महिमा है। लेकिन मनुष्यता के लिए कोई महत्व नहीं है। अरुण कमल के शब्दों में “देश में लगातार गरीबी और गैर-बराबरी बढ़ रही है। एक तरफ बर्बर प्राचुर्य है तो दूसरी तरफ भर-पेट भोजन भी दुर्लभ। ऐसा क्यों है? ऐसे में न तो आज़ादी संभव है न जनतंत्र। आज हमारे सामने आज़ादी को बचाने का भी सवाल है जनतंत्र को बचाने का सवाल। पूँजीवाद आज बहुत मजबूत है। इससे टकराना आसान नहीं।”^{२९}

पूँजीवादी व्यवस्था धनी को और अधिक धनवान बनाती है। साथ ही साथ निर्धनों का शोषण भी कर रही है। देश में होनेवाले सारे विकास का लाभ सिर्फ धनी लोगों पर केन्द्रित है। असमानता की यह अर्थव्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था की देन है।

उनकी ‘इक्कीसवीं शताब्दी की ओर’ नामक कविता में वे भारत की नयी अर्थव्यवस्था एवं उदारवादी नीति के कारण भविष्य में होनेवाली भयावह स्थिति का यथार्थ अंकन करते हैं। कविता तो इक्कीसवीं शताब्दी के आगमन के पहले लिख चुकी है। लेकिन कवि का भय सच्चाई में बदल रहने का दृश्य हम देख पाते हैं। कवि कहते हैं-

“अपने ही घर में किरायेदार हम
जा रहे हैं इक्कीसवीं शताब्दी की ओर भूखे नंगे
जलन्धर सूरत अलीगढ़ भापाल हैदराबाद होते
गड्डों में जमा आदमी के खूत से हाथ मूँह धोत
शरणार्थी भविष्य के।”^{३०}

आर्थिक उदारीकरण की नीति असल में भारत में विकास नहीं ला पायी। आज भी देश की अधिसंख्य जनता अपनी मौलिक आवश्यकताओं अर्थात् रोटी, कपडा और मकान को न पूरा करके गरीबी रेखा के नीचे हैं। कवि यह भली-भाँति जानते हैं कि मानव को सुख और चैन मिलने के लिए दो रोटी और एक घर की ज़रूरत है। लेकिन आज वह भी

प्राप्त करना दुर्लभ बन गया है। अभाव ग्रस्त समाज की दर्दनाक एवं भयावहता को कवि 'आत्मकथ्य' नामक कविता में यों व्यक्त करते हैं-

“दुनिया में इतना दुख है इतना ज्वर
सुख के लिए चाहिए बस दो रोटी और एक घर
और वही दिन-व-दिन मुश्किल पड रहा है।”²⁹

सामाजिक विसंगतियों का यथार्थ चित्रण उनकी कई कविताओं में देखने को मिलता है। जहाँ जनता बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित रहती है वहाँ देश के राजनेता, शासक वर्ग एवं पूँजीपति वर्ग किस प्रकार का सुखी जीवन बिता रहे हैं इसका सही चित्रण 'बिछावन' नामक कविता में देखने को मिलता है। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

“माफ करना बेअदबी
मैं तो बस यूँ ही देख रहा था कि
कैसे रहते थे साहेब
कैसा था साहेब का बिछावन
तुमसे कहीं ज्यादा कीमती, कहीं
ज्यादा गुदगुद है
अपने मंत्री जी का बेड
अब हम गुलाम नहीं।”³²

अंग्रेज़ी शासकों से ज़्यादा विलासिता पूर्ण जीवन जीनेवाले स्वतंत्र भारत के शासक वर्गों का सुविधा भोगी चरित्र का उद्घाटन है कविता। यह तो देश की विडंबना है कि एक ओर दो जून की रोटी के लिए तरसनेवाले शोषित पीड़ितों का वर्ग है, तो दूसरी ओर ऐशो आराम से और मनमानेपन से जीनेवाले शासकों का वर्ग है।

अरुण कमल की कविताएँ हमेशा आम जनता के पक्ष में रही हैं। जिनकी गिनती सरकार के आकड़ों में नहीं होती वही शोषित, उपेक्षित जनसामान्य के प्रतिनिधि के रूप में कवि स्वयं अपने को मानते हैं। उन शोषित जनता की आवाज़ बनने के लिए चाहनेवाले कवि 'जनगणना' नामक कविता में लिखते हैं-

“मैं वो हूँ जिसकी गिनती होने से रह गई
 पूरी आवादी में जो एक कम होगा वो मैं हूँ
 जिसके वास्ते किसी अदहन में डाला नहीं जाएगा चावल
 जिसके नाम की रोटी नहीं पकेगी वो मैं हूँ।
 जब भी उनकी गिनती गलत होगी
 जब भी वे हिसाब मिला नहीं पाएँगे
 मैं हँसूँगा आँकड़ों के पीछे से तालियाँ देता
 वो मैं हूँ मैं वो अंक वो शंख महाशंख।”^{२३}

‘सबसे ज़रूरी सवाल’ नामक कविता में कवि देश के यथार्थ का चित्रण करते हैं। कवि की राय में जिस देश में बच्चे, माँएँ और गौवें भूखे हो उस देश को धरती पर रहने का हक नहीं। अरुण कमल ने सही अर्थ में आम जनता के जीवन और संघर्ष का यथार्थ चित्रण अपनी कविताओं में किया है। उनकी दृष्टि इतना व्यापक है कि सामाजिक जीवन यथार्थ को वाणी देकर पाठक वर्ग को भी संवेदनशील बनाते हैं।

४.४.२. मेहनतकश वर्ग की अंतर्वेदना

अरुण कमल की कविताएँ जीवन के प्रति गहरे जुड़ाव का इजहार हैं। मानवीय श्रम की प्रतिष्ठा का काव्यात्मक अभिव्यक्ति देनेवाले कवि श्रमशील वर्ग के प्रति अपनी संवेदना और सहानुभूति प्रकट करते हैं। उन्होंने अपनी कविता में मेहनतकश ज़िंदगी का यथार्थ उजागर किया है। समाज में मेहनत-मज़दूरी करनेवाले मनुष्य जीवन के कई दृश्य अपनी पूरी शोषित व्यथा कथा के साथ हमारे दिलों दिमाग पर छा जाते हैं। अरुण कमल की जीवन दृष्टि व्यापक है। इसलिए उनकी कविता में स्कूल मास्टर, कुबड़ी बुढिया, दरजिन, निहाल सिंह और कल्याणी और होटलों में काम करनेवाले बच्चे अपनी यातनापूर्ण ज़िंदगी का अनावृत आख्यान पेश करते हैं। “अरुण कमल के सभी काव्य संग्रहों में वर्तमान शोषण मूलक व्यवस्था के खिल्लाफ, आक्रोश, नफरत और उसे उलटकर एक नयी मानवीय व्यवस्था का निर्माण करने की आकुलता दृष्टिगत होती है। अपने समय

के लोगों के साथ चलते हुए, कवि ने जो कुछ भी अनुभव किया, मनुष्य पर आये दबाव को गहरे में भोगा उसे यहाँ वाणी मिली है।”^{३४}

हमारी अर्थव्यवस्था इतनी बिगड गई है कि मेहनतकश वर्ग रोजी-रोटी की तलाश में इधर-उधर भटकने के लिए मज़दूर है। अपनी ‘यात्रा’ नामक कविता में पंजाब का मज़दूर निहाल सिंह अपना घर, परिवार और गाँव को छोड़कर कलकत्ते के कारखाने में काम करने के लिए जा रहे हैं। जीविका के लिए अपने गाँव से बिछुड़कर कहीं दूर ज़िंदगी गुजारने के लिए विवश मज़दूरों के प्रति कवि अपनी संवेदना प्रकट करते हैं-

“कौन नहीं चाहता जहाँ जिस ज़मीन उगे
मिट्टी बन जाय वहीं
पर दोमट नहं, तपता हुआ रेत ही है घर तरबूज का
जहाँ निभे का ज़िंदगी वही घर वही गाँव।”^{३५}

आगे कवि कहते हैं कि गाडी का डिब्बा पंजाबी मज़दूरों से भरा हुआ है। कलकत्ते के कारखानों में काम करने के लिए पंजाबी मर्द ही नहीं, लड़कियाँ, औरतें, बच्चे आदि परिवार के सब लोग जा रहे हैं। इन्हें देखने पर कवि को ऐसा लगता है कि इनकी आँखों में काम से बेदखल होने का डर है। मज़दूरों की इस विवशता का चित्रण ‘यात्रा’ कविता में उन्होंने किया है। कविता में मज़दूर लोग इस बात को लेकर परेशान हैं कि कौन सी मिलें कब बंद हो जाएँगी?

‘ओह बेचारी कुबडी बुढिया’, ‘कल्याणी’, ‘दरजिन’, ‘डेली पैसेंजर’ आदि कविताओं में आज के दौर में स्त्रियों तथा युवतियों की मेहनतकश ज़िंदगी का यथार्थ चित्रण किया है। ‘ओह बेचारी कुबडी बुढिया’ कविता की कुबडी बुढिया अमीर मालिक के घर में कठिन मेहनत करती है। विश्राम करने की उम्र में वह कुबडी बुढिया अपने परिवार के लिए सुबह से लेकर रात तक अपने और मालिक के घर में कई काम करने के लिए विवश है। अपने

और मालिक के घर के काम करते-करते अचानक एक दिन उनच्छू साँस रुक गया। कवि अत्यंत मार्मिक ढंग से कुबड़ी बुढिया की दयनीय अवस्था का चित्रण करते हैं-

“दिन भर कपडा फींचा, घर को धोया
मालिक के घर गयी वर्तन भी माँजा
मलकीनी को तेल लगाया
मालिक ने डाँटा भी शायद
घर आयी फिर चुल्हा जोडा
और पतोहू से भी झगडी
बेटे से कहा सुनी की
और अचानक बैठे-बैठे साँस रुक गयी।”^{३६}

‘कल्याणी’ नामक कविता में अपने बचपन से लेकर एक घर में काम करनेवाली कल्याणी के जीवन संघर्षों का चित्रण किया है। अपनी इच्छाओं को मन में ही रखकर दबने के लिए विवश युवती कल्याणी उस घर के हर सदस्यों के हँसी मज़ाक का पात्र बन जाती है। घर के बहुएँ कल्याणी पर ऐसा मज़ाक उटाती हैं कि जब भी उस घर में किसी बहू का कोई भाई आता है तो उन सबके साथ कल्याणी का ब्याह तय करता है। अपनी विवशतावश कल्याणी घरवालों के दिल बहलाने का खिलौना होती है। कल्याणी की मेहनतकश जिंदगी के यथार्थ को निम्नलिखित पंक्तियों से अभिव्यक्त करते हैं-

“टप टप देह से चुता है पानी
कल्याणी बैठी है चूलहे के पास
भीगी लकडी से उठ रहा है गाढा धुआँ
फिर भी इतनी शांत और स्थिर।”^{३७}

अपने बच्चों की भूख मिटाने के लिए सिलाई का काम करनेवाली औरत की व्यथा-कथा का अंकन है ‘दरजिन’ शीर्षक कविता। पति से दो साल से जुदा हुई यह औरत अपने

जीवन निर्वाह के लिए कठिन प्रयास करती है। उसकी विवशता का लाभ उठाकर लोग आधे से भी कम दामों से कपड़े सिलवाते हैं। कठिन मेहनत करने के बाद भी श्रमगत शोषण का शिकार औरत की अभिव्यक्ति करते हुए कवि लिखते हैं-

“सिलाई? बाहर से आधे पर तो
सीती हूँ बीबी जी, छुपाना क्या है
यह नहीं कि उनसे कम आपसे जादे
जी? इससे कम? गुजारा नहीं होगा बीबी जी
सोचिए कितना काम है -
टाँकते - टाँकते ऊँगली फट जाएगी।”^{३८}

मेहनतकश जनता के हक के बारे में कवि चिंतित हैं। कठिन मेहनत करके अपने हाथों से बनायी गयी चीज़ों पर श्रमिकों का, कोई अधिकार नहीं है। सर्दी हो या धूप, दिन हो या रात खेतों में कठिन काम करके फसल उगानेवाले श्रमिकों को उस फसल पर कोई अधिकार नहीं है। खून पसीना बहाकर काम करनेवाला एक है तो लाभ उठानेवाला दूसरा। अपने हक के बारे में सोच-विचार करनेवाले एक श्रमिक की व्यथा को वाणी देते हुए ‘हक’ शीर्षक कविता में अरुण कमल लिखते हैं-

“मेरे घर से सटा सरसों का खेत यह मेरा नहीं
लेकिन रोज़ रात मेरी कोठरी में
आती है सरसों के फूलों की कौंधती गंध
एक ही वार में काटती मुझे
क्या थोडा भी हक नहीं मेरा इस खेत पर?”^{३९}

देश के नवनिर्माण के लिए खून पसीना बहानेवाले मज़दूरों की दर्दनाक स्थिति को उजागर करनेवाली कविता है ‘महात्मागाँधी सेतु और मज़दूर’। गंगा नदी में पुल बनाने के लिए कहीं दूर से आये हुए मज़दूर एक रात गंगा का घास बन जाने हैं। अपने परिवार की उदर पूर्ति के लिए वे अपने घर बार छोड़कर आते हैं। सरकारी योजना की पूर्ति के

लिए आए हुए इन मज़दूरों को रहने के लिए उचित बंदोबस्त सरकार द्वारा न होता है। अचानक एक दिन पृथ्वी के एक खंड को दूसरे खंड से जोड़नेवाले ये मज़दूर गंगा में विलीन हो जाते हैं तो एकाएक कई घर अनाथ बन जाते हैं। विडंबना की बात यह है कि उन मज़दूरों का कहीं कोई जिक्र नहीं है। उनकी मौत की खबर भी घरवालों को न मिलती है। इसलिए उनके माँ- बाप, पत्नी एवं बच्चे अब भी उनके इंतज़ार कर रहे हैं। इस दयनीय दर्दनाक स्थिति का जिक्र करते हुए 'महात्मागाँधी सेतु और मज़दूर' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“पत्थर डूबे तो आवाज़ होती है
आदमी इस दुनिया में बेआवाज़ डूब जाता है।”^{४०}

लोग अपने जीवन -निर्वाह के लिए तरह-तरह के काम करते हैं। कभी-कभी सबसे खतरनाक काम करने के लिए वे विवश बन जाते हैं। अपनी 'लगभग' शीर्षक कविता में बहुत ऊँचे ताड़ के पेड़ पर चढ़कर ताड़ का रस निकालनेवाले मज़दूर का चित्रण है। पेड़ के ऊपर रखे मिट्टी का कसोरा लेने के लिए वे नंगे पाँव ताड़ पर चढ़ते हैं। उनके पीठ पर बेंत के नीले छाप पड़े हैं। ताड़ के ऊपर चढ़नेवाले का काम जोखिम भरा हुआ काम है। क्योंकि चढ़ते वक्त कभी भी ताड़ के रस का छिटका आँख पर गिरे तो उसका हाथ छूट जाता है। इस खतरनाक स्थिति की ओर इशारा करते हुए 'लगभग' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“बहुत ऊँच बहुत ऊपर जा
छूटेगा मेरा हाथ।
बूँद भर रस से
भहरेगा देह का ढेला हठात्।”^{४१}

‘एक रात जब मैं सफर में था’ कविता बरसात की रात में जंगल में लकड़ी चुनने के लिए गये लकड़हारे की मौत का दयनीय चित्र खींचते हैं। अपने परिवार की भूख

मिताने के लिए बरसात की रात में काम के लिए निकले वह बेचारा लकड़हारा रेलगाड़ी द्वारा कट जाता है।

अपने राज्य में काम न होते हुए भी अन्य कोई जगहों में जाकर काम करने के लिए इंकार करनेवाले मेहनतकश आदमी का चित्रण है 'स्वगत' शीर्षक कविता में। अपने राज्य को छोड़कर जाने के लिए उन्हें भय होता है। क्योंकि अन्य जगहों में उन्हें कोई ठिकाना नहीं। साथ ही साथ उन्हें इस बात पर भय है कि अन्य राज्यों के लोग बाहरी कहकर मार देंगे। काम के लिए इधर-उधर भटकनेवाले मेहनतकश वर्ग कभी-कभी क्षेत्रवाद या प्रांतवाद का शिकार बन जाते हैं।

मेहनतकश वर्गों के हाथों से ही दुनिया की ज़रूरत पूरी होती है। वे खुद गंदी बस्तियों में रहकर हमारी सुख सुविधाओं के लिए चीजें गढ़ते हैं। गंदी बस्तियों की झोंपड़ियों में रहकर दूसरों के लिए बड़े-बड़े मकान बना देते हैं। स्वयं गंदगी को सहकर बुनियादी सुविधाओं से वंचित ये लोग दूसरों को सुख-सुविधायें प्रदान करने के लिए दिन-रात कठिन मेहनत करते रहते हैं। 'खुशबू रचते हैं हाथ' शीर्षक कविता में गंदी बस्तियों में रहकर खुशबूदार अगरबत्तियाँ बनाकर जीविका चलानेवालों का चित्रण है। कूड़े करकटों के ढेरों के बीच में, बदबूदार टोले के अंदर दूसरों के घर को महकाने के लिए वे अपने हाथों से खुशबू रचते हैं। उनकी दशा का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“यही इस गली में बनती हैं
मुल्क की मशहूर अगरबत्तियाँ
इन्हीं गन्दे मुहल्लों के गन्दे लोग
बनाते हैं केवडा गुलाब खस और रातरानी
अगर बत्तियाँ
दुनिया की सारी गन्दगी के बीच
दुनिया की सारी खुशबू
रचते रहते हैं हाथ

खुशबू रचते हैं हाथ
खुशबू रचते हैं हाथ।”^{४२}

ऐसी गंदी बस्तियों में रहने के कारण ये तरह-तरह की बीमारियों के शिकार हैं। जख्म से फटे हुए हाथों से ये लोग दिन-रात मेहनत करते हैं। लेकिन उनके श्रम का लाभ उन्हें न मिलता है। उनका पूरा जीवन गरीबी में जीने के लिए विवश है। कठिन मेहनत करने के बाद भी जीवन भर अभाव में जीने के लिए विवश मेहनतकश वर्गों के प्रति अरुण कमल सहानुभूति एवं लगाव रखते हैं। वे भली भाँति जानते हैं कि उन्हीं के हाथों से ही देश का निर्माण हो रहा है। खून-पसीना बहाकर वे मेहनत करते हैं। लेकिन जीवन में अपने लिए कुछ भी हासिल नहीं करते हैं। ‘डोर’ नामक कविता में इन लोगों की कठिन मेहनत के बारे में कवि लिखते हैं-

“जितना पानी नहीं कंठ में
उससे अधिक तो पसीना बहा
दसों नाखूनों में धँसी है मिट्टी
खून से छल छल ऊँगलियाँ।”^{४३}

कंठ में पानी न होना, दसों नाखूनों में मिट्टी धँसना, पसीना बहना, ऊँगलियाँ खून से छल छल होना आदि वाक्यांश कठिन मेहनत की ओर इशारा करते हैं। कभी-कभी कठिन मेहनत करने के बाद चाहने पर भी आदमी विश्राम नहीं कर सकते हैं। ‘फरमाइश’ नामक कविता के द्वारा कवि यह व्यक्त करते हैं। अमीरों की इच्छा के अनुसार निकले एक जुलूस में शहर की सबसे मशहूर बैंड पार्टी के सबसे प्यारे गवैये एक के बाद एक होकर दिल को काढ लेनेवाली आवाज़ में गाना गा रहे थे। वे अपने ही कंठ से दो आवाज़ों में गाना गा रहे हैं। बीच में थकावट से साँस थम जाता है और बैंडवालों के फूले गाल दब जाते हैं तो भी वे रुक नहीं सकते हैं। कवि कहते हैं जुलूस में बत्तियाँ ढोने के लिए आए हुए लोग भी अपने गर्दन घुमाने की चाह में थे। लगातार मेहनत करने के बाद भी ये लोग विश्राम नहीं कर पाते हैं। मेहनतकश लोगों के जीवन की वास्तविकता तो यह है।

कवि हमेशा निर्बल लोगों के पक्ष में हैं। सबसे कमज़ोर एवं असहाय लोगों के साथ देना वे चाहते हैं। उनकी कविता मेहनतकश लोगों की दुर्दशा देखकर पसीज उठती है। मेहनतकश वर्ग को अपने श्रम का उचित मूल्य न मिलता है। अर्थाभाव एवं शोषण के कारण श्रमिक हो या मज़दूर त्रस्त हैं। कवि हमेशा अर्थाभाव से त्रस्त मेहनतकश वर्गों का साथ देना चाहते हैं। उन्हें सलाम करते हुए 'एक वृद्ध की रात' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं-

“मनेसर के मारुति मज़दूरों को सलाम
 बंगलुरु की दरजिनों को
 बिहार की आंगनबाडी सेविकाओं को सलाम
 महाराष्ट्र के किसानों को सलाम
 वो लड़की जो खड़ी है न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज के बाहर
 साँड के सामने निडर
 जिसने भी मुट्ठी तानी उसको सलाम
 वो अकेला जिसने मजमे में ताली नहीं बजायी
 जिसने अंतिम साँस में हत्यारे को गाली दी
 उसको सलाम।”^{४४}

इस संवेदनहीन शोषक व्यवस्था में उन लोगों के बारे में कोई नहीं सोचता है। देश-काल के परे सर्वहारा वर्ग के तमाम संघर्षों पर निगाह देनेवाले कवि उनके लिए स्वयं अपने को समर्पित करने के लिए तैयार हैं। कवि उनके हाथ थामकर खुद अपने पैरों को उन्हें देकर कर्मपथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा देते हैं। 'अर्पण' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं -

“एक ही तो हैं हमारा लक्ष्य
 एक ही तो हैं हमारी मुक्ति
 साथ -साथ मिलकर चलेंगे हम
 जहाँ गिरेगे तुम
 वहीं रहेंगे हम
 जहाँ झुकोगे तुम

वहीं उठेंगे हम
लाओ मुझे दो अपने हाथ
चलो, मेरे पाँवों से चलो।”^{४५}

४.४.३. आम आदमी का जीवन यथार्थ

अरुण कमल की कविता आम आदमी के जीवन का दस्तावेज़ है। उनकी कविता के मूल में भूख, गरीबी, बेरोज़गारी एवं अभाव से त्रस्त संघर्षरत आम आदमी हैं। इस देश की आम जनता की ज़िन्दगी के बारे में सोचनेवाले कवि की कविताओं में निरंतर संघर्ष से जूझनेवाली जनता के जीवन का जीता जागता चित्र देखने को मिलता है।

अरुण कमल मानवीय गरिमा पर बल देते हैं। मानवीय संवेदना को सर्वोपरी माननेवाले कवि की सोच में हमेशा हरेक मानव की उन्नति की कामना है। जो दूसरों के सुख-दुःख को बाँटना चाहते हैं वे ही सच्चा मनुष्य प्रेमी हैं। मानवता पर बल देनेवाले कवि ‘छोटी दुनिया’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“इतनी छोटी हो गई है दुनिया एक नक्शे भर
जब आप आराम से खाना खा रहे हैं
तो बिल्कुल पास में कोई भूख से दम तोड़ रहा है-
चैन नहीं है कभी, सुख नहीं है अकेले-अकेले
सबके साथ ही सुख है, सबके दुख में दुख।”^{४६}

स्वतंत्रता के पश्चात् इतने साल होते हुए भी आम आदमी अपनी बुनियादी ज़रूरतों से वंचित है। अर्थाभाव में जीनेवाली आमजनता भूख मिटाने के लिए निरंतर संघर्षरत है। ‘असंवैधानिक मौत’ शीर्षक कविता में भूख के कारण सड़क के बीच दम तोड़नेवाले आदमी का चित्रण है। सड़क के बीच औंधे मुँह पड़ा वह आदमी गुबडियों में अटके जल को अपनी रूखड़ी सफेद जीभ से चाटनेवाला दृश्य भूख की भयावहता को सामने लाता है। जब कोई सड़क पर ऐसा पड़े तो उसने शराब पिया है सोचकर अनदेखा करके लोग

चले जाते हैं। कवि को यह अजीब लगता है कि आदमी का पेट पिचक कर सूखा पत्ता भी बन सकता है। क्योंकि उन्होंने इसके पहले कभी भी किसी को भूख से मरते नहीं देखा था। भूख के कारण ज़मीन पर पड़े उस आदमी की आँखें, होंठ एवं नसें फट गई हैं। उनकी आँतडियाँ चार दिनों से खाली है। उसकी अंतिम साँस लेने की दयनीय दशा का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“तब तक मैं ने देखा
जमीन पर टिकी हथेलियों पर
बल देकर वह उचका
और आँखों को रबर की तरह खींचते हुए गर्दन ऊपर उठाई
सिर्फ एक आवाज़ हुई सूखे फल के पटने की
वह आदमी बच्चे की तरह ज़मीन पर पड गया था।”^{४७}

आज गाँवों का शहर के रूप में तब्दील होना स्वाभाविक बन गया है। बहुत तेज़ी से गाँव शहर बन जाते हैं। लेकिन उस नये नगर के केन्द्र में पूँजी काम आती है। अर्थाभाव से परेशान आम जनता को इस नए नगर में कोई स्थान नहीं। इसलिए कवि ‘वास’ नामक कविता में आम जनता को चेतावनी देते हुए लिखते हैं-

“जो उठ रहा है नया नगर वहाँ
वहाँ पहचानेगा कौन तुम्हें?
तुम घुस भी नहीं पाओगे उस दुर्ग में।”^{४८}

हमारे देश में आम जनता भूख एवं अभाव से तडप रही है। गरीबी इतनी बढ़ गयी है कि लोग अपने खून एवं शरीर के अंगों को बेचने के लिए विवश हो रहे हैं। ‘रात का ढाबा’ शीर्षक कविता में एक ढाबे में बैठनेवाले आदमी का चित्रण है जो अपने खून बेचने के लिए तैयार होकर आया है।

आम जनता तो कठिन मेहनत करने के बाद भी अभाव में जीने के लिए विवश है। मनुष्य की बुनियादी ज़रूरतों में एक है सिर ठिकाने के लिए एक जगह। ऐसे कई लोग

हैं जो अपने घर के बारे में इच्छाएँ रखते हैं, लेकिन मिलता नहीं। अपनी इच्छा के घर पाने में असफल व्यक्ति का चित्रण है 'इच्छा थी' शीर्षक कविता में। साधारण जनता की अभाव ग्रस्त जिंदगी का अंकन है 'हम यहीं रहता है' शीर्षक कविता में। कई गलियों नालियों के बीच छोटी सी कोठरी में परिवार के साथ रहनेवाले कई लोग हैं। उस कोठरी की स्थिति भी अति दयनीय है। ज़मीन से दीवार तक शीत से गीला हुआ एक-एक कोठरी में एक-एक परिवार एक दूसरे में गुँथा हुआ रहता है। ये लोग दिन रात कठिन मेहनत करते हैं। लेकिन रहने के लिए अच्छा घर उनके नसीब में नहीं। इस कविता में खुद के घर से वंचित आम जनता की विवशता का चित्रण है।

सडक के किनारे टंड में सोने के लिए विवश लोगों का चित्रण है 'अपनी केवल धार' संग्रह के 'एक रात की टंडक' शीर्षक कविता में। वर्षा, गर्मी एवं टंड को सहकर फूटपाथों के किनारे एवं दूकानों के आगे सोनेवाले कई लोग हमारे समाज में हैं। उन लोगों पर संवेदना प्रकट करते हुए कवि लिखते हैं-

“फुटपाथों के किनारे
दूकानों के आगे
तीखी हवा कोड़ रही है
काँपते शरीरों को
आवारा कुत्ते बिल्कुल गठरियों से
पडे हैं कौने दरवाँ में
हवा के पैर खुल गये हैं आज।”^{४९}

भूख एक शारीरिक अनुभूति है जो असह्य या दर्दनाक है। जलवायु परिवर्तन, महंगाई, गरीबी, बेरोज़गारी, आर्थिक अममानता आदि कई कारणों से भूख की समस्या बढ़ रही है। अरुण कमल ने 'आत्मकथ्य', 'वृद्धि', 'असंवैधानिक मौत', 'मातृभूमि' आदि कई कविताओं में भूख से तडपनेवाले आम आदमी को चित्रित किया है। देश तो विकास की बातें कह रहा है। लेकिन दिन ब दिन साधारण जनता के लिए मुश्किलें बढ़ती

रहती हैं। उन्हें बुनियादी ज़रूरतों को पाना भी मुश्किल बन गया है। इसकी सूचना देते हुए 'आत्मकथ्य' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“दुनिया में इतना दुःख है इतना ज्वर
सुख के लिए चाहिए बस दो रोटि और एक घर
और वही दिन-ब-दिन मुश्किल पड़ रहा है।”⁴⁰

आज की युवापीढी बेरोज़गारी की समस्या से जूझ रही है। काम के अभाव के कारण वे गरीबी की विवशता झेल रहे हैं। 'वृद्धि' शीर्षक कविता में एक अंधा बूढ़ा अपने जवान लड़के की देह ढो रहा है। सहसा हाथ किन्हीं चक्कों में फँसते हैं तो पिता लड़के से पूछते हैं-

“तुम जवान हो गये हो, बहुत
लेकिन तुम्हारे गाल भरे तो नहीं है
तुम्हारी आँखें धँसी क्यों हैं
चेहरा इतना ठंडा क्यों है?”⁴¹

देश का भविष्य तो युवापीढी के हाथों में है। लेकिन वे लोग अपनी गरीबी के कारण क्षीण काय बन गया है। 'मातृभूमि' शीर्षक कविता में कवि देश के विभिन्न राज्यों के गरीब बच्चों की स्थिति से हमें अवगत कराते हैं। उड़ीसा के कालाहंडी, आंध्रप्रदेश के बच्चे एवं पलामु, पट्टन नरोंदा पटिया के गरीब बच्चों के भूख मिटाने के लिए वे मातृभूमि से निवेदन करते हैं। देश की वर्तमान दुर्दशा की ओर इशारा करते हुए कवि लिखते हैं-

“कई दिनों से भूखा प्यासा तुम्हें ही तो ढूँढ रहा था चारों तरफ
आज जब भीख में मुट्ठी भर अनाज भी दुर्लभ है।”⁴²

आगे वे मातृभूमि से प्रार्थना करते हैं -

“ये बच्चे कालाहंडी के
ये आंध्र के किसानों के बच्चे ये पलामु के
पट्टन नरोंदा पटिया के

ये यतीम ये अनाथ ये बंधुआ
इनके माथे पर हाथ फेर दो माँ।”^{५३}

ज़िन्दगी भर सड़क के किनारे किसी पुल के नीचे रहनेवाले कई लोग आज भी हैं। घर की समस्या के साथ रोटी की समस्या भी उन्हें हर क्षण सताते रहते हैं। ‘दाना’ शीर्षक कविता में इसका अंकन करते हुए कवि लिखते हैं-

“जिसके लिए अंतिम आसरा है पुल के-
नीचे की अंधेरी खोली
जिसे हर बार हाथ अँचाते सोचना पड़ता है
अगले कौर का।”^{५४}

गरीबी एवं अभाव भरी ज़िन्दगी मनुष्य को अपराधी बना देते हैं। ‘उधर के चोर’ शीर्षक कविता में कवि यह व्यक्त करते हैं कि भूख एवं गरीबी मनुष्य को चोर बना देती है। कवि कहते हैं ये चोर अजीब हैं। उसी प्रकार उनकी लूट और डकैती भी अजीबो गरीब है। वे सात-बजते-बजते ट्रेन में चोरी करने के लिए चले जाते हैं। उस समय ट्रेन में सारे मुसाफिर बिना टिकट के यात्रा करनेवाले गरीबगुरबा मज़दूर होते हैं। ये चोर उन गरीब मुसाफिरों से झोला, अँगोछा, चुनौटी, खैनी की डिबिया आदि छीनकर, चलती गाड़ी से कूदकर बच जाते हैं। खेत में लगा चने का साग ख्रॉट डालनेवाला एवं चूड़ीहार की चूड़ियाँ लूट लेनेवाले चोरों का भी चित्रण है कविता में। चोर बनने के लिए विवश आदमी की निस्सहायता को व्यक्त करते हुए पूरे समाज में व्याप्त गरीबी का अंकन करते हुए ‘उधर के चोर’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“कहते हैं एक चोर सेंध मार घर में घुसा
इधर उधर टो-टा किया और जब कुछ न मिला
तब चुहानी में रक्खा बासी भात और साग रवा
थाल वहीं छोड़ भाग गया-
वो तो पकड़ा ही जाता यदि दबा न ली होती डकार।”^{५५}

गरीबी की भयावह स्थिति व्यक्त करते हुए कवि यह बताना चाहते हैं कि पूरे समाज में आम आदमी की स्थिति दर्दनाक है। वह चोर जिस घर में चोरी करने के लिए संध मारकर घुस जाता है वहाँ भासी भात और साग के अलावा और कुछ नहीं। लेकिन विडंबना की बात यह है कि सरकारी आँकड़ों में इन लोगों की गणना भी नहीं। इस पर 'जनगणना' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“मैं वो हूँ जिसकी गितनी होने से रह गई
पूरी आबादी में जो एक कए होगा वो मैं हूँ
जिसके वास्ते किसी अडहन में डाला नहीं जाएगा चावल
जिसके नाम की रोटी नहीं पकेगी वो मैं हूँ।
जब भी उनकी गिनती गलत न होगी
जब भी वे हिसाब मिला नहीं पाएँगे
मैं हूँसूँगा आँकड़ों के पीछे से तालियाँ देता
वो मैं हूँ मैं वो अंक वो शंख महाशंख”^{५६}

अरुण कमल ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में व्याप्त गरीबी, दरिद्रता, बेरोज़गारी एवं अभावों का चित्रण करते हुए आम आदमी के प्रति गहरी संवेदना या सहानुभूति प्रकट करते हैं। वे हमेशा कमज़ोर एवं बेबस आम आदमी के पक्ष में हैं। पंकज चतुर्वेदी लिखते हैं- “दरअसल, अरुण कमल भारत की अधिसंख्य गरीब, शोषित और पीडित जनता के पक्षधर कवि हैं। जब हमारे समय का सत्ता तंत्र सामाजिक अन्याय, भूख और विषमता के प्रश्नों से जी चुरा रहा है, अरुण ने बराबर उन्हें सर्वोच्च प्राथमिकता दी है।”^{५७} इस प्रकार कवि इस संवेदन शून्य समय में हमेशा समाज के निर्बल निरीह आम जनता के पक्ष में खड़े होकर मानवीय संवेदना को जगाने की कोशिश करते हैं।

४.४.४. बच्चों की बेचैनियाँ

आज के बच्चे कल देश का भविष्य हैं। लेकिन आज के समाज में निम्न एवं निम्न मध्य वर्गीय परिवार के बच्चे अभावों के बीच में जी रहे हैं। आर्थिक दबावों के कारण ये

भोजन, वस्त्र, घर एवं शिक्षा से वंचित हैं। खेलने कूदने एवं पढ़ने की उम्र में अपने पेट भरने के लिए किसी न किसी काम करने या भीख माँगने के लिए मज़बूर बन गये हैं। छोटी उम्र में कठिन मेहनत करने के बाद भी भूखा रहने के लिए विवश हैं ये बच्चे। 'होटल' नामक कविता में होटल में काम करनेवाला लड़का स्वयं भूखा रहकर वहाँ आनेवाले को खाना परोस देता है और किवाड के पास जाकर रोता रहता है। होटल में काम करनेवाले बच्चे का मार्मिक चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“जैसे ही कौर उठाया

हाथ रुक गया।

सामने किवाड से लगकर

रो रहा था वह लड़का

जिसने मेरे सामने

रक्खी थी थाली।”^{५८}

आर्थिक विषमता यहाँ सामाजिक विद्वेषताओं को बढ़ावा देती है। 'अहिंसा और भीख माँगते बच्चे' शीर्षक कविता में शांति और अहिंसा के उपदेश देनेवाले महावीर के मंदिर के बाहर भीख माँगनेवाले भूखे नंगे बच्चों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। मंदिर के अंदर शांत, पवित्र वातावरण एवं सिक्का लूटने के लिए एक दूसरे पर गिरते भहराते लड़के हैं।

“मंदिर के बाहर खड़े हैं भिखमंगे,

भूखे नंगे बच्चे

जैसे ही अंदर से शांत पवित्र हो बाहर आप रखते हैं कदम

कि बिल्कुल चील की तरह झपट्टा मारते हैं बच्चे,

भगवान महावीर के नाम पर मारवाड़ी बहुओं ने

लुटाए हैं सिक्के खुले हाथ, खनखनाये हैं कंगन

और एक -दूसरे पर गिरते भहराते लूटने दौड़े हैं बच्चे।”^{५९}

‘पृथ्वी किसलिए घूमती रही’ शीर्षक कविता के द्वारा कवि यह व्यक्त करते हैं कि आप भी आम आदमी के लिए पढ़े-लिखे बेटे-दामाद एक अधूरा स्वप्न है। क्योंकि अभाव में जीनेवाले लड़के शिक्षा एवं सुख भरे जीवन से वंचित हैं। इनकी इच्छाएँ हजारों वर्षों के बाद आज भी अतृप्त हैं। भूख एवं गरीबी से तड़पनेवाले बच्चों की दर्दनाक स्थिति का चित्रण है ‘दोस्त’ शीर्षक कविता। अपनी छोटी उम्र में पेट भरने के लिए विवश हैं ये दो बच्चे। उनकी आर्थिक स्थिति इतना खराब बन गया है कि इन बच्चों का बचपन उनसे छीन लिया है। भूख तथा गरीबी से तड़पनेवाले अपनी छोटी उम्र में ही कठिन मेहनत करने के लिए विवश बच्चों का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“दो छोटे बच्चे जूते चमकानेवाले
बैठे हैं सुबह के ग्राहक के वास्ते
कि शाम होते होते आता है एक के पास एक ग्राहक
और दूसरा उसे अपनी डिब्बिया से देता है क्रीम
और फिर दोनों ढाबे में खाते हैं लिट्टी एक साथ।”^{६०}

कवि कहते हैं कि यह दृश्य उन्हें व्याकुल कर रहा है। ‘भेंडाघाट’ शीर्षक कविता गरीब बच्चों की दयनीय स्थिति पर आधारित है। भेंडाघाट में आनेवाले सैलानी लोग नदी में पैसा फेंकते हैं। जब यात्री लोग नदी में पैसा फेंकते हैं तो ये बच्चे मछली की तरह तैरकर पैसा निकाल लेते हैं। जहाँ बहुत गहरा पानी एवं घडियाल भी होते हैं वहाँ पैसा फेंककर बच्चों को खतरे में डालनेवाले सैलानियों के अमानवीय व्यवहार को दिखाते हुए कवि लिखते हैं-

“एक लड़का भीगा खड़ा है नंगा
घाट से थोड़ा नीचे जल में
सैलानी हँसते हैं - और अंदर चलो
और और अंदर वहाँ जहाँ नीली चट्टान है
हम रुपया फेंकेगे चलो

नाव के पीछे-पीछे वह तैरता आता है
 तैरती आती है मानव-मछली चारा चुगने
 पानी बहुत गहरा है वहाँ
 शायद घड़ियाल भी हैं इंतज़ार में वहाँ।”^{६१}

गरीबी की विवशता झेलनेवाले ये लड़के पैसे की चाह में अमीरों के मज़ाक का पात्र बन जाते हैं। ‘रात के दो बजे’ शीर्षक कविता में अभाव के साथ बीमारी भी झेलने के लिए विवश एक गरीब लड़की की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। पूरा संसार सुख से सोते वक्त ख़ाँसते - ख़ाँसते उठकर बैठनेवाली छोटी लड़की के बारे में कवि लिखते हैं-

“ख़ाँसती जा रही है बच्ची
 ख़ाँसते - ख़ाँसते उठ-उठ कर बैठती छिटकती
 कौंधता है रह-रह कर छाती में दर्द
 कभी माँ कभी बाप की तरफ उमडती घुमडती
 गर्म तवे पर जल की बूँद सी
 तडप - तडप कर नाच रही है बच्ची।”^{६२}

कई दिनों से भूखा-प्यासा व्याकुल बच्चों को देखकर कवि अत्यंत दुःखी हैं। चारों तरफ रोटि ढूँढनेवाले ये अनाथ यतीम बच्चों के देखकर ‘मातृभूमि’ शीर्षक कविता में कवि मातृभूमि से पूछते हैं कि तुम किसकी माँ हो? अनाथ गरीब बच्चों को सहारा बनाने के लिए वे मातृभूमि से निवेदन करते हैं। क्योंकि आज भीख में भी मुट्ठी भर अनाज मिलना दुर्लभ बन गया है। कविता में कालाहांडी, आंध्रप्रदेश, पलामू, पट्टन एवं नरौदा पटिया के भूखे बच्चों के माध्यम से रोटि की महक मात्र से जीने के लिए विवश गरीब बच्चों की दयनीय स्थिति का चित्रण है। बच्चों के साथ व्यवस्था के अमानवीय व्यवहार का चित्रण करनेवाली कविता है ‘बच्चा हँसता क्यों है?’ तीन साल और छह महीने के बच्चों के ऊपर पुलिस सरकार, व्यवस्था एवं शांति के खिलाफ गतिविधियों के आरोप

लगाते हैं। मुकदमा के लिए इन बच्चों को अदालत में ले जाते हैं। इस सामाजिक विसंगति का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“इतनी भारी षड़यन्त्र
शांति के खिलाफ
व्यवस्था के खिलाफ
सरकार के खिलाफ
दुनिया में आज तक नहीं हुआ
बच्चा खेलता क्यों है? बच्चा हँसता क्यों है?”^{६३}

कवि देश के अनाथ बच्चों के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हैं। कई बच्चों की नियति तो यह है कि जन्म से ही माँ-बाप-उन्हें किसी अनाथाश्रम या अन्य जगहों में छोड़ देते हैं। अनाथ बच्चों के जल में डूबी छविहीन आँखों को देखकर ‘घर भी उतनी ही दूर जितना कब्रिस्तान’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“वे आँखें तुम भूल नहीं पाओगे
अनाथाश्रम की वे आँखें जल में डूबी छविहीन
किससे मिलता था उनका चेहरा
किसकी यादें थीं उनके पास
माँ की देह की गन्ध
गर्भ से बाहर हठात् इतनी ठंड”^{६४}

हमारी शासन व्यवस्था, सरकार एवं समाज को हमेशा बच्चों की भलाई के लिए खड़ा रहना चाहिए। उन्हें उचित भोजन, वस्त्र और शिक्षा का बंदोबस्त करना चाहिए। उन्हें निर्भय निशंक आगे बढ़ाने के लिए हाथ देना चाहिए।

४.४.५. स्त्री जीवन की यातनाओं का चित्रण

दुनिया तो हर पल बदलती रहती है। बदलती दुनिया में नारी संबंधी मान्यतायें भी बदल रही हैं। फिर भी पुरुष सत्तात्मक परंपरागत संकीर्ण मानसिकता के कारण आज भी

वह कई तरह यातनाएँ झेल रही हैं। अरुण कमल की कविता स्त्री संवेदना पर बल देती है। नारी के प्रति उदात्त और मानवीय दृष्टिकोण रखनेवाले कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से औरत के यातनामय जीवन का चित्रण किया है। अरुण कमल लिखते हैं -
 “स्त्री ही सबसे ज़्यादा दलित है, दलितों में दलित। वे स्त्री की सारी यातनाओं एवं दुःखों को व्यक्त करते हैं।”⁶⁵

‘एक नवजात बच्ची को प्यार’, ‘कल्याणी’, ‘दरजिन’, ‘ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया एक बार भी बोलती’, ‘लौ’, ‘अभिसार’, ‘वापस’, ‘स्वप्न’, ‘समुद्र’, ‘दाना’, ‘अनुभव’, ‘समुद्र’ आदि अनेक कविताओं के माध्यम से जीवन भर यातनाओं से तड़पते नारी जीवन को चित्रित किया है।

‘एक नवजात बच्ची को प्यार’ नामक कविता में लड़के की प्रतीक्षा करनेवाले परिवार में लड़की के जन्म से होनेवाले असंतोष का चित्रण है। अपने माँ, बाप और अन्य परिवार जनों से तिरस्कृत नवजात-नन्हीं बच्ची की दशा अत्यंत मार्मिक बन पड़ी है। अपने जन्म से ही प्रारंभ होनेवाली स्त्रीजीवन की तिरस्कृत दशा का चित्रण करते हुए कवि बच्ची से पूछते हैं-

“ओ नन्हीं सी बच्ची
 क्या हुआ जा तुम्हें किसी ने चूमा तक नहीं
 तुम्हारी माँ मुँह फेर रोती रही रात भर
 और तुम्हारा पिता लौट गया बाहर ही बाहर
 क्या हुआ जो तुम्हारी दादी ने बधावे नहीं दिए
 और उनका यह आँगन पँवरियों की ढोलकों से
 आबाद नहीं हुआ
 तुम रोती रही, रोती रही
 और किसी ने चूमा तक नहीं।”⁶⁶

लड़की के जन्म से परिवार जनों द्वारा असंतोष प्रकट करने के पीछे जो कारण है, इसकी अभिव्यक्ति करते हुए कवि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से प्रश्न करते हैं। जिस दादी ने जूठन खाकर पूरी जिंदगी गुज़ार दी है, जिस माँ ने अपने पति की मार चुपचाप सही है और जिस पिता ने तिलक दहेज का क्रूर व्यापार देखा है, वे लड़की के जन्म से कैसे खुश होंगे?

‘कल्याणी’ शीर्षक कविता में बचपन से लेकर संघर्षों से जूझनेवाली युवती की व्यथा कथा है। वह बचपन से ही एक घर में रहकर काम करती है। जब उस घर में बहुएँ आती हैं तब से लेकर वह मज़ाक का पात्र बन जाती है। जब भी किसी बहू का कोई भाई घर में आता है तो उससे ब्याह तय करने की बातें कहकर कल्याणी का मज़ाक किया जाता है।

‘डैली पासंजर’ शीर्षक कविता में जीविका चलाने के लिए दिनभर मेहनत करने के बाद शाम को थकी हुई घर लौटती स्त्री का चित्रण है। सौंदर्य से ज़्यादा शारीरिक श्रम को महत्व देनेवाले कवि उस औरत के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखते हैं-

“चेहरे पर
 बाहों पर
 खुल रहा था, रन्ध्र रन्ध्र
 कि सहसा मेरे कंधे से
 लग गया
 उस युवती का माथा
 लगता है बहुत थकी
 वह कामगार औरत
 काम से वापस घर लौट रही थी
 एक डैली पैसंजर।”^{६७}

अपने और मालिक के घर में हड्डी तोड़ मेहनत करनेवाली एक बुढ़िया का दर्द पेश करनेवाली कविता है ‘ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया’। कठिन मेहनत करने के बावजूद

स्वास्थ्य बिगडी हुई वह बुढिया एक दिन काम के बीच में अचानक मर जाती है। उस बुढिया के प्रति सहानुभूति प्रकट करनेवाले कवि, समाज के प्रति व्यंग्य करने को नहीं भूलते हैं। इसलिए ही वे कहते हैं कि वह बेचारी कुबडी बुढिया अभी कुछ दिन मजे से चल सकती थी।

स्त्री की गंध पर लिखी गई कविता है 'अभिसार'। कामकाजी औरत हो या न हो स्त्री जीवन का ज़्यादा समय चुल्हे चौके के भीतर बंद है। इसलिए ही कवि को रसोई की गंध और स्त्री की गंध दोनों धुल-मिल सी लगती है। कवि कहते हैं कि - स्त्री रसोई का अभिन्न अंग बन गई है। अपने संपूर्ण जीवन में घर संभालती औरत कवि को एक विस्मय सा लगता है। इसलिए वे आश्चर्य से पूछ रहे हैं-

“मैंने कभी यह घडी बंध नहीं देखी
जब से आ रहा हूँ
और चाय के प्याले की यह डंटी कितनी साफ है
कितना साफ है शीशे के गिलास में पानी
इतना थिरा थिरा घर उनके हाथों से चला हुआ।”^{६८}

एक स्त्री अपने पूरे जीवन में बडी निष्ठा से घरवालों को संभालती है। लेकिन उससे पुरुष सत्तात्मक समाज हमेशा उपेक्षा का भाव रखता है।

‘प्याज की तेज़ गंध हींग जीरे की कपूर की गंध मुझे किसी औरत की गंध लग रही है।’ इन पंक्तियों के संबंध में प्रमीला के.पी.लिखती हैं - “इन पंक्तियों के आयामी अर्थ तभी व्यक्त होंगे जब हम हाल ही की एक अखबारी खबर पर ध्यान देंगे। उसके अनुसार ब्रिटेन में कार्यरत भारतीय मूल की नर्सों को आदेश दिया गया है - कि अगर उन्हें ब्रिटेन के अस्पतालों में काम करना है तो वे प्याज जैसी तेज़ गंधवाली चीज़ों को छोड़ दें, कम से कम कार्य दिवसों पर उनका इस्तेमाल न करें। इस अन्तरराष्ट्रीय रपट के अनुसार भारतीय औरत की गंध ही प्याज की है। निम्न मध्यवर्गीय औरत के निजी जीवन-संघर्ष

के साथ उनकी पद दलित स्थिति के सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों पर भी इस पंक्तियों से सूचनाएँ मिलती हैं।”^{६९}

‘धरती और भार’ नामक कविता निम्नवर्गीय गर्भवती युवति की विवशता का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“तुम कितना झुकोगी
 देह को कितना मरोडगी
 घर के छोटे दरवाज़े में
 तुम फिर गिर जाओगी
 कितनी कमज़ोर हो गयी हो तुम
 जामुन की डाल-सी
 भौजी, हाथ में डोल लिये
 मत जाना नल पर पानी भरने
 तुम गिर जाओगी
 और बउआ...।”^{७०}

अपने पति या अन्य रिश्तेदारों की ओर से कुछ स्त्रियाँ अमानवीय व्यवहार का शिकार बन जाती हैं। कभी-कभी इन प्रिय बंधुओं के हाथों से वे मारी जाती हैं। ‘मणि-कर्णिका’ नामक कविता में कवि कहते हैं एक स्त्री रोज़ लगभग आठ बजे मैदान पर अपनी खिडकी खुलती थी। सातवीं या आठवीं मंजिल पर वह अपने दोनों हाथ खिडकी की चौखट पर रख अपने पति का इंतज़ार कर रही थी। लेकिन वह एक दिन अपने पति के हाथों से राख बन जाती है।

हमारे समाज में स्त्री अक्सर निम्न स्तर की मानी जाती है। स्त्री भी स्वयं अपने को नगण्य समझती है। परिवार में पति द्वारा होनेवाले अन्याय और अत्याचार को वह चुपचाप सहती है। ‘एक बार भी बोलती’ कविता में पति द्वारा डाँटने, पीटने एवं गालियाँ देने पर भी सब चुपचाप सहनेवाली औरत का अंकन करते हुए कवि लिखते हैं-

“अभी भी मैं समझ नहीं पाया
 कि वह कभी बोली क्यों नहीं
 मरते वक्त भी वह कुछ नहीं बोली
 आँखें बस एक बार डोली और...
 वह बोली क्यों नहीं
 एक बार भी बोलती”¹⁹⁹

सामाजिक बंधनों से स्त्री कभी-भी मुक्त नहीं। वह विवाह के पश्चात अपने घर-परिवार को छोड़कर ससुराल में जाने के लिए विवश है। ‘वापस’ नामक कविता में नयी वधु को ससुराल में देखने के लिए भाई आता है। जब भाई लौटता है तब उसे बहुत दुःख होता है। फिर भी जल्दी ही अपने उत्तरदायित्वों पर लौटने के लिए विवश नयी वधु का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“जैसे रो धोकर चुप हो हाथ मूँह धो
 अंतिम हिचकी भर
 वापस चूल्हे के पास लौटती है नयी वधु
 भाई के जाने के बाद।”²⁰⁰

स्त्री जीवन के वास्तविक संघर्ष को उजागर करनेवाली कविता है ‘स्वप्न’। कविता में स्त्री पति द्वारा मार-पीट से मुक्ति के लिए घर से हर बार भागती रहती है। मुक्ति की आकांक्षा में इधर-उधर भटकने के बाद आखिर वह पति के पास ही लौट आती है। क्योंकि उसे पता है उसे कहीं कोई रास्ता या अंतिम आसरा नहीं है। अनेक यातनायें सहकर हमेशा घर से भागती वह औरत घर के पास गंगा और रेल की पटरियाँ होने पर भी आत्महत्या का प्रयास नहीं करती है। क्योंकि वह मृत्यु से जीवन के लिए भाग रही थी। अपनी विवशता के कारण वह हर बार घर लौटकर मार खाती रहती है। लेकिन वह कभी भी मुक्ति की इच्छा या आकांक्षा नहीं छोड़ती है। कवि ने इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति की है-

“वह बार बार भागती रही
 बार बार हर रात, एक ही सपना देखती
 ताकि भूल न जाये मुक्ति की इच्छा
 मुक्ति न भी मिले तो बना रहे मुक्ति का स्वप्न
 बदल न भी जीवन तो जीवित बचे
 बदलाने का यत्न।”⁹²

बदलते समाज में स्त्री कई तरह के अत्याचारों का शिकार बन जाती है। बलात्कार का शिकार बनकर मौत को स्वीकारने के लिए विवश नारी जीवन का अंकन है ‘समुद्र’ शीर्षक कविता में। अत्याचार के शिकार स्त्री का चित्र कवि ने अत्यंत संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है-

“सोये मर्द पर तेज़ाब झोंक
 भागती है औरत लंबे धुंधले गलियारे
 सीढियों की ओर
 कि नीचे से कोई हँसता चला आ रहा ऊपर
 और वो घूमती वापस घूमती ऊपर खाली सीढियों पर धड धड
 हठात् आसमान
 और मिट्टी पर आखिरी छलाँग।”⁹³

स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याओं को कवि पहचानते हैं। “स्त्री के प्रति उदात्त दृष्टि रखनेवाले कवि अरुण कमल के अनुसार स्त्री की मुक्ति दो बार में होगी। एक तो सभी पीड़ितों के साथ। दूसरे, स्त्री मात्र के रूप में।”⁹⁴

४.४.६. सामाजिक असुरक्षा का चित्रण

समाज की गतिविधियाँ दिन-प्रतिदिन बदलती जा रही हैं। सामाजिक ढाँचे में कई तरह के बदलाव आए हैं। साथ ही साथ सामाजिक असुरक्षा का भाव पैदा हुआ है। आज के समाज को देखकर कवि चिंतित हैं। वे कहते हैं - “आज जो हालत है हमारे देश की, और जो होती जा रही है उसे देखते हुए लगता है कि जल्दी ही यहाँ की सड़कें भिखमंगों, वेश्याओं

और छुरेबाजों से भर जाएँगी। मैं जहाँ रहता हूँ और जो रोज़-ब-रोज़ देख रहा हूँ उससे लगता है कि हम सामूहिक विनाश की ओर जा रहे हैं।”⁹⁶ वर्तमानकालीन सामाजिक परिवेश बेहद खतरनाक बन गया है। हर कहीं असुरक्षा का डर है। अन्याय को बर्दाश्त करनेवालों की संख्या बढ़ रही है। आज देश में हत्यारों का राज चल रहा है। उन्हें ही ज़्यादा आदर सम्मान मिलता है। ‘उत्सव’ नामक कविता में कवि इस सामाजिक विसंगति का पर्दाफाश करते हुए लिखते हैं-

“देखो हत्यारों को मिलता, राजपाट सम्मान
जिनके मुँह में कौर मांस का उनको मगहीपान
प्राइवेट बंदूकों में अब है सरकारी गोली
गली-गली फगुआ गाती है हत्यारों की टोली
देखो घेरा बाँध खड़े हैं जमीन्दार के गुण्डे
उनके कंधे हाथ धरे नेता बनिया मुँछ मुण्ड।”⁹⁷

ऐसे हत्यारों को सरकार से कई तरह की सहायता अप्रत्यक्ष रूप से मिलती है। इनकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। लेकिन बहुत सारे अपराधों को देखने पर भी लोग चुपचाप सब कुछ सहते रहते हैं। समाज की आदत यह बन गयी है कि अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ नहीं उठाता है। ‘ऐसा क्यों हो रहा है’ कविता के माध्यम से समाज की जड़ता पर कवि प्रहार करते हैं-

“बगल में एक आदमी का खून हो रहा है-
और लोग अपने-अपने दरवाज़े बन्द कर सुन रहे हैं चुपचाप
ऐसा क्यों हो रहा है।”⁹⁸

वर्तमान समाज में अपराध वृत्ति बढ़ गई है। लोग किसी भी मामूली बात पर लड़ते झगड़ते रहते हैं। कभी-कभी ऐसे झगड़ों का जवाब पिस्तौल जैसे आक्रामक चीज़ों से है। दुनिया इतना संवेदनहीन बन गया है कि किसी से बोलना भी खतरनाक बन गया है। इसकी ओर इशारा करते हुए ‘वाक्या’ नामक कविता में कवि लिखते हैं-

“आज मेरे मूँह से बस इतना निकला
 रेल का भाडा बेतरह बढ गया है
 इतना कहना था कि सामनेवाले ने लोक की बात
 पहले तो गरजा, आप ही जैसे लोग
 सरकार को बदनाम करते हैं
 फिर गली पर उतर आया
 और जब मैं ने टोका तो
 सटा दी पिस्तौल।
 और कोई कुछ नहीं बोला।”^{७९}

आज ऐसा वक्त आ गया है कि यहाँ बोलना भी गुनाह बन गया है। स्वतंत्रता तो कहने भर के लिए मात्र बन गया है। हर कहीं गुंडाओं का राज है। बोलना, ख़ाँसना एवं हँसना भी आज गुनाह बन गया है। आम जनता को अपने घर में भी कोई सुरक्षा नहीं है। स्थिति इतनी भयानक बन गयी है कि अपने ही घर की चौखट पर बैठनेवाला आदमी अपराधियों के हाथों से मारा जा रहा है। समय इतना खतरनाक बन गया है कि सबेरे घर से निकलनेवाले आदमी का इंतज़ार करना भी आज व्यर्थ है। गुंडागर्दी इतनी बढ गयी है कि कहीं किस पुल के पाये में उसकी लाश मिलेगी। कभी कभी लाश पहचानने को भी मुश्किल बन जाती है। वक्त ऐसा हो गया है कि समाज में गुंडों का जय जय कार हो रहा है। इस वक्त के संबंध में ‘वक्त’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं -

“ऐसा ही वक्त आ गया है
 जब गुंडे बेला के फूलों की माला पहन
 जै-जैकार करा रहे हैं
 जब जहर-माहुर फल, फूल रहे हैं
 और फूलों की क्यारियों में जल नहीं...”^{८०}

आतंकवाद और युद्ध की विभीषिका से जनता त्रस्त है। किसी को भी कहीं कोई सुरक्षा नहीं है। आम जनता का जीवन हर पल खतरे में है। हर रोज़ की घटनायें जनता

को भयभीत कर देती हैं। 'खतरा' शीर्षक कविता में जनता के आंतरिक संघर्षों को व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं-

“जगे रहो
सोना नहीं है आज की रात
जलाए रहो लालटेन रात भर
मत सोचो कि पहरेदार आ गए हैं।”^{८१}

'लोककथा' शीर्षक कविता के द्वारा कवि इस सच्चाई को उद्घाटित करते हैं कि आज जिस परिवेश में हम जी रहे हैं वह चोरी, डकैती एवं लूट-मार से बेहद खतरनाक समझा जा रहा है। कविता में एक किसान के घर में चोरी होती है। दो महीने पहले गौना लेकर बेटे को डाकु मार डालता है। उसकी अर्थी उठाने के लिए गाँव का एक भी आदमी नहीं आया क्योंकि डकैत कहीं बुरा न मान जाये। 'वृत्तांत' शीर्षक कविता में समाज में बढ़ती हुई चोरी का चित्रण है। रेलगाडी में यात्रा करते वक्त चोरी का शिकार बननेवाले यात्रियों के मानसिक संघर्ष का चित्रण करके कवि लिखते हैं-

“ऐसे में अचानक लुटेरे घूस आये
और पिस्तौल भिडा दे - कहाँ है माल
तो क्या करूँगा यही सोचता बैठा हूँ अकेले।”^{८२}

आज परिवेश इतना डरावना है कि लोग यात्रा में भी अकेला बैठना पसंद करता है क्योंकि एक दूसरे पर किसी को भरोसा ही नहीं। आम जनता तो सत्ताधारियों के शोषण का शिकार बनकर पिसती जा रही है। इन सत्ताधारियों के लोग ही जनता को लूट रहे हैं। लेकिन गवाही या सबूत के अभाव के कारण इन अत्याचारी सत्ताधारियों का नाम बाहर कहीं भी न आता है या वे नहीं आने देते हैं। ऐसे में किसी निर्दोष व्यक्ति को दोषी ठहराकर दंड मिलता है। 'सबूत' नामक कविता में इसका अंकन करते हुए कवि लिखते हैं-

“जितना पवित्र पहले थे
 उतने ही पवित्र है आज भी निष्कलुष
 उनके खिलाफ कुछ भी सबूत नहीं
 जो निर्दोष हैं वे दंग हैं हैरत से चुप हैं
 शक है उन पर जो निर्दोष हैं क्योंकि वे चुप हैं
 क्योंकि वे चुप हैं।”^{८३}

आतंकवादी संगठनों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। आतंकवादियों ने बड़े-बड़े नगरों एवं महानगरों में त्रासद स्थिति पैदा की है। वहाँ की जनता हमेशा मानसिक संघर्ष झेल रही है कि कल न्यूट्रन बम गिरेगा, सब मर जाएँगे और सब कुछ नष्ट हो जाएगा। जम्मू कश्मीर जैसे सीमावर्ती राज्यों में अतंकवाद की समस्या ज़्यादा है। इसलिए ही वहाँ के लोगों की ज़िन्दगी दुष्कर होती जा रही है। वहाँ के लोगों को शंकालू दृष्टि से देखते हैं। ‘शिविर’ नामक कविता में जम्मू से लौटनेवाले आदमी के माध्यम से इस आतंकमय स्थिति की भयावहता का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“और स्टेशन के पहले हमारा ऑटो दो बार रोका गया
 अचानक तेज टार्च। खोजबीन। तलाशी
 कुछ बोलो मत। चुपचाप उतर लो। दोनों हाथ ऊपर
 मेरी गाड़ी छूटेगी तो नहीं?
 जो हो, बोलो मत। शक तो सब पर है। खतरा भी।”^{८४}

हरेक राष्ट्र दुनिया पर अपनी सत्ता स्थापित करने की होड़ में लगा हुआ है। विज्ञान की सहायता से युद्धों में इस्तेमाल के लिए नये-नये शस्त्रों का आविष्कार हो रहा है। संपूर्ण विश्व युद्ध की विभीषिका के साये में है। ‘ईद-८२’ नामक कविता लेबनान के बेघर लोगों की ज़िन्दगी पर आधारित है। सभी लोग ईद का त्योहार बड़ी धूमधाम से मना रहे हैं। लेकिन लेबनान के लोग अपने चाँद को ढूँढते फिरते हैं। लेबनान के आतंक भरे माहौल का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“जो लेबनान में बेघर हैं अब
बम गोलों के धूँ में जिनको नहीं ईद का चाँद मयस्सर
कधों पर बन्दुक उठाए जंगल-जंगल धूम रहे जो
जो माताएँ बच्चों को सीने से साटे
रोटी के टुकड़ों की खातिर ताक रही हैं असमान को
आज उन्हें भी ईद मुबारक।”^{८५}

लेबनान के बेघर लोगों को देखकर कवि अवश्य दुःखी हैं। लेकिन दुनिया की संवेदनशून्यता पर उन्हें ज्यादा दुःख है। क्योंकि हज़ारों लोग लेबनान में काटे जा रहे हैं फिर भी सारी दुनिया अपने अपने हथियारों में तेल डाल रही है। ‘मई का एक दिन’ शीर्षक कविता वियतनाम और कंबोडिया में युद्ध की विभीषिका की ओर संकेत करते हैं। कवि कहते हैं-

“वह कोई दिन था मई के महीने का
जब वियतनाम सीढियों पर बैठ
पोंछ रहा था
खून और घावों से पटा शरीर
कम्बोडिया, जकड़ी सिकड़ियाँ खोलता
गृह-प्रवेश की तैयारियों में व्यस्त था।”^{८६}

वियतनाम में एक मैदान में खेलते बच्चे अचानक बम फटने से मारे गए । इस समाचार को लेकर लिखी गई कविता है ‘युद्ध और शान्ति’। युद्धोपरांत भी आतंकपूर्ण परिस्थितियों से जूझकर जीनेवाली जनता की ओर संकेत करते हुए कवि लिखते हैं-

“युद्ध विराम के तीस साल बाद भी
खेलते बच्चों के हाथों फूटते हैं
छूटे हुए बम और गोले
कभी भी कोई युद्ध खत्म नहीं होता
जब तक हथियार हैं
जब तक उनके विचार हैं।”^{८७}

वर्तमान दुनिया के लोग संवेदनहीन बन रहे हैं। हर कहीं हिंसा देख पाते हैं। कहीं कभी कोई भी कत्ल हो सकता है। हिंसा, आतंक, लूटमार, ठगी और युद्ध से त्रस्त जनता को देखकर कवि दुःखी बन गये हैं। आज का समय इतना खराब बन गया है कि लोग आपस में भरोसा नहीं करते हैं। वर्तमान समय की भयावहता के संबंध में 'रात के दो बजे' कविता में कवि लिखते हैं-

“रात के दो बजे हैं
सुख से सोया है संसार
और कोई रहड-करे खेत की खूंटियों पर भागता जा रहा है-
चारों तरफ से घेरते आ रहे हत्यारे
हाथ में छुरा लिये।”^{८८}

अरुण कमल की कविताएँ दुनिया की विसंगतियों एवं विडंबनाओं का यथार्थ प्रस्तुत करती हैं। अरुण कमल की कविता के संबंध में प्रभाकर श्रोत्रीय लिखते हैं- “कवि की निगाह अपने समय के तमाम संघर्षों पर है चाहे वह देश में हो या विदेश में। उसे विदेशों की आज़ादी में भी उतनी ही दिलचस्पी है जितनी अपने देश की आज़ादी में।”^{८९}

४.४.७. सांप्रदायिक विकलता का परिदृश्य

आज सांप्रदायिक ताकतों की शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अंग्रेज़ी सत्ता ने अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए सांप्रदायिकता का बीज बोया था। तो आज जनता धर्म, जाति भाषा एवं प्रांत को लेकर परस्पर संघर्षरत हैं। सभी प्रकार के सांप्रदायिक दंगों एवं संघर्षों के मूल में सत्ता पाने की लालसा है। अरुण कमल अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में व्याप्त सांप्रदायिक तथा जातीय दंगों की भयावहता को चित्रित करते हैं। बिहार के जातीय दंगों को लेकर लिखी गई कविता है 'युद्धक्षेत्र'। जातीय दंगों की भयावहता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कवि कहते हैं-

“मारे गए दस जन
यदुवंशी थे?

वामन थे?

छत्री थे?

नहीं मालूम

मारे गए दस जन।”^{१०}

आज सत्ताधारियों की चिंता किसी न किसी प्रकार जनता को टुकड़ों में बाँटकर अपनी सत्ता सुरक्षित रखना मात्र है। जाति, धर्म, भाषा आदि के नाम पर जनता को बाँटने के लिए सत्ताधारी तुले हुए हैं। शासक वर्ग की इस चालाकी का चित्रण करते हुए ‘युद्धक्षेत्र’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“फेंका है उन्होंने रोटी का टुकड़ा
और टूट पड़े गली के भूखे कुत्ते
एक-दूसरों की गर्दनों पर दाँत पजाते
एक टुकड़ा रोटी
और लाखों भुक्खड।”^{११}

इस कविता के अंत में ‘मिला है मुफ्त में युद्धक्षेत्र’ कहकर भविष्य में भी जातीयता के नाम पर युद्ध होने की संभावना को कवि पाठकों के सम्मुख रखते हैं। धर्म, जाति एवं भाषा के नाम पर होनेवाले दंगों एवं हत्याओं का भयावह चित्रण है ‘चार दिन’ नामक कविता में। हर कहीं हिंसा का माहौल है। गलियों में सन्नाटा छाया हुआ है। रात होने के बहुत पहले ही रात की प्रतीति है। सब लोग अपने - अपने दरवाज़े बंद करके चुपचाप घर के अंदर रहते हैं। अँधेरी गलियों में खून का बहाव है। लाश पडते पडते पानी भी सड़ गया है। जातीय दंगों के भयावह माहौल में मृत्यु की प्रतीक्षा करनेवाले एक व्यक्ति का चित्रण करके कवि लिखते हैं-

“मैं ने हरदम अच्छा बर्ताव किया
न किसी का बुरा ताका न कभी कुछ चाहा
और अचानक मैं मारा जाऊँगा
सिर्फ इसलिए कि मेरी जाती वो नहीं जो हत्यारों की
मेरा धर्म वो नहीं।”^{१२}

आज हर कहीं जातीय एवं धार्मिक बीमारी फैल गयी है। पहले लोग पेचिश, तपेदिक, पीलिया जैसे बीमारियों से मारे जाते थे तो आज जाति, प्रांत तथा भाषा के नाम पर लोगों की हत्याएँ हो रही हैं। जैसे-

“वैसे ही कोई धर्म की हिंसा में मरता है-
कोई जाति भाषा क्षेत्र की हिंसा में
मरने के लिए बस बहाना चाहिए ठेस का
सबकी पारी है मरने की एक न एक दिन।”^{९३}

आज ज़माना इतना बदल गया है कि हरेक की नज़र में बाकी सब दुश्मन हैं। हत्यारों की टोली आज गाँव-गाँव में फगुआ गाती है। हर कहीं गुंडा राज चल रहा है। हर कहीं विश्वासाघात एवं धोखा धड़ी देख पाते हैं। ‘उल्टा ज़माना’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“ऐसा जमाना आ गया है उल्टा
कि कोई तुम्हें रास्ता बतावे तो शक करो
वह तुम्हें रात में सोने की जगह दे तो सोचो
तुम्हारा खून कर सकता है चुपचाप
और लाश आँगन में गाड़ देगा।”^{९४}

बोहरा संप्रदाय के लिए लिखी गयी एक कविता है ‘आखिर हर्ज ही क्या है’। यह भारतीय समाज में जातीय संप्रदाय की जटिलता को दिखानेवाली कविता है। जाति से भ्रष्ट युवक की मानसिक दशा का चित्रण है कविता। जाति भ्रष्ट होने के कारण अपने माँ-बाँप, बच्चे, पत्नी, दोस्त एवं अन्य कोई रिश्तेदारों से वह बोल नहीं सकते। बुखार में तपता तो माँ ललाट भी नहीं छू सकती, यदि रास्ते में दीख पड़े तो बाप को नज़र डुकाना पडता है। नज़दीकी से नज़दीकी दोस्तों से भी अलग रहना पडता है। अपने बच्चों के हँसने की आवाज़ दूर से सुनते हैं। एक ही शहर में रिश्तेदारों से अनजान होकर जीने के लिए विवश युवक की मानसिक दशा का वर्णन करने के साथ-साथ इसका कारण भी युवक के माध्यम से कवि अरुण कमल कहते हैं-

“क्योंकि मैं ने खोली है, जबान जुल्म के खिलाफ
मैं बोला बहुत कुछ सैयदना के खिलाफ
और उसने मुझे जाति निकाला दे दिया।”^{९५}

प्रांतवाद की गंदी राजनीति का पर्दाफाश करनेवाली कविता है ‘स्वगत’। आदमी काम के लिए अपने राज्य को छोड़कर अन्य राज्यों में चले जाते हैं तो उसे बाहरी कहकर तिरस्कार करते हैं। कभी-कभी उसे मारा जाता है। प्रांतवाद के शिकार मज़दूरों की विवशता का चित्रण करते हुए उनके पक्ष में खड़े होकर कवि भारतवासियों के लिए पूरी पृथ्वी माँगते हैं। जाति, धर्म, भाषा एवं क्षेत्र को लेकर जनता के मन में आशंका या डर है। ‘डर’ नामक कविता में कवि लिखते हैं कि जनता कहीं अपनी जाति से डरती है तो कहीं अपने धर्म से डरती है। कभी अपनी भाषा से डरती है तो कभी अपने क्षेत्र से डरती है। ‘दूसरा आँगन’ नामक कविता के माध्यम से अरुण कमल हमसे यह कहना चाहते हैं कि-

“जब तक तुम लोगों को धर्म, जाति या देश से जानते हो।

तब तक तुम कुछ नहीं जानते और आसानी से नफरत कर सकते हो।”^{९६}

हमारे देश में जाति, धर्म, भाषा, प्रांत को लेकर दंगे - फसादों की स्थिति स्वाधीनता पूर्व से लेकर आज भी कायम है। कई बेगुनाहों को जातीय-धार्मिक कट्टरता का शिकार होकर जान खोना पड़ता है। कई लोग जान बचाने के लिए अपने मुत्क एवं घर-परिवार को छोड़ने के लिए विवश बन जाते हैं। अपने ही देश में शरणार्थी बनकर डर से जीने के लिए विवश लोगों की ज़िन्दगी का यथार्थ अंकन करते हुए ‘चार दिन’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं -

“इस ऐतिहासिक नगरी के हम शरणार्थी

इस विपुल पृथ्वी के कोनों-अँतरों के बहारन

पता नहीं कब तक ढूँढते फिरेंगे आसरा

पता, नहीं कब यह बेघर हवा किसी देह में डालेगी डेर।

पता नहीं क्यों खोज रहे थे हत्यारे मुझे।”^{९७}

कवि अरुण कमल भली भाँति जनते हैं कि जाति, धर्म, भाषा, प्रांत को लेकर तमाम संघर्षों के पीछे पूँजीवाद ही कार्यरत है। वे कहते हैं - “धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा नस्ल आदि पर आधारित सांप्रदायिकता तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक इनका पोषक पूँजीवाद नष्ट नहीं होता, जैसे कुछ कीटाणुओं का संवाहक मच्छर या सुअर होता है, वैसे ही इन सभी कीटाणुओं का संवाहक पूँजीवाद है।”^{९८} ‘आराम कुर्सी में’ नामक कविता में वे लिखते हैं-

“लगातार असहिष्णुता और वर्बरता बढ़ रही है
संकीर्णता स्वार्थ जातीय हिंसा।
पूँजीवाद केवल आर्थिक पद्धति नहीं है।
यह जीवन के विनाश की सर्वोत्तम पद्धति है।
मैं कितना सुरक्षित हूँ अपनी जाति
अपने धर्म, अपने क्षेत्र में। और अपनी भाषा में।”^{९९}

मानवीयता को बनाये रखने के लिए इच्छुक कवि अरुण कमल अपनी कविताओं के माध्यम से जाति, धर्म, भाषा, प्रांत की संकीर्णताओं का पर्दाफाश करना मात्र नहीं इस संकीर्णताओं को खतम करना भी चाहते हैं।

४.४.८. मीडियाई अपसंस्कृति का अंकन

आज के दौर में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है। आज सामाजिक विकास के लिए प्रिंट और इलक्ट्रॉनिक मीडिया की अहं भूमिका है। जनता की ज़िन्दगी के हर पहलू को स्पर्श करनेवाली मीडिया को समाज में अपना अलग स्थान है। समाज की समस्याओं को परखकर जनमत रूपायित करके समाचारों को वास्तविकता से प्रस्तुत करना मीडिया का धर्म है। लेकिन आज मीडिया अपने कर्तव्य से विचलित दिखाई पड़ती है। बाहरी शक्तियों के दबाव से अपने मार्ग से फिसलती मीडिया मुख्य समाचारों को छोड़कर सनसने समाचारों के पीछे है। आजकल मीडिया जनता से सत्य छिपाकर उनके मन में भ्रम फैलाने का काम करती है। अरुण कमल अपनी कविताओं के माध्यम से इस मीडियाई अपसंस्कृति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं।

अपनी 'खबर' शीर्षक कविता में अखबारों के निरर्थक खबरों पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं अखबारों में कालिफोर्निया की एक कुत्तिया ने तेरह बच्चे एक साथ जने, युवराज ने कंगालों में कंबल बाँटे, विश्वसुंदरी का वजन ३९ किलो है, प्याज बड़ा गुणकारी होता है और राजनेता ने दाढ़ी मुड़ायी ऐसी खबरों की भरमार है। लेकिन आपातकाल के दौरान आन्ध्र प्रदेश के नक्सल बंदी किश्ता गौड और भूमैया को दी गयी फाँसी की खबर अखबारों के लिए खबर नहीं थी। कवि लिखते हैं-

“एक खबर जो कहीं नहीं थी
किश्ता गौड को फाँसी हो गयी
एक खबर जो खबर नहीं थी
भूमैया को फाँसी हो गयी।”⁹⁰⁰

आज मीडिया सरकार का रागालाप करती है। जन आंदोलनों को कुचलाने का षड्यंत्र कभी सरकार ही रचती है। लेकिन संचार माध्यमों के द्वारा जन संगठनों के विरुद्ध प्रचार करती है। मीडिया सरकार के हाथों की कठपुतली बनकर जनसंगठनों के विरुद्ध खबरें देती है। 'हाथ' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“सरकार का कहना है
कारखाने में गोली चली, उसमें
ट्रेड यूनियन का हाथ है।
मारे गए मुसहर, उसमें भी
किसान सभाओं, का हाथ है,
विद्यार्थियों के हंगामों में
छात्र-संगठनों का हाथ है
और राज्य में जो भी गडबडी है
सब में कम्युनिस्टों का हाथ है।”⁹⁰⁹

संचार माध्यमों को जनता की आवाज़ बननी चाहिए। लेकिन कभी-कभी आम जनता पर अत्याचार होने पर भी मीडिया चुप्पी साधती रहती है। 'तुम चुप क्यों हो' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“जहाँ कहीं दुःख में है आदमी
जहाँ कहीं मुक्ति के लिए लड़ता है आदमी
वहाँ कुछ भी नहीं है निजी
कुछ भी नहीं है गुप्त
फिर भी तुम चुप क्यों हो?”^{१०२}

मीडिया की दुनिया में आम आदमी को कम स्थान है। भूख, गरीबी एवं अभाव के भीतर जीनेवाली साधारण जनता की खबर मीडियाओं या अखबारों के लिए बड़ी खबर नहीं है। वे धरती से पोंछ दिए गए तो भी अखबारों या चैनलों में शायद खबर नहीं आती है। इसका चित्रण करते हुए 'कविता २०१३' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“वे मारे गये वे बस धरती से पोंछ दिये गये
किसने पूछा उनका नाम उनका पता
कहाँ थे चैनल कहाँ थे अखबार और प्रवक्ता।”^{१०३}

अक्सर मीडिया शासक वर्ग या शासन का पक्ष लेकर खबर देती है। मीडिया और सत्ता एकजुट रहकर जनता को प्रतिपक्षी दल में खड़ा कर देने का दृश्य हम देखते हैं। अखबारों को सच्चाई का जबान बनना चाहिए। लेकिन आज अखबार जितना हो सके उतना जनता को सच जानने से रोकता रहता है। 'रोटी को रोटी' शीर्षक कविता में इसकी ओर संकेत करते हुए अरुण कमल लिखते हैं-

“बजट पेश होने के अगले दिन का हिंदी अखबार
पढ़ते हुए मुझे लगा कि
जब कविता से छंद गायब हो रहे हैं तब खबरों में छंद है
या छंद में खबरें हैं,

दूसरे यह कि तमाम खबरे रूपक हैं क्रिकेट का
 और जो अलंकार उतर चुके हैं पद्य की देह से
 वे अखबारों की शोभा है
 और ऐसा करके अखबारों ने अन्त अन्त तक हमें
 सच को जानने से रोका।”^{१०४}

आज मीडिया जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित करती है। मुख्य समाचारों को छोड़नेवाली मीडिया गैर ज़रूरी समाचारों को बढ़ा-चढ़ाकर कहकर लोगों के मन में भ्रम पैदा करती है। ‘सूर्यग्रहण’ नामक कविता में रेडियो, टेलीविज़न और जनसंचार के सारे माध्यमों पर व्यंग्य करते हुए कवि लिखते हैं-

“हंगामा मच गया
 अखबारों ने रोज मुखपृष्ठ पर मोटे अक्षरों में
 छापा
 आँखें न खोलिए
 सूर्य - ग्रहण न देखिए
 रेडियो, टिलिवेजन, जन-संचार के
 सारे माध्यमों ने ज़िंदगी में पहली बार
 जनता की आँखों की सुरक्षा का पूरा भार
 अपने कंधों पर उठाया
 और हंगामा मच गया।”^{१०५}

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि संचार माध्यमों की खोखली जनपक्षधरता का परिचय देते हैं। आज की मीडिया सामान्य जनता के हित से कहीं दूर है। जनता से सत्य छिपानेवाली ये मीडिया पूँजीवादी-व्यवस्था के पक्षधर हैं। अरुण कमल ने अपनी कविताओं के माध्यम से जनसंचार माध्यमों की अपसंस्कृति का पर्दाफाश किया है।

४.४.९. बाज़ारवादी अपसंस्कृति का अंकन

भूमंडलीकरण के इस दौर में दुनिया तेज़ी से बदल रही है। हमारी संस्कृति एवं

सभ्यता में कई तरह के बदलाव आए हैं। मानवीय संवेदना से जुड़ी हुई हमारी संस्कृति आज बाज़ारी संस्कृति के रूप में बदल गयी है। आज हम जिस संस्कृति के बीच जी रहे हैं वह भोगवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति है। इस बाज़ारवादी संस्कृति भूमंडलीकरण की देन है। अरुण कमल के शब्दों में - “बाज़ार तो हर हाल में होगा। पहले भी था। यह पूँजीवाद का हमला है। अपने नग्न, नृशंस अवतार में पूँजीवाद। बात चाहे जितनी घिसी-पिटी लगे सच है कि पूँजीवाद सब कुछ को खरीद बिक्री की चीज़ में बदल देता है, इसलिए लेखक-कलाकारों - वैज्ञानिक और यह देह भी ‘ऑनसेल’ है। मीडिया का काम यह है कि वह आपको बाज़ार में ले चल। विज्ञापनहीन मीडिया की कल्पना हो ही नहीं सकती। बाज़ार कैंसर की तरह बढ़ता है।”^{१०६} हरेक वस्तु पर आज बाज़ार का दबाव है। वर्तमान समय की सभ्यता बाज़ारवाद से प्रभावित है। इस प्रभाव से भौतिक रूप से बदलती दुनिया का अंकन करते हुए ‘नए इलाके में’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“यहाँ रोज कुछ बन रहा है
 रोज कुछ घट रहा है
 यहाँ स्मृति का भरोसा नहीं
 एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है दुनिया
 जैसे वसंत का गया पतझड़ को लौटा हूँ।”^{१०७}

यहाँ रोज कुछ बन जाने के कारण पुरानी सभ्यता, संस्कृति एवं चीजें स्मृतियाँ बन जाती हैं। पुराने निशान तो हमें धोखा दे रहे हैं। हर क्षण बदलती हुई इस दुनिया में अपना ही घर पहचानना मुश्किल बन गया है। हर दरवाज़ा खटखटाकर अपना घर पूछने के लिए आदमी विवश बन गया है। नव बाज़ारवादी व्यवस्था में हर कहीं अजनबीपन फैल गया है। अपना ही घर-मुहल्ला अनजान लगने लगता है। कवि ‘सबसे ऊँची छत पर’ नामक कविता में लिखते हैं-

“यहाँ से दिखते हैं घरों के आँगन मुँडेर
 बरामदे भीतर रसोई तक

पर पहचानना मुश्किल है अपना ही घर
अपना ही, मुहल्ला लगेगा अनजान
खुदाई में निकली किसी लुप्त सभ्यता का ध्वंसावशेष।”⁹⁰⁸

‘हाट’ नामक कविता में एक बूढ़ा पिता अपने बेटे को रोज़गार तलाशने के लिए बाहर भेजता है। एक बाज़ार में पहुँचते वह लडका सारे संसार को काँच के पार देखकर सन्न रह जाता है। वह स्वयं यह समझ सकता है कि वह बाज़ार के लिए मिसफिट है। बाज़ार तो क्रय-विक्रय की जगह है और पूँजी के बिना यहाँ किसी की कोई कीमत भी नहीं। साधारण आदमी की पहुँच से बहुत दूर है बाज़ार। जिसके पास पूँजी है वह बाज़ार के लिए उपयुक्त है। बाज़ारवादी व्यवस्था की इस असलियत के बारे में कवि अरुण कमल लिखते हैं-

“मेरे पास न पूँजी थी न पण्य
में बाट भी न था कि हाट के आता काम
न पाप कमाया न पुण्य न ही रहा अक्षत
दिन भर घुमता ढली देह लिए लौटा धाम।”⁹⁰⁹

बाज़ार में पूँजी की ताकत इतनी बढ़ गयी है कि पूँजीपति या बड़े-बड़े कारपरेट एक ही क्षण में हमारे अपने घर को भी हमसे छीन लेते हैं। वर्तमान समय के सारे नियम पूँजीपतियों के हाथ में हैं। इसके संबंध में ‘हाट’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“लेकिन वहाँ जहाँ घर था मेरा घर नहीं था
अट्टालिका थी लौह कपाट और द्वार पाल
यहाँ मेरा घर था मेरे पिता मेरी माँ
मेरा घर?
द्वारपाल हँसे-
तुम किस जन्म की बात कह रहे हो?”⁹¹⁰

घर सबके लिए सुरक्षा का स्थान है। लेकिन आज बाज़ार की संस्कृति में घर से निकलते व्यक्ति वापस आते वक्त अपने घर की तलाश में भटकने की स्थिति में है। इतिहास इस

बात का साक्षी है कि भारत में बाज़ार ने औपनिवेशिक गुलामी के लिए दरवाज़ा खोल दिया था। आज नवउपनेविशवादी दौर में भी बाज़ार हमें नई औपनिवेशिक गुलाम बना रहा है। चाहे-अनचाहे हम विदेशी व्यापारियों के गुलाम बन रहे हैं। हमारी अर्थ व्यवस्था इतनी बिगड़ी हुई है कि पूरा देश नीलाम पर चढ़ा है। ‘इक्कीसवीं शताब्दी की ओर’ कविता की पंक्तियाँ हैं -

“चढ़ा है नीलाम पर देश
 एक-एक चौखट किवाड़ पालना
 चढ़ा है नीलाम पर
 आ रहे हैं डाक बोलने अमरीकी फ्रांसीसी
 इतालवी अंग्रेज व्यापारी
 घर का फूटा हुआ दिन भी वे लादेंगे जहाज़ पर
 आ रही है कब्र की मिट्टी झाड़ती ईस्ट इंडिया कंपनी
 डलहौजी के घोड़ों की टाप है रोड पर
 टाप कनपट्टी पर।”^{१११}

बाज़ार के सामने हर व्यक्ति उपभोक्ता मात्र है। बाज़ार हर दिन अपने मुनाफे की चिंता में है। विज्ञापन के सहारे त्योहारों के नाम पर आमजनता को भी बाज़ार प्रभावित करता है। ‘धनतेरस’ कविता में इसकी अभिव्यक्ति करते हुए कवि लिखते हैं-

“आज धनतेरस है
 नए-नए बर्तन खरीदने का दिन
 और आज ही हम अपने आखिरी बर्तन लिए
 घूम रहे हैं दूकान-दूकान।”^{११२}

इस कविता में एक ओर नये-नये बर्तन खरीदनेवाले हैं तो दूसरी ओर अभाव एवं गरीबी के कारण घर के आखिरी बर्तन भी बिकने के लिए विवश आम आदमी हैं।

बाज़ारवाद की अंधी दौड़ के पीछे निश्चय ही पूँजीवाद है। पूरे राष्ट्र का बाज़ार बहुराष्ट्रीय कंपनियों के काबू में है। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ही बाज़ार का नियम तय

करती हैं। वे हमेशा अपने मुनाफे पर चिंता रखती हैं अपने सत्ता को बनाये रखना ही इनका उद्देश्य है। इसलिए वे नये-नये षड्यंत्र रचती रहती हैं। 'रावण के माथे' शीर्षक कविता में इसका पर्दाफाश करते हुए कवि लिखते हैं-

“लेकिन अन्दर-अन्दर रावण के ये
दस-दस माथे
रहे सोचते एक ही बात
एक ढंग से एक ही बात
रावण के ये दस-दस माथे।”^{११३}

'रावण के माथे' कविता के संबंध में प्रभाकर श्रोत्रीय लिखते हैं - “बाज़ारवाद के इस क्रूर समय में जहाँ पूँजीवाद का चेहरा ऊपर से मनोहर हो गया है, मगर भीतर से वह जल्लाद है, उसी तलवार की तरह जिस पर खूबसूरत नक्काशी है। कवि की चिंता यह है कि यह पूँजीवादी, रावण अपने अनेक रूपों में ऊपर से तो अलग-अलग है। लेकिन भीतर से एक है, इसका लक्ष्य एक है सब कुछ स्वायत्त करना।”^{११४} वैश्वीकरण या विश्वग्राम की अवधारणा पूँजीपति राष्ट्रों की देन है। इनकी आर्थिक नीति ने बाज़ारीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। आज हर मानव इस बाज़ारवादी चमक-दमक के पीछे है। विज्ञापन भी इनके पीछे कार्यरत है। हर व्यक्ति के दिल और दिमाग बाज़ारवादी व्यवस्था के मोहजाल में फँस गये हैं। चाहे-अनचाहे चीज़ों को बटोरना मनुष्य की आदत बन गयी है। सबसे विसंगतिपूर्ण पूँजीवादी-बाज़ारवादी अपसंस्कृति मानव को मानव के रूप में नहीं बल्कि उपभोक्ता के रूप में देखती है।

४.४.१०. मूल्यों का विघटन

मानवीय समाज को सुव्यवस्थित बनाने के लिए मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन वर्तमान उपभोक्ता समाज में मूल्य-विघटन हो रहा है। यांत्रिक जीवन जीनेवाले मानव के मन में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय भावनाएँ लुप्त होती जा रही हैं।

परदुःख कातरता की भावना एकदम समाप्त हो रही है। स्नेह, दया, करुणा, ममता, पारस्परिक संबंध, परस्पर विश्वास, अहिंसा, त्याग आदि मानवीय मूल्यों का हास देख रहे हैं। आज मानव इतना संवेदनहीन बन रहे हैं कि अपने निकटस्थ रिश्तेदार एवं पड़ोसियों के जीवन में घटित दुःखात्मक घटनायें भी उन्हें विचलित नहीं कर पाती हैं।

‘स्थिति’ शीर्षक कविता में कवि अरुण कमल कहते हैं कि एक बाप अपने जवान बेटे को अग्नि देकर आया है। उस रात बाप को अकेला छोड़ना नहीं चाहिए। लेकिन वहाँ यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि बाप के साथ कौन सोयेगा? क्योंकि वहाँ इकट्ठे हुए सब लोग अपने कार्यों में व्यस्त हैं। लोग इतना संवेदनहीन बन गये हैं कि उस रात बाप के साथ रहने के लिए कोई नहीं। इसके संबंध में कवि लिखते हैं-

“जो कहकर गये कि आते हैं थोड़ी देर में
वे अभी तक नहीं लौटे-
लोग खाकर हाथ मूँह धो रहे है
लोग मसहरियों के डंडे ठीक कर रहे है
किसी के माथे में दर्द है
किसी को कल के लिए सितार का रियाज करना है
सब को कुछ न कुछ काम पड गया है अचानक
कोई तैयार नहीं
कोई भी तैयार नहीं बैठने को उसके पास जो अग्नि देकर
आया है और सफेद मलमल में लिपटा
कोने में पडा है चुपचाप”^{११५}

आज मानव अधिकाधिक अत्म केन्द्रित बन गए हैं। सामाजिक संबंधों में ख़ाई नज़र आती है। सहकार्य एवं निस्वार्थ भावना को छोड़कर हम स्वार्थी बन गए हैं। सारे रिश्ते अब पैसे पर आधारित हैं। ‘ढेला और पत्ता’ शीर्षक कविता में दो साथियों के माध्यम से कवि यह व्यक्त करते हैं कि आजकल दोस्ती भी अर्थ केन्द्रित बन गयी है। दोस्तों की संकुचित मानसिक दशा का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं-

“कसकर भूख लगी थी मुझको
पैसा भी कुछ जेबी में था
किंतु उसे भी देना होगा
यही सोच मैं भूखा चलता गया।”^{99६}

आगे वे लिखते हैं -

“कसकर प्यास लगी थी उसको
पैसा भी कुछ जेबी में था
किंतु उसे भी देना होगा
यही सोच वह प्यासा चलता गया।”^{99७}

दोनों अपने जेब के कुछ पैसे से आपस में बाँटकर खा और पी सकते थे। लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। इसलिए दोनों की दोस्ती यहाँ निरर्थक सिद्ध हुई है। आज के आत्मकेन्द्री मानव के संबंध में ‘दुर्दिन के मजे’ नामक कविता में कवि यों लिखते हैं-

“अब न तो कोई तेरे घर आयेगा
न तुझे कोई बुलायेगा
अपनी ही चारदीवारी में कैद यह घर
तेरे ही पदचाप हर बार दुहरायेगा।”^{99८}

आज सभी मनुष्य आपस में विश्वास नहीं रखते हैं। चारों ओर व्यापक ढंग से हिंसा, लूट-मार आदि होने के कारण मनुष्य का मनुष्य पर विश्वास कम रहा। जहाँ आपसी विश्वास नहीं है वहाँ भय उन्हें घेर लेता है। ‘वृत्तांत’ नामक कविता में यात्रा के दौरान होनेवाली एक घटना के माध्यम से इस अविश्वसनीयता की वृत्ति का पर्दाफाश करते हुए लिखते हैं-

“सामने बैठे यात्री ने लौंग बढाई
तो हाथ मेरा एक बार हिचका
ऐसे ही तो खिला पिला लूटते हैं”^{99९}

आज मानव के अंदर संवेदना नष्ट हो चुकी है। 'वृत्तांत' कविता के माध्यम से कवि यह व्यक्त करते हैं कि वह इतना स्वार्थ बन गया है कि यात्रा के समय अपना सभी सामान गाड़ी में चढ़ा दिया जाता है। लेकिन गाँव की बूढ़ी द्वारा दिया गया जूट का झोला छूट जाता है। छूटे हुए उस झोले में अपने ददन को देने के लिए बड़ी इच्छा के साथ नया चूड़ा और गूड की भेली रखी थी वह बूढ़ी माँ ने। आज के मनुष्य का चरित्र इतना विकृत बन गया है कि सौहार्द की भावना उनसे लुप्त हो रही है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने उसे इतना अमानवीय बना दिया है कि बच्चों के सामने कुल्फी चाटने के लिए भी कोई संकोच नहीं। 'बात' नामक कविता में इसकी ओर संकेत करते हुए कवि लिखते हैं-

“अब मुझे क्या हो गया है

बच्चों के सामने कुल्फी चाटते चलता हूँ बीच बाज़ार।”^{१२०}

इसी कविता के माध्यम से कवि यह व्यक्त करते हैं कि आज मनुष्य संवेदनहीन बन गये हैं। औरों की ज़िंदगी के बारे में उन्हें कोई परवाह नहीं। एक मोटर दुर्घटना में कई लोग मारे जाते हैं। जो व्यक्ति उस दुर्घटना से बच जाता है वह अपने यारों के साथ दारु पीकर खुशी मनाता है।

हमारे समाज में कई तरह की धार्मिक रूढ़ियाँ हैं, उनमें से एक है श्राद्ध। श्राद्ध के दिन मृतक की आत्मा की शांति के लिए परिवारवाले अन्नदान करते हैं। 'श्राद्ध का अन्न' शीर्षक कविता में कवि कहते हैं कि एक संवेदनशील मनुष्य को मृतक के पिता के सामने श्राद्ध का अन्न निगलना कठिन होता है। लेकिन हमारे बीच के कुछ लोगों की संवेदन शून्यता का अंकन करते हुए कवि लिखते हैं-

“श्राद्ध का अन्न खा लौट रहे तेज कदम

दूर गाँव के ग्रामीण ज़ोर-ज़ोर से बतियाते

व्यंजनों का स्वाद मृतक का आचार-व्यवहार

लगाते ठहाका”^{१२१}

पहले तो गाँव वालों में भोलापन था। लेकिन इस बाजारु संस्कृति के कारण आज गाँववालों में भी संवेदनहीनता देख पाते हैं। अमानवीयता एवं निसंगता की भावना आज गाँवों में भी व्याप्त है। आज हम ऐसे एक सांस्कृतिक संकट में हैं कि अनसुनी की संस्कृति एवं चुप्पी की संस्कृति हर कहीं व्याप्त है। जब मनुष्य अपने सामाजिक जीवन से कट जाते हैं तब ऐसी संस्कृति मनुष्य में छा जाती है। लोगों को ऐसी आदत बन गई है कि अपने चारों ओर जितना अन्याय एवं अत्याचार घटित हो वे ऐसे ही रहते हैं कि मानो कुछ नहीं हुआ है। 'जैसे' नामक कविता में ऐसे संवेदनशून्य मानव का चित्रण करते हुए अरुण कमल लिखते हैं-

“इस तेज़ बहुत तेज़ चलती पृथ्वी के अन्धड, में
जैसे मैं बहुत सारी आवाज़ें नहीं सुन रहा हूँ
वैसे ही तो होंगे वे लोग भी
जो सुन नहीं पाते गोली चलने की आवाज़ ताबडतोड
और पूछते हैं - कहाँ है पृथ्वी पर चीख?”^{१२२}

आज हम इतना संवेदन शून्य बन गये हैं कि अमानवीयता एवं अत्याचारों को देखने पर भी उसके विरुद्ध आवाज़ न उठाकर चुप्पी थामकर रहते हैं। मनुष्य इतना आत्म केन्द्रित बन गये हैं कि अपने चारों ओर की कोई भी घटना उन्हें विचलित नहीं कर पाती है। 'तुम चुप क्यों हो' नामक कविता में इस सामाजिक यथार्थ का चित्रण है। जैसे-

“कैसा समय की छुट्टा साँड
गाँवों की नाँद में सींग मार रहा है
और कोई बोल नहीं सकता
कैसा समय की खून के छींटों से मरा सफेद घोडा
गाँवों को रौंदता जा रहा है
और कोई रोक नहीं सकता।”^{१२३}

वर्तमान समय में मनुष्य की निसंग भावना को देखकर कवि दुःखी हैं। 'ऐसा क्यों हो रहा है' कविता में कवि जनता की संवेदनशून्यता को व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि आज सड़क पर एक औरत की इज्जत जाने पर लोग अपने अपने ओटों पर चुपचाप खड़े रहते हैं। बगल में एक आदमी का खून होने पर भी लोग अपने अपने दरवाज़े बन्ध रहते हैं। इस कविता के संदर्भ में संतोष कुमार तिवारी लिखते हैं- "अरुण कमल की छटपटाहट और आकुलता युग की कडुवाहट का सबूत है। हमारी नुपंसकता और संवेदनहीनता पर कवि कई जगह प्रश्न चिह्न लगा देता है। आदमी का खून बंद दरवाज़े और औरत की इज्जत पर खतरा कवि को बेचैन कर देता है।"^{१२४}

भारतीय संस्कृति में अहिंसा का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन आज हर कहीं हिंसात्मक प्रवृत्ति देख पाते हैं। जाति, धर्म, भषा, प्रांत आदि के आधारों पर समाज में हिंसा फैलती है। जाति, धर्म, भाषा, प्रांत, को लेकर तमाम संकीर्णताएँ मानवीयता के क्षरण का कारण बन जाती हैं। 'चार दिन' नामक कविता के माध्यम से समाज में व्याप्त हिंसात्मक प्रवृत्तियों का पर्दाफाश किया है। जैसे-

"इस समाज के नींव में है बलि हिंसा
हिंसा की इतनी पोशकें है इतने तमाशे।"^{१२५}

आज मानव अपनी सभ्यता और संस्कृति से दूर होते चले जा रहे हैं। 'मानुष गंध' नामक कविता में सांस्कृतिक विघटन का चित्रण करते हैं-

"कहीं कोई मीनार झुक रही है
नोनी लग रही है दीवारों में
भसक रही हैं ईंटे
अन्धड पानी में नष्ट हो रहे हैं
हज़ारों साल पुरानी सभ्यता के अंतिम अवशेष"^{१२६}

स्वार्थता एवं अमानवीकरण की प्रवृत्तियों के कारण समाज में संवेदनहीनता फैल गई है। अर्थ केंद्री मानव आज अधिकाधिक आत्मकेन्द्री बन रहे हैं। वर्तमान मानव की संवेदनहीनता के संबंध में 'ऐसा क्यों हो रहा है' शीर्षक कविता में कवि कहते हैं-

“पेड़ को पत्थर बनने में लगे है हज़ार वर्ष
आदमी देखते-देखते पत्थर बन रहा है
ऐसा क्यों, आखिर क्यों हो रहा है
ऐसा क्यों हो रहा है?”^{१२७}

४.४.११. करुणाभाव

मानवीय संवेदना पर बल देनेवाले कवि अरुण कमल की कविताओं में करुणा का भाव हम देख पाते हैं। जहाँ संवेदन हीनता की बात वे कहते हैं वहाँ औरों के प्रति करुणा भी वे दिखाते हैं। अपने सहजीवियों के जीवन की विडंबनाओं को देखकर कवि के मन में करुणा उमड़ आती है। 'राख' नामक कविता के माध्यम से वे कहते हैं हम सही वक्त पर दूसरों को हाथ देना चाहिए। सही वक्त पर सहारा दे तो चाहे मौत से भी दूसरों को बचा सकते हैं। कवि लिखते हैं-

“सही साइत पर बोला गया शब्द
सही वक्त पर कन्धे पर रखा हाथ
सही समय किसी मोड़ पर इंतज़ार
शायद रुक जाती मौत”^{१२८}

किसी की मृत्यु के पश्चात् एक प्रथा है कि मृतक के नाम पर घरवाले अन्नदान करते हैं। लेकिन 'श्राद्ध का अन्न' नामक कविता में उस घरवालों के प्रति करुणा प्रदर्शन करते हुए कवि कहते हैं कि श्राद्ध का अन्न निगलना कठिन है। कवि अपनी इस मानसिकता का अंकन करते हुए लिखते हैं-

“कठिन है निगलना श्राद्ध का अन्न
पाँत में बैठना

फिर पोरसन का इंतज़ार
 फिर कौर उठाना सामने मृतक के पिता के
 कठिन है कंठ के नीचे उतारना
 कोई भीतर दोनों हाथों से ठेल रहा है निबाला
 अवरुद्ध है कंठ”⁹²⁹

अपने चारों ओर के अभावग्रस्त ज़िन्दगी को देखकर कवि हमेशा दुःखी हैं। आम जनता की भूख एवं अभाव को देखकर कवि उन लोगों के प्रति करुणार्द्र हो उठते हैं। दूसरों की मुसीबतों के सामने अपनी सुखलोलुपता पर माँफी माँगते हुए ‘आत्मकथ्य’ शीर्षक कविता में वे लिखते हैं-

“इतनी कम जगह इतना भार सिर पर की
 कोई चल कैसे रहा है ढँकी है आँख तक
 दिन-ब-दिन सड़क पर चलना इतना मुश्किल क्यों है
 माफ़ करना प्यास से तड़पते लोगों
 आज मैं दो बार नहाया।”⁹³⁰

दुनिया के सबसे कमज़ोर लोगों के लिए कवि स्वयं संजीवनी बूटी बनना चाहते हैं। ‘सोये में चलना’ नामक कविता में कवि कहते हैं-

“केवल शब्दों का फाहा लिये
 जाना चाहता हूँ उसकी तरफ से
 जो सबसे कमज़ोर है
 जो अपने कौर के लिए भी हाथ उठा नहीं सकता
 जो न शासक बनना चाहता है न शासित
 पर जो लक्ष्य है केवल लक्ष्य वीर धनुर्धरों का
 दीवार पर लाल धब्बा या मछली की आँख की पुतली
 या बस पत्तागोभी पत्तों को पत्तों में छुपाए
 आलोकित स्वयं जैसे संजीवनी बूटी।”⁹³¹

‘साथ’ नामक कविता इस बात की साक्षी है कि आज भी मनुष्यता शेष है। कवि लिखते हैं-

“तो अब आज्ञा दी जाए, धन्यवाद क्या कहूँ
कैसे भूल सकता हूँ कि आपने
एक अनजान को शरण दी एक रात”^{१३२}

‘एक यात्रा’ नामक कविता में मज़दूरों के जीवन संघर्ष के प्रति कवि करुणा प्रकट करते हैं। रात में गाडी के इंतज़ार में बैठे मज़दूरों के प्रति संवेदना प्रकट करके कवि लिखते हैं-

“आधा जगा आधा सोया है संसार
आधा जड आधा फूल है संसार
आकर बैठा है बगल के गाँव के मज़दूरों का दल
गाडी के इंतज़ार में ”^{१३३}

आम जनता के प्रति करुणा प्रकट करनेवाले कवि पूरे समाज में मानवता की स्थापना करना चाहते हैं। मानव-मानव के बीच भिन्नता को तोड़कर एकता के सूत्र में बाँधना चाहते हैं। ‘जितना दो आँखें’ कविता में वे लिखते हैं-

“एक ही तो मूल में हम
एक ही हैं भूमि-जल-संसार अपना
एक ही अन्तः प्रदेश
उतने ही अलग
उतने ही एक
जितना दो आँखें।”^{१३४}

४.४.१२. विज्ञान की विभीषिका

विज्ञान वरदान है या अभिशाप यह सदियों से पूछनेवाला एक प्रश्न है। हमारे जीवन के हर क्षेत्र में आज विज्ञान का चमत्कार है। दुनिया के हर चीज़ों में हानि और लाभ दोनों

तत्व निहित हैं। विज्ञान से हमारे जीवन में बहुत लाभ होते हैं साथ ही साथ इसके दुरुपयोग से हानि भी। मनुष्य के विकास में विज्ञान का बहुत बड़ा योगदान है। नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार हमारे जीवन में कई तरह की सुख-सुविधायें लाये। लेकिन प्रकृति और मनुष्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विज्ञान के विध्वंसक प्रभाव के शिकार बने। अणुशक्ति विज्ञान का एक आविष्कार है। विश्व के प्रत्येक राष्ट्र अपने पास अणुशक्ति रखता है। वंशीय एवं सीमा संबंधी समस्याओं के कारण आज विश्व के कई राष्ट्र युद्ध की विभीषिका में हैं। बड़े-बड़े राष्ट्र निर्बल और कमज़ोर राष्ट्रों पर अणुशक्ति के बल पर अपनी सत्ता स्थापित करते हैं। जापान के लोग हिरोशिमा और नागसाकी की स्मृतियों से आज भी त्रस्त हैं।

‘दुःस्वप्न’ नामक अपनी कविता में कवि ने न्यूट्रान बम गिरने के बाद की भयावह स्थिति का अंकन किया है। कवि कहते हैं कि न्यूट्रान बम गिरने पर सारे जीव नष्ट हो जाएँगे। लेकिन निर्जीव सुरक्षित बचेंगे। कवि एक दुःस्वप्न देखते हैं कि न्यूट्रान बम गिरने के बाद आधा दिन बीत गया है। कहीं खाना खोजकर वे सड़क पर चल रहे हैं। लेकिन कहीं कोई नज़र नहीं आता है। कोई आवाज़ भी नहीं है। चलते-चलते वे एक आलीशान मकान के सामने पहुँचते हैं। आवाज़ उठाने पर भी कोई बाहर नहीं आया तो वे परदा उठाकर अंदर देखते हैं। वहाँ के भयावह दृश्य का अंकन करते हुए कवि लिखते हैं-

“एक बच्चा पालने में पडा है चुपचाप

एक औरत प्लंग पर औंधे मुँह लेटी

एक बूढा बीच आँगन में

एक और आदमी दरवाजे के पास

एक बच्चा

एक बच्चा सोफे पर गाँठ की तरह उमेठा हुआ।”⁹³⁴

संपूर्ण विश्व के जीव वस्तुओं को विनष्ट करनेवाले अणुबम का असर निर्जीव चीजों पर न पड़ता है। 'ईर्ष्या' नामक कविता में कवि कहते हैं कि न्यूट्रॉन बम गिरने पर हम सब मर जायेंगे तो भी टेबुल पर रखी ऐश ट्रे चमकता ही रहेगा। इसलिए कवि ऐश ट्रे से अपनी ईर्ष्या प्रकट करते हुए लिखते हैं-

“कल न्यूट्रॉन बम गिरेगा
हम तुम सब मर जाएँगे
सब कुछ नष्ट हो जाएगा
फिर भी इस टेबुल पर इसी तरह चमकता रहेगा
शान से यह ऐश ट्रे
आज मुझे
इस ऐशट्रे से ईर्ष्या हो रही है
मुझे ईर्ष्या हो रही है।”⁹³⁶

मानव वर्ग के सिर के ऊपर मँडरानेवाले इस विपत्ति की भयावहता पर कवि आशंका प्रकट करते हैं। कवि हमें याद दिलाते हैं कि आज मानव का अस्तित्व खतरे में है। विज्ञान का ध्वंसात्मक असर मानव पर ही नहीं प्रकृति पर भी पड़ता है। 'अपनी पीढी के लिए' नामक कविता विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप होनेवाले परिवर्तन एवं तज्जन्य दुस्थितियों का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं-

“ईसा की बीसवीं शताब्दी की अंतिम पीढी के लिए
वे सारे युद्ध और तवाहियाँ
मेला उखड़ने के बाद का कचड़ा महामारियाँ
समुद्र में डूबता सबसे प्राचीन वंदरगाह
और टूटकर गिरता सर्वोच्च शिखर
सब हमारे लिए
पोलिथीन थैलियों पर जीवित गौवों का दूध हमारे लिए
शहद का छत्ता खाली

हमारे लिए वो हवा फेफड़े की अंतिम मस्तकहीन धड़
पूर्वजों के सारे रोग हमारे रक्त में।”⁹³⁹

मनुष्य की सुख-सुविधायें एवं सुरक्षा को बढ़ाने के लिए विज्ञान ने नए-नए आविष्कार किये थे लेकिन ज्यादातर वैज्ञानिक उपलब्धियों से मानव एवं प्रकृति खतरे में हैं। उनकी कवितायें मानव एवं मानवीयता को बनाये रखने के लिए हिंसक वैज्ञानिक उपलब्धियों से हमें जागरूक बनाने का प्रयास हैं।

४.४.१३.पर्यावरण क्षति की चिंता

पहले मनुष्य प्रकृति से भाईचारे का संबंध रखते थे। प्रकृति के अनुरूप शांतिमय जीवन जी रहे थे। लेकिन आज मानव के जीवन दर्शन में कई तरह के बदलाव आए हैं। वे अधिकाधिक सुखवादी बन गये हैं। इसके फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों के दोहन एवं शोषण हो रहे हैं। फलस्वरूप स्वच्छ हवा, शुद्ध पानी एवं शुद्ध भोजन मिलना कठिन से कठिनतर हो गया है। प्रकृति मानवीय जीवन का अभिन्न हिस्सा है। प्रकृति के बिना मानव का जीवन दुःस्वह होगा। इसलिए मानवीय संवेदना पर बल देनेवाले कवि अरुणकमल की कविताओं में प्राकृतिक सजगता होना स्वाभाविक है।

हमारी संस्कृति का आविर्भाव नदी के तट पर हुआ है। हमारे जीवन का अस्तित्व ही नदी पर निर्भर है। भारत की प्रमुख नदी में एक है गंगा नदी। वह पवित्र नदी मानी जाती है। मानव संस्कृति एवं गंगा के संबंध में ‘गंगा को प्यार’ शीर्षक कविता में कवि कहते हैं-

“ओ विराट गंगा
ओ माँ के दूध में बसी हुई गंगा
तुम्हारे ही किनारे शुरू हुआ जीवन
पहला स्नान यहीं हुआ
अंतिम स्नान भी यहीं
तुम्हीं रही प्रवाहित आदि मानव से

आज तक
 अनन्त धमनियों में
 विशाल आँख-सी तुम्हीं रही देखती
 हमारे सारे सुख-दुख”^{१३८}

भारत की नदियाँ आजकल कई प्रकार के संकट में पड़ी हुई हैं। विभिन्न कारखानों से उत्पादित विषैले पदार्थों से नदी का जल प्रदूषित होता जा रहा है। प्रदूषित जल के उपयोग से मानव को ही नहीं समस्त जीवजंतुओं का अस्तित्व खतरे में पड़ा है। जल प्रदूषण के कारण जानवर एवं पक्षीगण अत्यंत परेशान हैं। गंगा जैसे पवित्र नदी भी फैक्टरियों से निकलनेवाले विषपदार्थों से मलिन होती जा रही है। कवि कहते हैं कि गंगा इतनी विषैली बन गयी है कि गंगा के ऊपर उड़ता हुआ पक्षी भी विष की धाह से झुलस जाएगा। एक दिन गंगा ही नहीं रहेगी क्योंकि आधुनिक मानव गंगा के द्वार पर विषपात्र रख आये हैं।

औद्योगीकरण ने नदी को नाले के रूप में बदल दिया है। नदियाँ आज रेत का ढेर बन रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अपशिष्ट एवं शहर के कचरों से प्रदूषित ये नदियाँ आज नदियाँ नहीं रह गयी हैं। शहर का गंदा नाला बन गयी हैं। ‘नदी और नाला’ नामक कविता में वे लिखते हैं -

“उस नदी के बारे में जहाँ तुम और तुम्हारे साथी घूमते रहते थे रात भर
 उस नदी के बारे में जो अब नाला है शहर का”^{१३९}

आगे वे लिखते हैं-

“और हम टहलते रहे देर तक उस रात
 उसी नाले के किनारे जो नदी था कभी”^{१४०}

विज्ञान मनुष्य के जीवन स्तरों में बड़े परिवर्तन लाया है। आज ऐसी कोई बीमारी ही नहीं जिसकी दवा न हो। ऐसे हों तो धीरे-धीरे आदमी अमरता ही प्राप्त करेंगे। लेकिन आज हमें एक बहुत बड़ी समस्या का सामना करना पड़ेगा कि शुद्ध पानी की समस्या।

आज की उपभोग संस्कृति का परिणाम है प्रकृति का अंधाधुंध शोषण एवं पर्यावरण प्रदूषण। मानव हमेशा अपने सुख की चिंता में हैं। बड़े-बड़े घर व मकान बनाने के लिए जलस्रोत को भी घोंट देने के लिए वह हिचकता नहीं। इसका चित्रण करते हुए 'सुख' शीर्षक कविता में अरुण कमल लिखते हैं-

“और उधर जो दीवार है बायी ओर
उसके नीचे कुआँ था पति से पूछना
खूब बड़ा पुराना कुआँ जिसका जल
हलका और मीठा था
एक उद्गार था पृथ्वी का तुमने उसे भी
घोंट दिया।”^{१४९}

मानव हमेशा ऐसे सोचते रहते हैं कि इस धरती में केवल उनका अधिकार है। इसलिए ही वे प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ते रहते हैं। 'सुख' कविता के माध्यम से कवि हमें याद दिलाते हैं कि इस पृथ्वी में सबको समान अधिकार है। प्राकृतिक संतुलन नष्ट हो जाने के कारण आज प्राकृतिक प्रकोप बढ़ रहा है। बाढ़, सूखा, अकाल, भूकंप, सुनामी आदि प्राकृतिक प्रकोपों ने मनुष्य की ज़िन्दगी को दुष्कर बना दिया है। 'उम्मीद' शीर्षक कविता पर्यावरण के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण कविता है। इस में कवि हमें चेतावनी देना चाहते हैं कि अगर हम पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ देंगे तो उसका भयंकर परिणाम हमें आंधी, तूफान, अकाल आदि कई रूपों में भोगना पड़ेगा। यह कैसी विडंबना है धरती की एक ओर आदमी बाढ़ की दिक्कत झेल रहे हैं तो ठीक उसी वक्त दूसरी ओर आदमी पीने के पानी के लिए तड़प रहे हैं। इस भयावहता का चित्रण अरुण कमल की 'कोई खून होगा इस रात' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में हैं-

“मैं हार रहा हूँ पानी बढ़ता जा रहा है
उस पार उस झोंपड़ी में ज्वर से तपता
काँप रहा है मेरा भाई
और मैं पानी खोज रहा हूँ, इस ओर”^{१४२}

पर्यावरण पर पड़े घुसपैठों का चित्रण करनेवाली कविता है 'इस श्मशान पर'। पानी के अभाव में कवि को नदी श्मशान जैसा लगता है। कल यहाँ उतना पानी था जिसमें एक नौका डूब जाती थी। लेकिन आज सूखा रेत मात्र बाकी है। मानव के अनियंत्रित हस्तक्षेप और घुसपैठ के कारण पर्यावरण पर क्षति पहुँच गयी है। धरती, आकाश, जल, वायु और पानी तक नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। प्रगति और विकास के नाम पर प्रकृति के विरुद्ध होनेवाले षड्यंत्रों का अंकन करते हुए कवि लिखते हैं कि गंगा, हिमालय, पृथ्वी, नक्षत्र और समस्त मण्डल के साथ आज षड्यंत्र चल रहा है। 'इक्कीसवीं शताब्दी की ओर' नामक कविता के माध्यम से इस सदी में पर्यावरण की स्थिति का अंकन करते हुए कवि लिखते हैं-

“हर नदी का घाट श्मशान

हर बगीचा कब्रिस्तान बन रहा है

और हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर जा रहे हैं।”^{१४३}

कवि अरुण कमल अपनी कविताओं के माध्यम से पारिस्थितिक समस्याओं को प्रस्तुत करके जनता के मन में पारिस्थितिक सजगता पैदा करते हैं।

४.४.१४. बिगड़ते लोकतंत्र का अंकन

लोकतंत्र जनता के लिए जनता द्वारा जनता की ही शासन प्रणाली है। अर्थात् लोकतंत्र में जनता का वर्चस्व है। लेकिन लगता है कि आज हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था खोखली बन गयी है। जनता द्वारा चुननेवाली सरकार के सामने आज जनता को कोई स्थान नहीं है। आज का शासन पूँजी पर निर्भर है। इस व्यवस्था में पूँजीपति वर्ग का वर्चस्व स्थापित होता रहता है। बहुसंख्यक आम जनता जर्जर अवस्था में जीवन बिताने के लिए विवश है। लोकतंत्र के मूल्यों का ध्वंस हो रहा है। कवि अरुण कमल इस खोखली व्यवस्था के षड्यंत्र को भली भाँति पहचानते हैं। इसलिए वे अपनी कविताओं के माध्यम से इस खोखली लोकतांत्रिक व्यवस्था का पर्दाफाश करते हैं। इस लोकतंत्र व्यवस्था के अंतर्गत जनता को कहने मात्र के लिए स्वतंत्रता है। इस खोखली व्यवस्था ने आम जनता

की स्वतंत्रता को सीमित रखा है। जितना आजाद है उतना बँधा भी है। उनकी गति का नियंत्रण व्यवस्था के अदृश्य हाथों में है। 'वे और हम' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“मैं कहाँ हूँ उतना आजाद
मैं उतना ही बँधा हूँ जितना आजाद
मैं गर्भ में पालते बच्चे सा
बँधा हूँ
आजाद हूँ
मुझमें साँस बन रही है हर हवा।”^{१४४}

जनतंत्र आज जनता के ऊपर धोखा मात्र है। राजनेता कई तरह से जनता को धोखा देते हैं। सभा सम्मेलनों में स्वयं हँसकर एवं जनता को हँसाकर राजनेता आते हैं। कई तरह की घोषणाएँ आम जनता के सामने रखते हैं। जनता को अच्छी तरह से लुभाकर सत्ता पर रहते हैं। 'बैठकी' नामक कविता में मेंढक और कीड़ों के माध्यम से जनता को लगाकर सत्ता पर अडिग रहनेवाले राजनीतिज्ञों का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“अभ्यस्त अध्यक्ष सा मेंढक आया हँसता हँसाता
जम गयी सभा सफल भयी सभा
बोले वक्ता कुछ जँभा कुछ रँभा
भाषण चलता गया
गैस चलता गया
कीड़े आते गये
मेंढक खाता गया।”^{१४५}

प्रजातंत्र की असलियत को उद्घाटित करनेवाली कविता है 'उत्सव'। लोकतंत्र आज पूँजीपतियों एवं सत्ताधारियों के हाथों से नियंत्रित है। अपने सत्ता को बनाये रखने के लिए आम जनता की हत्या करने के लिए भी ये लोग नहीं हिचकते हैं। पूँजीपति ज़मींदार एवं अन्य सत्ताधारियों के गुंडे लोग ही सरकारी बंदूकों से जनता पर गोली चलाते हैं। किसान

एवं मज़दूरों को नक्सल कहकर काटे जाते हैं। अपराधी या हत्यारों को ही राजपाट सम्मान मिलता रहा है। भारत में लोकतंत्र के यथार्थ का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं।

प्रजातंत्र का महामहोत्सव छप्पन विध पकवान
जिनके मुँह में कौर मांस का उनको मगहीपान।”^{१४६}

लोकतांत्रिक देश में आम जनता की सुख-सुविधाओं के लिए कई योजनार्यें बनायी गयी हैं। फिर भी जनता आज भी अपनी बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित रहती है। गरीबी एवं अभाव की विवशता झेलनेवाले साधारण लोग भूख के कारण बीच सड़क पर मर जाते हैं। ‘असंवैधानिक मौत’ शीर्षक कविता में भूख से छटपटाते आदमी की करुणदशा का चित्रण करके हमारे लोकतांत्रिक व्यवस्था पर व्यंग्य है-

“यह कितनी अजीब बात है
कि आदमी पीपल के सूखे पत्ते की तरह
लोकतंत्र और समाजवाद
दो पन्नो के बीच सुरक्षित है।”^{१४७}

लोकतांत्रिक व्यवस्था में हर निर्णय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में जनता के हित पर निर्भर होना चाहिए। लेकिन आज ऐसा नहीं हो रहा है। शासक या सत्ताधारी जनता के हित के लिए नहीं बल्कि अपने हित के लिए प्रधान निर्णय ले रहे हैं। संविधान के अनुसार राजकाज चलाना है। लेकिन ये सत्ताधारी समय-समय पर अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए संविधान संशोधन करते हैं। ‘संविधान का अंतिम संशोधन’ शीर्षक कविता में इसका अंकन करते हुए कवि लिखते हैं-

“संसद के संयुक्त अधिवेशन ने मत से
संविधान का अंतिम संशोधन पारित कर दिया
जिसके अनुसार अब से किसी भी सिक्के में
एक ही पहलू होगा
इस प्रकार सहस्रों वर्षों से चला आ रहा
अन्याय समाप्त हुआ।”^{१४८}

आज के राजनेताओं को जनता से कोई सरोकार नहीं है। जहाँ जनता एक ओर मुट्ठी भर अन्न के लिए तरसती है वहाँ दूसरी ओर उन्हीं के द्वारा चुने गये राजनेता या मंत्रीगण के सामने पूरा मेज़ भोजन से भरा है। 'वित्तमंत्री के साथ नाश्ते की मेज़ पर' कविता में इस सच्चाई को उद्घाटित करने वाली पंक्तियाँ हैं-

“पूरी मेज़ भोजन से भरी है
इतनी भरी कि मेरी भूख ही मर गई
अभी-अभी दिवालिया हुए थे बैंक
करोड़ों-करोड़ बेरोज़गार मधेपुरा में वाढ दिल्ली में दहशत
सडकें भुक्खडों से पटी चारों ओर एक हूक
मेरा सौभाग्य था जो मैं वित्त मंत्री के साथ उस सुबह
नाश्ते की मेज़ पर”^{१४९}

ऐसी शासन व्यवस्था यहाँ चल रही है कि अन्न से कोटार गोदाम और मण्डियाँ भरे रहने पर भी लोग भूखे रहते हैं। अन्न की लडाई लडने के लिए विवश बन गये हैं सामान्य जन। सत्ताधारी जनहित के लिए कुछ भी नहीं करते हैं। पूँजीपतियों के हित के लिए ही यहाँ योजनाएँ बनायी जा रही हैं। 'जीभ की गाथा' नामक कविता में कवि जीभ और दाँतों के माध्यम से यह व्यक्त करते हैं कि आज इस व्यवस्था में जीभ को सँभालकर रहना चाहिए। यहाँ जीभ आम जनता का एवं मूँह के अंतर दाँत राजनेताओं का प्रतीक है। कवि लिखते हैं-

“दाँतों ने जीभ से कहा -ढीठ, संभलकर रह
हम बत्तीस है और तू अकेली चबा जाएँगे
जीभ उसी तरह रहती थी इस लोकतांत्रिक मूँह में
जैसे बाबा आदम के जमाने में-
बत्तीस दाँतों के बीच बेचारी इकली जीभ।”^{१५०}

लोकतंत्र में जनता का अधिकार मतदान करना मात्र बन गया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उन्हें नहीं है। राष्ट्र में घटित होनेवाली किसी भी घटना पर अपने इच्छानुसार मत

प्रकट नहीं कर सकते। आम जनता द्वारा बोलना कभी यहाँ गुनाह बन जाता है। 'बस एक निशान छूट रहा था' कविता के माध्यम से कवि पूछते हैं-

“बस इसलिए कि तुम्हारे देश में हूँ
और तुम मुझे दो मुट्ठी अन्न देते हो
और रहने को कोठरी
में चुप रहूँ?”^{१५१}

मतदान तो लोकतंत्र का आधार है। जनता द्वारा दिए गए वोटों के बल पर शासन पर आनेवाली सरकार और राजनेता अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए जनता को धर्म, जाति, नस्ल, भाषा और प्रांत के आधार पर बाँटते हैं। इसलिए कवि को यह आशंका होती है कि मैं किसी ओर से बोल रहा हूँ। कवि हमेशा सबसे दरिद्र और कमज़ोर जनता के जीभ बनना चाहते हैं। लेकिन सत्ताधारियों की ओर से कवि को चुप रहने के लिए चेतावनी देते हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सत्ता का अतिक्रमण का अंकन करते हुए 'किसकी ओर से' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“यह तो तुम जानते ही हो तुम सबसे दरिद्र हो सबसे कमज़ोर
महज एक कवि मनुष्यता का फटा हुआ दूध
इसलिए तुम्हें चेतावनी दी जाती है कि तुम किसी की ओर से
नहीं बोलोगो, अपनी ओर से भी नहीं
उसके लिए राष्ट्र की संसद काफी है।”^{१५२}

स्वतंत्रता के बाद ही हमारे देश में लोकतंत्र की स्थापना हुई। स्वतंत्रता के पहले अंग्रेज़ी सरकार जनता को लूट रही थी। लेकिन बाद में देशी नेता ही जनता को लूटने लगी। सामान्य जनता पर कई तरह के अत्याचार होने लगे। पूँजी पर आधारित इस शासन व्यवस्था में आम जनता को कोई जगह नहीं है। अंग्रेज़ों के स्थान पर आज हमारे ही देश के नेताओं एवं मंत्रियों ने जनता को गुलाम बना दिया है। वर्तमान खोखले लोकतंत्र का पर्दाफाश करते हुए कवि 'प्रगतिशील लेखक संघ के ऐलबम से' शीर्षक कविता में लिखते हैं -

“सवाल इसका नहीं कि वहाँ जाये कि नहीं
 सवाल ये है कि वहाँ जो भिन्न है उनके लिए
 जगह भी है या
 नहीं
 इस महान लोकतंत्र में
 आज वो बुला रहे है और तुम वही बोल रहे हो जो बोलना
 चाहते हो ।
 कल वो कहेंगे वही बोलो जो हम बोले
 तरसों कहेंगे हम जो बोलें वो सुनो
 परसों बोलना बन्द कर देंगे
 और पाँचवें दिन देश निकाला ।”⁹⁴³

स्वतंत्र भारत में शासक वर्ग के मनमानेपन को दिखानेवाली कविता है ‘बिछावन’ ।
 देश के नागरिकों को लूटकर और देश को नीलाम पर चढ़ाकर वे सुखलोलुपता से जी
 रहे हैं। कवि की राय में अंग्रेज़ी वाइसराय और जनतंत्र सरकार के शासक दोनों में कोई
 भेद नहीं है। भारत में अंग्रेज़ी वाइसराय का जीवन जितना विलासिता प्रधान था उससे
 भी ज़्यादा है स्वतंत्र भारत के शासकों का । इस विलासिता प्रधान आरामदायक ज़िन्दगी
 को दिखाते हुए ‘बिछावन’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“माफ करना बेअदबी
 मैं तो बस यूँ ही देख रहा था कि
 कैसे रहते थे साहेब, कैसा था साहेब का बिछावन
 तुमसे कहीं ज़्यादा की मती, कहीं ज़्यादा गुदगुद है
 अपने मंत्री जी का बेड
 अब हम गूलाम नहीं ।”⁹⁴⁴

वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था जनता के खिलाफ है। जनता द्वारा जनता के लिए चुने
 गये शासक वर्ग की हिंसा रूपी सींग लगातार जनता की आँखों की ओर बढ़ रही है,
 धीरे-धीरे जनता को दृष्टिहीन बना देती है। कवि ‘सींग’ शीर्षक कविता में कहते हैं-

“लगातार बढ रहा है गेंडुर बाँधता
 इतना कि दोनों पलकें अब सट नहीं रही
 आँख पर अंकुश दाबता कोआ घोंटता पुतली
 मुझी से फूट मेरा सींग मुझी को बेधता।”^{१५५}

अरुण कमल की कविताएँ स्वाधीन भारत में लोकतंत्र के यथार्थ को हमारे सामने उकेरती हैं। भारतीय लोकतंत्र में नैतिकता का हास उनकी कविताओं में देखने को मिलता है। यहाँ अपराधियों एवं हत्यारों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। किसी न किसी प्रकार सत्ता में बने रहने के उत्सुक बन गए हैं राजनीतिज्ञ। वे वर्ग, वर्ण भेद मिटाने की बातें दुहराते रहते हैं। लेकिन जाति, धर्म, भाषा, एवं प्रांत को चुनाव जीतने का हथियार बना देते हैं। संवेदनशील कवि अरुण कमल इन लोकतंत्र विरोधी तत्वों से उत्पन्न आकुलताओं एवं व्याकुलताओं को अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं। साथ ही साथ जनता पर छा रहे संकट को देखकर प्रतिरोधी स्वर बुलंद करते हैं।

४.४.१५. सरकारी विद्रूपताओं का पर्दाफाश

अरुण कमल की कविता के केन्द्र में सामान्य जनता है। वे हमेशा सामान्य जनता के पक्ष में खड़े होकर सामंती-पूँजीवादी अत्याचारों का पर्दाफाश करते हैं। उनकी कविताएँ राजनीतिक विसंगतियों के यथार्थ को उजागर करती हैं। स्वतंत्रता के पहले स्वाधीन भारत के संबंध में जनता कई आशाएँ-आकाँक्षाएँ रखती थी। लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात वे सब चूरचूर होने लगीं। जनता स्वाधीन भारत के नेताओं के द्वारा गुलाम बन गयी। हर कहीं हिंसा, लूटपाट, अपहरण, बलात्कार, शोषण आदि बढ़ने लगे। अपनी ही जनता के शोषण में सरकार भी भागीदार होने लगी। सरकार की ओर से ही कई तरह के अमानवीय व्यवहार एवं अत्याचार जनता को भोगना पडा। इन अत्याचारों के विरुद्ध, अर्थात् सरकार के विरुद्ध आवाज़ उठाना तो खतरनाक है। आंदोलनों को किसी न किसी प्रकार दबाने का प्रयास सरकार की ओर से हो रहा है। आज सरकार या सत्ताधारी अपने हित को प्रधानता देते हैं। उनके सामने जनहित का कोई मतलब नहीं।

‘डायरी: मार्च ७८’ नामक कविता में अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए जनता को कुचला देनेवाली सरकार का चित्रण है। सरकार द्वारा गोली चलाने से कई लोग गली में मर जाते हैं। लेकिन रिपोर्ट के अनुसार सिर्फ एक मौत है। ऐसे मामलों को रफा-दफा करनेवाली सरकार का यथार्थ चित्रण करते हुए ‘जाल’ नामक कविता में कवि लिखते हैं-

“सरकारी रिपोर्ट थी
गोली चलने से सिर्फ एक मौत,
वो भी हॉस्पिटल में
तीन दिन बाद
पाँच हज़ार मुआवजा
भूल-चूक लेनी-देनी माफ!
कल रात मछुआरों ने डाला था जाल
आज मछली नहीं निकली तीन लाशें।”^{१५६}

सरकारी हित के विरुद्ध जनता खड़े रहे तो सरकार ही जनता पर हिंसा या अत्याचार करती है। बाद में इसकी पूरी ज़िम्मेदारी किसी राजनीतिक दल या धार्मिक दलों के सिर पर चढाकर सरकार स्वयं मुक्त होने का प्रयास करती है। सरकार के ऐसे प्रयासों को व्यक्त करते हुए कवि ‘हाथ’ नामक कविता में लिखते हैं-

“सरकार का कहना है
कारखाने में गोली चली, उसमें
ट्रेड यूनियन का हाथ है,
मारे गए मुसहर उसमें भी
किसान सभाओं का हाथ है
विद्यार्थियों के हंगामों में
छात्र-संगठनों का हाथ है”^{१५७}

जनसंगठनों को किसी न किसी प्रकार दबाकर अपनी सत्ता पर अडिग रहना ही सरकार का उद्देश्य है। कोई भी सामाजिक विषय है तो राजनेता जनता के सामने अलग-अलग मत प्रकट करते हैं। आपस में झगडा भी होते हैं। लेकिन इन सबके अंदर एक ही

लक्ष्य है अपने सत्ते को बनाये रखना। 'रावण के माथे' नामक कविता में रावण सत्ता का प्रतीक है। रावण के माथे रूपी राजनेता हमेशा एक दूसरे पर टकराते रहते हैं। लेकिन यह टकराहट तो बाह्य है अंदर ही अंदर सब एक है। इसको व्यक्त करते हुए कवि अरुण कमल लिखते हैं-

“लेकिन अंदर-अंदर रावण के ये
दस-दस माथे
रहे सोचते एक ही बात
एक ढंग से एक ही बात
रावण के ये दस-दस माथे।”^{94c}

अपने हित की पूर्ति को लक्ष्य करके सरकार मंत्रीमंडल की बैठक देर रात में करके नये-नये निर्णय लेती है। अपनी स्वार्थ पूर्ति के पीछे दौड़ते -दौड़ते राष्ट्र के प्रधान के जीवन में नींद भी नहीं। सरकार संबंधी हर ज़रूरी फैसला आधी रात के बाद लेनेवाली सरकार का चित्रण करते हुए 'घोषणा' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“मंत्रीमंडल की बैठक हमेशा देर रात
हर ज़रूरी फैसला आधी रात के बाद
फौज की तैनाती का हुक्म ढाई बजे रात
विरोधियों की नज़रबन्दी का आदेश पौने तीन
चीनी पर टैक्स बढ़ाने का फैसला मध्य रात्री के इर्द गिर्द
विदेश यात्रा की उड़ान रात दो बजे
विदेशी मेहमान का विमानपत्तन पर स्वागत तीन बजे
हत्यारों से मंत्रणा किसी भी क्षण
जीवन में नींद नहीं।”^{94e}

समाज में आज अत्याचारियों की संख्या बढ़ रही है। हिंसात्मक प्रवृत्तियों को देखने पर भी चाहे भय से हो या अन्य कारणों से सरकार मौन धारण करके रहती है। 'असत्य के प्रयोग' नामक कविता में कवि लिखते हैं-

“थर्र काँपता था पूरा इलाका
 दरोगा से मंत्री तक सब उसके जूते की गंध से पाते थे होश
 बिना मूँडेर वाली छत से वह दिन भर मूतता रहता
 आते जाते किसी भी आदमी के सिर पर खल खले
 ऐसा प्रताप था उसका
 यही अर्थ था उस युग में न्याय का।”^{१६०}

यहाँ जाति, धर्म, भाषा, प्रांत के आधार पर अनेक लोग मारे जाते हैं। अधिकारी वर्ग ही जनता को इन्हीं आधारों पर बाँटकर उनके मन में आपसी भेदभाव पैदा करते हैं। शासक ही हिंसा का मुँह बन जाता है। ‘चार दिन’ नामक कविता में हिंसा के पीछे कार्यरत सरकार एवं शासकों का पर्दाफाश किया है। जैसे-

“बदल बदल कर चाहिए खून सरकारी ब्लड बैंक को
 इस समाज की नींव में है बलि हिंसा
 हिंसा की इतनी पोशाकें हैं इतने तमाशे
 जो शासक हैं हिंसा का मुँह
 कभी इधर मोड़ देंगे कभी उधर”^{१६१}

सरकार अमीरों या कारपरेटों के हाथ की कठपुतली है। उनके आँकड़ों में शोषित गरीब आम जनता नहीं आती हैं। आम जनता की बुनियादी ज़रूरतों को भी निपटाने में असमर्थ सरकार पूँजीपतियों के लिए सदा कार्यरत है। ‘कुछ परिभाषाएँ’ नामक कविता में इसका चित्रण है।

आज हम नव उनिवेशवाद के दौर से गुज़र रहे हैं। उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमंडलीकरण नव उपनेविशवाद की देन है। आज हर सरकारी जगह से अपने हाथ खींचकर सरकार लगातार उदार हो रही है। फलस्वरूप पूरी सरकारी व्यवस्था खराब बन चुकी है। ‘सरकार और भारत के लोग’ शीर्षक कविता में सरकारी अस्पताल, सरकारी स्कूल, राशन की दूकानें, सरकारी नल आदि साधारण जनता के लिए आश्रय होनेवाली

सरकारी जगहों की शोचनीय स्थिति व्यक्त करते हैं। सरकारी अस्पताल का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं-

“जैसे सरकारी अस्पताल थे लेकिन वहाँ
रूई पट्टी तक न थी, नर्सों स्वेटर बुनती रहती
डॉक्टर कभी-कभी सैर-पर आते
और बेड के नीचे कुत्ते सोये रहते
केवल लाश-घर पर सरकार का पूरा नियन्त्रण था।”^{१६२}

साधारण जन बुनियादी चीज़ों से वंचित एवं महंगाई से त्रस्त हैं। यहाँ राशन की दूकानें पहले ही उठ गई थीं। घासलेट पेट्रोल से भी महंगा बन गया था। सरकारी नलों में पानी नहीं था बल्कि उनमें हवा भरी थी। हिंसा इतनी बढ़ गयी है कि कोई भी कहीं भी मारा जा सकता। इस प्रकार सरकारी व्यवस्था तो एक हद तक बिगडी हुई। उदारीकरण और निजीकरण के कारण देश के ऊपर कर्ज का बोझ है। हमारे देश में आज अमेरिका जैसे साम्राज्य शक्तियों का वर्चस्व है। देश के ऊपर इतना कर्ज चढ़ गया है कि सारे कल-कारखाने पूँजिपतियों के हाथों में बेच देते हैं। बिगडी हुई सरकारी व्यवस्था का चित्रण करते हुए ‘सरकार और भारत के लोग’ शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

“सरकार बिगडे ज़मींदार की तरह सारे कल कारखाने चम्मच कटोरी
बेच रही थी और अंत में उसने बच्चों के दूध की बोतलें भी बेच दीं
तब एक माँ ने कहा - सरकार जी
ऐसा करें कि संसद भी बेच दें
और आप भी वैसे रहें जैसे हम यानी भारत के लोग
अब सरकार ही क्या करेगी रहकर?”^{१६३}

सरकार जनता से सब कुछ छिपाने की कोशिश में है। इसलिए ही वे मीडिया कर्मी एवं साहित्यकार जैसे लोग जो सबकुछ खुलकर लिखते हैं और समाज के सामने लाते हैं उन पर प्रतिबंध लगाती है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाना आज सरकारी

नीति बन गई है। साथ ही जो सरकार को खुशामद करते हैं झूठी चापलूसी करते हैं सरकार उन्हें उन्नत स्थानों में बिठा देती है और कई पुरस्कार भी देती है। 'अमरता की खोज' नामक कविता में एक कवि को खाँसी आ गई। यहाँ खाँसी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रतीक है। देश के प्रधान से मिलने के लिए चले गये कवि को प्रधान 'राजकवि' घोषित करते हैं। तब से लेकर कवि ने तय किया कि आज से वह कभी नहीं खाँसेगा। खाँसी को दबाने के लिए बहुत सारी कोशिश करने के बाद भी खाँसी आ गई, तब उन्हें चुप कराने के लिए देश के प्रधान कवि के पास आते हैं। क्योंकि उन्हें डर था कि जनता सुन लेगी। कवि अरुणकमल के शब्दों में-

“प्रधान अभी अभी अमेरिका से लौट नीम का दत्तावन कर रहा था
 उसे फौरन कवि को राजकवि घोषित किया
 और अतिथि कक्ष में ठहराया
 कवि ने तै किया आज वह खाँसेगा नहीं
 अब वह कभी नहीं खाँसेगा।
 उसने अपने को सात सात कंबला में लपेटा
 पर रात हुई, चाँद उगा, फरवा बही और दवाते दवाते भी कवि को
 जोर की खाँसी उखड़ी जैसे कोई उस भीतर से कोड रहा हो
 और प्रधान मय लावलशकर भागा भागा भागा आया
 हे कवि राज मेरा कुछ खयाल करो जनता सुन लेगी तो क्या होगा।”^{१६४}

‘एक लोकप्रिय सरकार के सात दिन’ नामक कविता में कवि जनसंगठनों से डरनेवाली सरकार या सत्ता पर तीखी व्यंग्य करते हैं। सामान्य जनता पर सरकार द्वारा, किये जानेवाले अत्याचारों का पर्दाफाश करते हुए कवि लिखते हैं-

“पहले ही दिन सरकार ने आँगनवाड़ी सेविकाओं पर लाठियाँ भाँजी
 दूसरे दिन वृद्धावस्था पेंशन प्रदर्शन पर पानी के फौव्वारे
 तीसरे दिन छँटनीग्रस्त शिक्षा मित्रों के घरने पर कुत्ते छोड
 चौथे दिन उजडे झोंपडवासियों पर घोडा दौडाए
 पाँचवे दिन बेरोजगारों के जुलूस को जीप से रौंदा

छठे दिन मूक-बधिर नेत्रहीनों पर आँसू गैस के गोले ठोंके
 सातवे दिन बालिका हत्या का विरोध करती
 औरतों पर गोलियाँ दागी
 और सात को मौके पर ढेर किया।”^{१६५}

जनता के वोटों से सरकार सत्ता पर आती है। लेकिन सत्ता पर आने के बाद उन्हें जनता से भय है। जनता के खिलाफ अत्याचार करती है। जनता में होनेवाली छोटी-सी हरकत चाहे वह सोयी पत्नी की करवट बदलना हो, पत्ता हिलना हो, बच्चों के हँसना हो उन्हें खतरा महसूस होता है। खुद अपने ही साँस से उन्हें डर लगता है। जनशक्ति से डरनेवाली सरकार जनविरुद्ध नीतियाँ अपनाती है। अपनी सत्ता के लिए खतरा महसूस होने पर वह पुलिस या फौज के सहारे किसी न किसी प्रकार जनता को दबाती है। इस संबंध में अरुण कमल लिखते हैं-

“पुलिस तैनात हो गयी
 बन्दूकों में गोलियाँ भरी रहेंगी
 फौज का आग्रह कर दिया गया।”^{१६६}

सरकार कभी-भी जनता की मामूली आवश्यकताओं को दृष्टि में डालकर देश में सुधार नहीं लाती है। अपने वोटों की संख्या बढ़ाकर सत्ता बनाए रखने के लिए सुधार की योजनायें लेकर आती है। मध्यप्रदेश के एक गाँव में सरकार ने आदिवासियों के लिए बिजली लगायी थी। लेकिन आदिवासियों ने इसका विरोध किया। समाचार पत्रों के इस खबर के आधार पर लिखी गई कविता है ‘तमसो मा ज्योतिर्गमया’। इस कविता के द्वारा कवि सरकारी योजनाओं के खोखलेपन को उजागर करते हुए लिखते हैं-

“उन्हें रोशनी नहीं चाहिए
 बिजली के तार और खम्भे
 ट्यूब और बल्ब नहीं
 नहीं चाहिए
 उन्हें रोशनी नहीं चाहिए

एक अँधेरा जो सब अँधेरे से बड़ा और घना है
जहाँ रात ही रात है हज़ारों साल से वीहड जंगलों
और गहरे कुओं के अँधेरे से भी
बड़ा और घना है
छोटे दिमाग का अँधेरा।”^{१६७}

अंधेरा यहाँ अशिक्षा का प्रतीक है। कवि की राय में आदिवासी इलाकों से अंधेरा दूर करना सरकार का लक्ष्य है तो पहले उन्हें ज्ञानरूपी प्रकाश देना है। शिक्षा के अभाव के कारण बिजली की उपयोगिता वे समझ नहीं पाते हैं। इसलिए ही वे बिजली लगाने का विरोध किया। पूँजीवादी शासक-वर्ग द्वारा ही शासन व्यवस्था चल रही है। पूँजीवादी शासक किसी न किसी प्रकार अपनी सत्ता बनाये रखने की कोशिश में है। पूँजी के बल पर चलनेवाली शासन प्रणाली में अन्याय, अत्याचार, शोषण एवं भ्रष्टाचार फैल गए हैं। ‘कविता २०१३’ शीर्षक कविता के द्वारा कवि यह पूछने के लिए विवश बन गये हैं की पूँजीवाद से बड़ा कूड़ा इस पृथ्वी पर और क्या है?

कवि अरुण कमल भली-भाँति जानते हैं कि वर्तमान जनवादी व्यवस्था में जनता के लिए कोई स्थान नहीं। पूँजीपति शासक वर्गों के हाथों में जनता दम तोड़ रही है। अपनी कविताओं में वर्तमान शासन व्यवस्था की विद्वेषताओं को व्यक्त करनेवाले कवि बेहतर दुनिया के निर्माण के लिए एक महात्मा की कल्पना करते हुए ‘कविता २०१३’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“दुनिया को साफ करने के लिए एक मेहतर नहीं
हाथ चाहिए करोड़ों करोड़
जहाँ आदमी फेंक दिया जाता है रात के जूठन की तरह
जहाँ बिक रही है स्वर्णरेखा जहाँ बिक रहा सुमेरू की
जहाँ बिक रहे तीर्थों के जल और दर्शन की पंक्तियाँ
चाहिए ऐसा महात्मा जो खुद भी ओढ़े
और सबको ओढ़ाये।”^{१६८}

४.४.१६. निष्कर्ष

अरुण कमल की कविताएँ सामाजिक यथार्थ को उजागर करती हैं। मामूली आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तड़पनेवाले आम आदमी ही उनकी कविताओं के केन्द्र में हैं। मेहनतकश - श्रमजीवी लोगों की अभाव ग्रस्त ज़िन्दगी एवं रोज़ी रोटी के लिए संघर्ष को कवि वाणी देते हैं। वर्तमान समय की सामाजिक विसंगतियों एवं विडंबनाओं का चित्रण उनकी कविताओं में देख पाते हैं। उनकी कविताएँ स्त्री जीवन के प्रति उदात्त दृष्टिकोण रखती हैं। वर्तमान जनतांत्रिक व्यवस्था का खोखलेपन, मनमाने शासक वर्ग, मीडिया की अपसंस्कृति आदि का चित्रण उनकी कविता में है। पूँजीवादी - बाज़ारवादी ताकतें सामान्य जनता को लूट रही हैं। उदारीकरण, निजीकरण और बाज़ारीकरण के नाम पर देश के प्रधान एवं मंत्रीगण विभिन्न समझौते में हस्ताक्षर रखते हैं। हस्ताक्षर करते-करते कभी देश भी आज बिकने की चीज़ बन जाता है।

जाति, धर्म, भाषा, प्रांत के आधार पर जनता को बाँटने में देशी नेता ही तुले हुए हैं। इन्हीं के आधार पर अन्य अपराधी एवं हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। इन सबका चित्रण अरुण कमल की कविताओं में देख पाते हैं। आज हर कहीं मानवीय मूल्यों का हास देख रहे हैं। स्नेह, दया, करुणा, ममता आदि मानवीय गुण अब कम देखते हैं। भाईचारे का भाव एकदम समाप्त हो चुका है। इस मूल्य क्षरण पर कवि की घबराहट उनकी कविताओं में है। ग्रामीण जीवन पर बल देनेवाले कवि परिस्थिति पर पड़े हुए संकट पर भी आतुर हैं। मानवीय संवेदना पर बल देनेवाले कवि मानवीय जीवन को दुष्कर बनानेवाले पारिस्थितियों से मुठभेड़ करते हैं। वे हमेशा समाज के शोषित पीड़ित सामान्य जनता के पक्ष में खड़े रहते हैं। अत्याचारी पूँजीपती-शासक वर्ग के चरित्र को उद्घाटित करके जनसंगठन पर बल देते हैं। एक संवेदनशील व्यक्ति ही अपने सहजीवियों

की समस्याओं को समझ सकते हैं। सिर्फ समझना ही नहीं उनका साथ देना ही अनिवार्य है। निश्चय ही अरुण कमल की कवितायें भारतीय जनमानस में मानवीय संवेदना की स्थापना करने के लिए सही मायने में सक्षम हैं।

संदर्भ सूची

१. अरुण कमल - गोलमेज़, पृ.सं.१३४.
२. वैभव सिंह - सृजनात्मकता के आयाम, पृ.सं.१४५-१४६.
३. अरुण कमल - कविता और समय, पृ.सं.२३२.
४. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.८८.
५. अरुण कमल - कविता और समय, फ्लैप से
६. संजय रणख्रांबे - अरुण कमल की कविता का जनवादी पक्ष, पृ.सं.७३.
७. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.५९.
८. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.७६.
९. परमानंद श्रीवास्तव - कविता का अर्थात्, पृ.सं.२९.
१०. अरुण कमल - कथोपकथन, पृ.सं.४९.
११. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.३४
१२. वैभव सिंह - सृजनात्मकता के आयाम, पृ.सं.९८
१३. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.३४
१४. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं. १०४.
१५. अरुण कमल - मैं वो शंख्र महाशंख्र, पृ.सं.११.
१६. अरुण कमल - फ्लैप से
१७. अरुण कमल - योगफल फ्लैप से
१८. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.१३.
१९. विधिशर्मा - कविता की वापसी और अरुणकमल का काव्य, पृ.सं.११३.
२०. वैभव सिंह - सृजनात्मकता के आयाम, पृ.सं.१५६.
२१. अरुण कमल - मैं वो शंख्र महशंख्र, पृ.सं.५६.
२२. अरुण कमल - मैं वो शंख्र महशंख्र, पृ.सं.५६.

२३. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.६८.
२४. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.१६.
२५. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.८२.
२६. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.४४.
२७. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.३८.
२८. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.६१.
२९. वैभव सिंह - सृजनात्मकता के आयाम, पृ.सं.१५६.
३०. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.७६-७७.
३१. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.५८.
३२. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.३३.
३३. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.११.
३४. विधि शर्मा - कविता की चापसी और अरुणकमल का काव्य, पृ.सं.६०.
३५. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.१३.
३६. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.३०.
३७. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.७७.
३८. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.४०-४१.
३९. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.४०.
४०. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.४४.
४१. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.३२.
४२. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.८०.
४३. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.७०.
४४. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.३४.
४५. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.५१.
४६. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.८०.
४७. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.६९.

४८. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.२१.
४९. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.७१.
५०. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.५८.
५१. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.६१.
५२. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.४३.
५३. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.४४.
५४. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.७३.
५५. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.२९.
५६. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.११.
५७. वैभव सिंह - सृजनात्मकता के आयाम, पृ.सं.११२.
५८. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.१६.
५९. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.४७.
६०. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.४९.
६१. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.४८.
६२. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६९.
६३. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.८२.
६४. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.३०.
६५. अरुण कमल - कथोपकथन, पृ.सं.३३.
६६. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.४८.
६७. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.८५.
६८. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.३६.
६९. वैभव सिंह - अरुणकमल - सृजनात्मकता के आयाम-२, पृ.सं.१३९.
७०. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.१९-२०.
७१. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.१९.
७२. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.२०.

७३. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं. २४-२५.
७४. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.८५.
७५. अरुण कमल - कथोपकथन, पृ.सं.३३.
७६. अरुण कमल - गोल मेज़, पृ.सं.२२९.
७७. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६२
७८. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.५९.
७९. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.५५-५६.
८०. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६८.
८१. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६६
८२. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.४७.
८३. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६५.
८४. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.३७
८५. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.५६.
८६. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.१७.
८७. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.८३.
८८. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६९.
८९. वैभव सिंह, सृजनात्मकता के आयाम, पृ.सं.३३.
९०. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.३३.
९१. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.३४.
९२. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.७१.
९३. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.७१.
९४. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६७.
९५. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.४९.
९६. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.३०.
९७. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.६९-७०.

९८. अरुण कमल - गोल मेज़, पृ.सं.१९१.
९९. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.७६.
१००. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.१५.
१०१. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.४३-४४.
१०२. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६१.
१०३. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.८२.
१०४. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.८८.
१०५. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.२१.
१०६. अरुण कमल - कथोपकथन, पृ.सं.३४-३५.
१०७. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.१३.
१०८. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.१६-१७.
१०९. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.२०.
११०. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.२०-२१.
१११. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.७६.
११२. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.३५.
११३. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.४४.
११४. वैभव सिंह - सृजनात्मकता के आयाम, पृ.सं.२६.
११५. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.५५.
११६. अरुण कमल - नए इलाके में, पृ.सं.७५.
११७. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.७५.
११८. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.२४.
११९. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.४६.
१२०. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.२५.
१२१. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.५१.
१२२. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.६३.

१२३. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६०.
१२४. संतोषकुमार त्रिपाठी - अज्ञेय से अरुण कमल (भाग२) पृ.सं.२२०.
१२५. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.७१.
१२६. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.३०.
१२७. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.५९.
१२८. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.१०२
१२९. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं. ५१
१३०. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.५८.
१३१. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.२३.
१३२. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.५०.
१३३. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.४६.
१३४. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.२७
१३५. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.८५
१३६. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.५२
१३७. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.४५
१३८. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.६४.
१३९. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.८२.
१४०. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.८२.
१४१. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.६१.
१४२. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.३३.
१४३. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.७६.
१४४. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.५५.
१४५. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.३१.
१४६. अरुण कमल - सबूत, पृ.सं.६२.
१४७. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.६८.

१४८. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.६८.
१४९. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.५४.
१५०. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.५५
१५१. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.६१.
१५२. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.९४.
१५३. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.५७.
१५४. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.३३.
१५५. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.सं.७२.
१५६. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.४३.
१५७. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.४३.
१५८. अरुण कमल - अपनी केवलधार, पृ.सं.४४.
१५९. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.६६.
१६०. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.६४
१६१. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ.सं.७१.
१६२. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.७२
१६३. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं.७३
१६४. अरुण कमल - मैं वो शंख महाशंख, पृ.सं. ९१-९२.
१६५. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.६८.
१६६. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.८२.
१६७. अरुण कमल - अपनी केवल धार, पृ.सं.२५.
१६८. अरुण कमल - योगफल, पृ.सं.८२.

पाँचवाँ अध्याय

कात्यायनी की कविताओं में अभिव्यक्त
मानवीय संवेदना

समकालीन हिंदी रचना संसार में कात्यायनी का महत्वपूर्ण स्थान है। कात्यायनी स्त्रीवाद के सीमित दायरे के बाहर समस्त मानव पर चिंता करनेवाली लेखिका हैं। क्रांतिकारी वामपंथी विचाराधारा से प्रेरित कवयित्री अपनी कविताओं में सामाजिक प्रतिबद्धता का स्वर बुलंद करती हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विषयों को लेकर लिखनेवाली कवयित्री समकालीन कविता के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं। अपने कवि-कर्म के प्रति गंभीर उत्तरदायित्व का भाव रखनेवाली कात्यायनी की कविताओं में संपूर्ण समाज की तमाम गतिविधियों का अंकन है। मानवीय संवेदना के धरातल पर लिखी हुई इनकी कविताओं से रूबरू होने के पहले हम इनके जीवन परिचय से अवगत होते हैं।

५.१. जीवन परिचय

कात्यायनी का जन्म ७ मई १९५९ को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में हुआ। उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षों से भरा हुआ था। हिंदी साहित्य में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे लंबे समय तक विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में स्वतंत्र लेखन कर रही हैं। हिंदी की अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विषयों को लेकर लेख प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने लगभग सात वर्षों तक 'नवभारत टाइम्स' और 'स्वतंत्र भारत' का संवाददाता के रूप में भी कार्य किया है। उन्होंने अपनी साहित्य रचना का शुरुआत लगभग १९८० से की थी। अपना जीवन परिचय और समाज एवं अडोस पडोस की ज़िन्दगी से प्रेरणा पाकर वे लिखने लगीं। साहित्य रचना के प्रेरणास्रोतों के संबंध में वे लिखती हैं - "प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, रचना का सारा कच्चा माल मुझे अपनी राजनीतिक-

सामाजिक सक्रियता के दौरान मिला। अतीत के जीवन से भी, घर-परिवार से, संगी-साथियों से जो चरित्र और स्थितियाँ रचनाओं में आयी उन्हें भी रचना के कच्चे माल के रूप में देखने की वस्तुपरक निर्ममता इसी ज़िन्दगी के दौरान मिली।”¹

अनेक देशी एवं विदेशी कवियों के विचारों से वे प्रभावित हैं। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय एवं पाब्लो नेरूदा, नाजिए हिकाकत, ब्रेख्त और मयनोवस्की इनमें कुछ कवि हैं। आधुनिक संदर्भों को जोड़कर लिखी ‘गार्गी’ उनकी पहली रचना थी। हिंदी की अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ एवं कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। उनकी कुछ कविताएँ अंग्रेज़ी, पंजाबी, मराठी एवं अन्य भाषाओं में अनूदित और प्रकाशित हुई हैं। अपनी सृजनात्मकता के संबंध में वे लिखती हैं- “१९८६ तक कविता प्रेमपत्रों की चौहदियों में ही कैद थी। उसी वर्ष के उत्तरार्द्ध में पहली कविता ‘गार्गी’ छपी और दूसरी दो कविताएँ। फिर कहानियाँ। फिर मैं लिखती और छपती रही।”²

एक समाज सेविका का उत्तरदायित्व पूरी तरह से निभानेवाली कवयित्री ने अपने परिवेश को छोड़कर रचना नहीं की है। उनकी रचनाओं में सामाजिक विसंगतियों या विद्रूपताओं का उद्घाटन मात्र नहीं क्रांति की आवाज़ भी हम सुन सकते हैं। उन्हें मुक्तिबोध और धूमिल के उत्तराधिकारी मानते हुए विष्णुखरे लिखते हैं - “यह एक विचित्र चुनौती-भरा तथ्य है कि जहाँ १९६५-७५ के केन्द्रीय क्रांतिकारी दौर के अधिकांश कवि अपनी पुरानी जुझारू रचनाओं से बहुत दूर हो चुके हैं। वहाँ कत्यायनी शायद ऐसी अकेली रचनाकार हैं जो बदलाव के कई मोर्चों पर सक्रिय हैं और चूँकि उन्होंने इस समय और समाज का भयावह, निर्मम, थानेदार यथार्थ देखा है इसलिए उनमें अपनी कविता और कवितामात्र के औचित्य, प्रासंगिकता और कारगारी को लेकर एक ऐसा आत्मसंघर्ष है जो शायद मुक्तिबोध और धूमिल के बाद उन्हीं में दिखायी देता है। समाज उनके सामने ईमान है और कविता कुफ़्र, लेकिन दोनों से कोई निजात नहीं है - बल्कि हिंदी कविता के ‘रेआलपोलिटिक’ से वे एक लगातार बहस चलाये रहती हैं।”³

५.२. सृजन परिचय

कात्यायनी ने अपनी क्रांतिकारी विचार दर्शन से साहित्य की विभिन्न विधाओं की समृद्धि की है। कविता, कहानी, निबंध एवं अन्य सामाजिक राजनीतिक लेखों के माध्यम से उन्होंने आम आदमी की मानसिकता को नया आयाम प्रदान किया है। उनकी रचनायें शोषित वर्ग के जीवन यथार्थ का अंकन करके मानव मुक्ति की कामना करती हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक तौर पर सक्रिय कवयित्री ने अपनी रचनाओं में कई मुद्दों को लेकर सवाल उठाया है। उनकी रचनाओं का परिचय निम्न लिखित है-

कविता संग्रह

१. सात भाइयों के बीच चंपा (१९९४)
२. इस पौरुषपूर्ण समय में (१९९९)
३. जादू नहीं कविता (२००२)
४. राख्र अँधेरे की बारिश में (१९९७)
५. फुटपाथ पर कुर्सी (२००९)
६. एक कुहरा पारभासी

निबंध संग्रह

(१) दुर्ग-द्वार पर दस्तक १९९७ (स्त्री के अन्तर्जगत-बहिर्जगत और मुक्ति के प्रसंग में कुछ बातों का संकलन) (२) षड्यंत्ररत मृतात्माओं के बीच (सांप्रदायिक, फासीवाद एवं साहित्य की सामाजिक भूमिका पर आधारित निबंधों का संकलन) (३) कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत - (समाज, संस्कृति और साहित्य पर केन्द्रित निबंधों का संकलन) (४) प्रेम, परंपरा और विद्रोह (प्रेम, परंपरा और सामाजिक क्रांति के प्रश्न के सभी पक्षों का उद्घाटन करनेवाली पुस्तक)

५.३. कविता संग्रह - एक परिचय

इस पौरुषपूर्ण समय में कात्यायनी की कविता यथास्थिति की निर्मम आलोचना करती है। हमारे समय की त्रासदियों एवं विडम्बनाओं से जूझनेवाली कविता वर्चस्ववादी शक्तियों से हठी प्रतिरोध भी करती है। कात्यायनी की कविता अपने आसपास की जीवन संवेदना के धरातल पर उद्घाटित करती है। शोषित वर्ग का जीवन यथार्थ को समझनेवाली कवयित्री ने अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक तौर के कई मुद्दों पर सवाल उठाया है।

५.३.१. सात भाइयों के बीच चंपा (१९९४)

कात्यायनी का पहला काव्य संग्रह 'सात भाइयों के बीच चंपा' नामक काव्य संग्रह १९९४ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में छह शीर्षकों में संयोजित ६६ कवितायें संकलित हैं। 'इस स्त्री से डरो' नामक पहले खंड की कविताएँ ये हैं - 'इस स्त्री से डरो', 'भाषा में छिप जाना स्त्री का', 'स्त्री का सोचना एकांत में', 'देह न होना', 'दाहक जीवन - दाह', 'कवि से डर गयी स्त्री', 'हाँकी खेलती लड़कियाँ', 'सात भाइयों के बीच चंपा', 'शहर को चुनौती', 'प्रार्थना', 'नहीं हो सकता तेरा भला', 'ड्योडी भीतर दुपहरिया', 'अपराजिता', 'वह रचती है जीवन और...', 'सपने में तैरते हुए', 'गार्गी', 'गुड की डली', 'माँ के लिए एक कविता'। इन कविताओं के केन्द्र में औरत है। नारी जीवन की आशाएँ, आकांक्षाएँ, सामर्थ्य एवं विवशताओं का सजीव अंकन इन कविताओं में है। पुरुष सत्तात्मक समाज ने उन्हें युग-युगों से दर्द ही दिया है। मृत्यु में ही वे अपनी मुक्ति की कामना करती हैं। लेकिन आज अपनी शक्ति को पहचाननेवाली औरत पूरी दुनिया को चेतावनी देती हुई कहती है-

“देह नहीं होती है

एक दिन स्त्री

और

उलट-पुलट जाती है

सारी दुनिया

अचानक”^४

‘ऐसा किया जाये कि’ नामक दूसरे खंड की कविताएँ ये हैं - कला और सच बेहतर है, ऐसा किया जाएँ कि, एक इच्छा, बारिश के बाद, जीना, हट, चक्राकार चिंतन, कुण्डलाकार विचार, उनका भय, परमज्ञान की खोज, कला कला के लिए, अन्वेषण। इस खंड की कविताएँ कला और जीवन से संबंधित हैं। जीवन के प्रति अदम्य आस्था रखनेवाली कवयित्री लोगों से एक नया समाज रचने का आह्वान करती हुई लिखती हैं-

“नया समाज रचने की

तैयारी करें

किसी नये आविष्कार की उत्तेजना

किसी दार्शनिक चिंता या उलझन में जिये

जीना फिर यहाँ से शुरू करें।”^५

‘भागने की खिलाफ’ नामक तीसरे खंड में ये कविताएँ हैं -दिल्ली पर एक कविता, एक दिन शेषजी के घर, धँसो! धँसो! जल्दी धँसो!!, कवि और कर्ज, महान लोग, लौह पुरुष, योद्धा, भागने के खिलाफ एवं बयान, नई ईश-वन्दना। राजनीति एवं चाटूकारिता, बुद्धिजीवियों का अनैतिक सोच एवं समाज में व्याप्त अराजकता का अंकन है इन कविताओं में। मध्यवर्ग के बौद्धिक ढोंग को लक्ष्य करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“बहुत बड़े होते हैं कद में

आम लोगों से

हमारे समय के ये महान लोग

पर उनकी भूलों का कद

इतना अधिक बड़ा होता है

कि वे प्रायः उनकी छाया में खो जाते हैं।”^६

‘निविड तिमिर में साथ’ नामक चौथे खंड में ये कविताएँ हैं - पुराना पडा प्यार(एक), पुराना पडा प्यार (दो), पुराना आलबम, छुट्टियों के दिन, निविड तिमिर में, एक दिन तुम आना, विदा, यदि हम यहाँ नहीं होते तो...। मानव मन की कोमल अनुभूतियों का अंकन करनेवाली कवयित्री पुराना पडने से प्यार को बचाने की इच्छा प्रकट करती है। क्योंकि पुराना पडा प्यार को किसी संग्रहालय में भी जगह नहीं पा सकेगा। प्रेम की गहन संकल्पना को व्यक्त करते हुए वे लिखती हैं-

“तपने को जलने को
विस्तृत मैदानों में
नए रास्ते बना रहे लोगों में
रहने
नया प्यार पाने को
हम-तुम साथ चले थे।”⁹

‘कहीं कोई आग’ नामक पाँचवें खंड की कविताएँ अग्रज कवि त्रिलोचन के लिए समर्पित हैं। इस खंड की कविताएँ ये हैं - कहीं कोई आग, सच्चे हैं शब्द इन्हें पढ लेना, जल के तल पर विह्वल जीवन, दुख के बादल, जीवन की गति (एक) (सॉनेट), जीवन की गति (दो) (सॉनेट), जीवन का गीत, जल-लिली, पण्डूक युगल से, प्रसव-पीडा, कविता में सीमा, दुश्चिन्ता शिशु मन की, इसीलिए आहत है, बिल्ली के बच्चों को मत मारो बेटा, बीमारी में बेटे के साथ (एक), बीमारी में बेटे के साथ (दो), प्यार को निर्बन्ध कर दो, मन उदास है आज...। जीवन के प्रति आस्था, प्रकृति प्रेम, नारी जीवन का कोमल पक्ष जैसे मातृत्व, प्यार, सहानुभूति आदि के प्रति कवयित्री का उदात्त दृष्टिकोण प्रकट करती है ये कविताएँ। सहजता एवं नैसर्गिकता पर बल देनेवाली कवयित्री प्यार की सीमा को, कविता की सीमा को एवं जीवन की सीमा को तोड़-फोड़ करने का आह्वान करती हुई लिखती हैं-

“जीवन को सार-सार गह लेना
 सह लेना
 सत्ता को निचोडकर अमूर्तन में कह देना
 बहूत कठिन लगता है
 कविता की सीमा यह
 जीवन की सीमा से उपजी है।
 अपनी ही सीमा की चिन्ता है
 उसे तोड़ देने की चिन्ता है!”^८

हमारे आसपास की ज़िन्दगी से टकराती हुई ये कविताएँ भविष्य का सुंदर सपना देखने के लिए प्रेरणादायक हैं।

५.३.२. इस पौरुषपूर्ण समय में

कात्यायनी का दूसरा कविता संकलन ‘इस पौरुषपूर्ण समय में’ १९९९ में प्रकाशित हुआ। इस संकलन में ७४ कविताएँ संकलित हैं। कविताएँ ये हैं - सहिष्णु आदमी की कविता, बूढ़े आदमी की कविता, अनिद्रा के रोगी की कविता, रात के सन्तरी की कविता, सपना देखनेवाले की कविता, कालयात्री की कविता, उद्विग्न आदमी की कविता, सफाईपसंद आदमी की कविता, असंतुष्ट आदमी की कविता, दुखी आदमी की कविता, भुलक्कड आदमी की कविता, बुर्जुग राहगीर की कविता, अन्वेषक की कविता, आलोचक की कविता, यथार्थवादी प्रेमी की कविता, दूध के जले की कविता, छॉछ फूँककर पीनेवाले की कविता, सदगृहस्थ की कविता, आशावादी नागरिक की कविता, परदा उठाने-गिरानेवाले की कविता, स्टेज-लाइटिंग का काम करनेवाले की कविता, प्राम्पटर की कविता, फाँसी की सजा पाये व्यक्ति की कविता, वकील की कविता, जज की कविता, ज्ञानी की कविता, कुपमण्डूक की कविता, आम सहमति पर पहुँचे हुए लोगों की कविता, मग्दालिन की पहली प्रार्थना-कविता, मग्दालिन की दूसरी प्रार्थना -कविता, इस पौरुषपूर्ण समय में, त्रियाचरितं पुरुषस्य भाग्यम्, एक असम्पन्न कविता की अति

प्राचीन पाण्डुलिपि, एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना, औरत और घर, एक गौरतलब सिचुएशन, जागना, जानना, मरना, जीना, सोचना, समझना, बीत जाना, डरना, सहना, बच निकलना, कहना, फिर वहीं रहना, और जीते चले जाना, न रुकना, नाउम्मीद हो जाना, एक ढलती सदी का सच, फैसला, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, सूचना का अधिकार, अभिव्यक्ति की आज़ादी, अब सोचने की बात यह है कि, शोक-गीत, न कोई संस्मरण, या कि होगा? बनी नहीं कविता? जी चाहता है..., वे नहीं सोचते, आस्था का प्रश्न, नये रामराज्य का फरमान, क्या स्थगित कर दें कविता? एक दावत में फ्रान्सिस फुकोयामा के साथ, धुरखेल, हत्यारा, एक फैसला, फौरी तौर पर कविता के खिल्लाफ, यह वापसी महज़ भूगतने के लिए नहीं, आम आदमी का प्यार, स्वप्नलोक से निष्कासित और स्वप्नकारा से मुक्ति।

इस संग्रह की प्रारंभिक तीस कविताओं के शीर्षक में कविता शब्द आया है। इसमें समाज के विभिन्न वर्गों एवं विभिन्न धंधों में जुड़े लोगों की बौद्धिक एवं मानसिक चिंतन व्यापार का चित्रण है। संग्रह की कुछ कविताएँ स्त्री जीवन से संबंधित हैं। नारी जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं को चित्रित करनेवाली ये कविताएँ भाषा, भाव एवं संवेदना की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। 'एक ढलती सदी का सच' शीर्षक कविता में ढलती हुई सदी का चित्रण कवयित्री यों करती हैं-

“कानून
साफ गले से बोलता है
संविधान
एक दार्शनिक चुप्पी में डूबा रहता है
और सत्ता
भाषा की शुद्धता का आग्रह करती है
जब लोग
मूँह खोलते हैं

तो गले से खून के थक्के बाहर आते हैं।

धीरे-धीरे वे पिघलते हैं

अनगढ़ से शब्दों में ढलते हुए।

अर्थ हृदय तक प्रवाहित होते हैं।

यूँ तक सदी ढलती है।”^{१९}

इस संग्रह की कविताओं के माध्यम से कात्यायनी ने समाज के विभिन्न स्तरों के लोगों का चित्रण किया है। इस संग्रह की कविताओं का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए विष्णुखरे लिखते हैं - “यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि कला और आस्था के कई स्तर उठाते हुए भी कात्यायनी हिंदी की समूची जुड़ारू, प्रतिबद्ध कविता में अपने जागरूक वैविध्य से अनूठी उपस्थिति बना चुकी हैं और विकासशील सशक्त युवा कवयित्रियों की सुखद रूप से बढ़ती हुई कतार में तो वे अपने तरह की एकमात्र हैं।”^{१०} सचमुच इस संग्रह की कविताएँ अपने समय के अँधेरे को चुनौती दे रही हैं।

५.३.३. जादू नहीं कविता

कात्यायनी का तीसरा कविता संकलन ‘जादू नहीं’ कविता संग्रह २००२ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताएँ जीवन को नये सिरे से और ज़्यादा गहराई में जाकर पडताल करती है। इस संग्रह में बहतर (१२) कविताएँ हैं। कविताएँ ये हैं - महानगर में उम्मीदें, ‘कविताएँ, रॉयल्टी, जूते, मूलीटिण्डि, आलोचना वगैरह...’, ‘सुसंकृत, भद्र जिम्मेदार नागरिक होने के बारे में कुछ उद्दण्ड गैर जिम्मेदाराना विचार’, लागा चुनरी में दाग, बनना है भला मानुस, सौ साल कैसे जियें, राजधानी में ‘सीज द डे, सीज द आवर’ के नारे पर अमल का एक दिन, चिंतन चमत्कारी उनका जीवन है जादुई, पोंडड और चूँडड, बचे हुए शब्दों को लेकर कुछ दुःस्वप्न, बारह शीर्षक हीन कविताएँ, दस और शीर्षकहीन कविताएँ, सिलाई के बारे में कुछ बातें, बुनाई के बारे में कुछ बातें, जानने-सीखने-पढने-लिखने के बारे में कुछ बातें, ज़रूरत के बारे में बातें, दीवारों के बारे में, अच्छी और बुरी किताबों के बारे में, नई इबारात के बारे में, यथार्थवादी लोगों के बारे

में, सबसे सुंदर आदत के बारे में, तर्क के बारे में, इन्कलाब के बारे में कुछ बातें, जीवन के बारे में कुछ बातें, हमन है इश्क मस्ताना, कहाँ चलें खुसरो?, सूली ऊपर सेज, यादें और सपने, आठ शीर्षकहीन कविताएँ, प्रार्थना, सबक, बस्ता, एक बगावती प्रार्थना, हमला, एक आशंका, मन्दसौर के स्लेट-पेंसिल उद्योग में काम करनेवाले बच्चे की कविता, शिवकाशी में पटाखे बनानेवाले बच्चे की कविता, माई का बटुला बिका खुशियाँ मनी, रामधनी, बचपन के साथी से एक मुलाकात, दुख, सुख, आविष्कार, भय-मुक्ति, सिटकिनी, मार्फत, कम से कम, अन्ततः, स्वीकार, उनका हँसना, कहाँ है शब्दकोशों से बहिष्कृत शब्द? जैसे कि जीवन के बारे में आशावादी होना और मृत्यु के बारे में यथार्थवादी, यूँ अचानक एक दिन हमारा, एक झरना, कुछ नौजवान और एक गुमनाम कब्र, अब बुद्ध ही बताएँ, ऐसी हो चीज़े कि, जादू नहीं कविता, तलाशी, गोयबल्स १९९४, वे अपना मृत्युलेख लिखते हैं, पूरब में प्रतीक्षा, यह समय, अंधेरे में प्रतीक्षारत, युद्ध और कला, तब क्या जीते होते हैं? रोजमर्रे की एक और बुनियादी ज़रूरत, उनका भय, मुक्तिबोध के लिए, एकदम फ्रांज काफ़्का की आँखों के सामने, किरणों के बीच भूमिगत, लाल परिन्दे नीले आसमान में -१, लाल परिन्दे नीले आसमान में -२ और लाल परिन्दे नीले आसमान में -३।

इस संग्रह की कविताएँ सामाजिक और राजनीतिक विषयों को लेकर पूरी संवेदना के साथ उभर आती हैं। इस कविता संग्रह के संबंध में कवि मंगलेश डबराल लिखते हैं - “इस कविता में तमाम सरोकारों और संवेगों को, प्रेम, दुख, क्रोध, विक्षोभ, शोक, व्यंग्य और विडंबना को, हम यथास्थिति के विरोध में बनते हुए औजारों और हथियारों की तरह महसूस कर सकते हैं।”^{३१}

कवयित्री कविता को ज़्यादा सामाजिक बनने की कोशिश करती हैं। चीज़ों को सीधी-सादी भाषा में बयान करके विचारों की दुनिया में पाठक को ले चलने में इस संग्रह की कविताएँ सक्षम बन चुकी हैं। वे अपनी कविता के द्वारा क्रांति का स्वर बुलंद करके

न्याय, समानता एवं आत्मसम्मान की माँग करती हैं। पूरी दुनिया को नये विचारों के आलोक में चमकाने की कोशिश करनेवाली कवयित्री कहती हैं कि-

“स्मृति स्वप्न नहीं
आशाएँ भ्रम नहीं
जगत मिथ्या नहीं
कविता जादू नहीं
सिर्फ कवि हम नहीं।”^{१२}

समाज के प्रति कात्यायनी की प्रतिबद्धता के संबंध में मंगलेश डबराल लिखते हैं -
“उसकी वैचारिक प्रतिबद्धता और समाज को बदलने की बेचैनी भी उतनी ही सच्ची है और इसलिए यह एक प्रतिबद्ध आवाज़ है, लेकिन उसमें एक स्त्री की पीड़ा भी उतनी ही मूलभूत है। उनमें एक उत्पीड़ित मनुष्यता का संघर्ष है जिसे एक स्त्री के शिल्प में व्यक्त किया गया है और इस शिल्प में एक गहरी लोकतांत्रिक चेतना है जो स्मृति और स्वप्न के पारंपरिक बिंबों को भेदती हुई, कविता को ज़्यादा आमफहम, ज़्यादा सामाजिक बनाती हुई अपनी नकारात्मकता में एक विलक्षण सकारात्मक मंतव्य प्रकट करती है।”^{१३}
कवयित्री भली भाँति जानती हैं कि लड़ना ही जीने की अकेली शर्त होता है। इस संग्रह की कविताएँ हमें हिंसक वातावरण से संघर्ष करके जीने की प्रेरणा देती हैं।

५.३.४. राख्र अंधेरे की बारिश में

इस संग्रह की कुछ कविताएँ कात्यायनी की पूर्व प्रकाशित तीन संकलनों - ‘सात भाइयों के बीच चंपा’, ‘इस पौरुषपूर्ण समय में’, और ‘जादू नहीं कविता’ से चुनी गयी हैं। लेकिन इस संग्रह की गुजरात २००२ शीर्षक की तीन कविताएँ, आह मेरे लोगों बेहतर है आदि कविताएँ बिल्कुल नई हैं। इन कविताओं में सांप्रदायिकता एवं फाँसीवादी बर्बरताओं का चित्रण है। कवयित्री ने इन कविताओं के माध्यम से मानवद्रोही सांप्रदायिक शक्तियों को ख़ुलकर दिखाने की कोशिश की है। शासकवर्ग ही धर्म के ठेकेदार बन गये

हैं। जनता इन्हीं के द्वारा रचे गए षड्यंत्रों एवं कुचक्रों में फँस रही है। सांप्रदायिक शक्तियों ने जनता के विवेक को चूर कर दिया है और मानवता को कुचल दिया है। गुजरात के भीषण धार्मिक देगों का चित्रण करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“महज मोमवत्तियाँ जलाकर, शांति मार्च करके
कहीं धरने पर बैठने के बाद घर लौटकर
हम अपनी दीनता ही प्रकट करेंगे
और कायरता भी और चालाकी भरी हृदयहीनता भी।”^{१४}

५.३.५. फूटपाथ पर कुर्सी

कात्यायनी की २००६ में प्रकाशित ‘फूटपाथ पर कुर्सी’ नामक काव्य संग्रह में ८९ कविताएँ संकलित हैं। कविताएँ ये हैं - मुख्तर की कुछ बातें, मरते हुए लोग (एक), मरते हुए लोग (दो), लौटने के बारे में (एक), लौटने के बारे में (दो), बढ़ती हुई उम्र के बारे में, मुहर बन्द पत्र, सिंहावलोकन, कविता, प्यार और विद्रोह के मामलों में निजता, चीजें अपनी जगह, हमारे समय की काव्य-विस्मृत क्रियाएँ, परिभाषा, क्षण, चाहत, उपस्थिति, समझ, अहसास, यह एक दिन, यात्रा, शिनाख्त, भटकन, अन्वेषण, कविता की जगह, अजनबियों के गीत, चोरी-छिपे, परदुःखकारता आत्मकातरता, नतीजे के तौर पर, अपने बारे में, एक घनाक्षरी नये रंग में, सदी के अंत में पूर्वजों का आवाहन, गाओ! गाने की पुनर्जागृत अदम्य ललक और दुर्निवार आवश्यकता बोध के साथ गाओ, कुस्के के कैण्टन की अंतिम चिट्ठी पत्नी के नाम, पीढियों का संघर्ष, एक कवि की आत्महत्या, पाखण्ड-व्रत-कथा, आखेट, संशयात्मा विनश्यति, भूमंडलीकरण का शास्त्रीय संगीत, दिल्ली में कवि-कर्म, कामकाजू समझ की एक बात, बच गया, आशंका, नुस्खा, दुनिया बदलने के बारे में कतिपय सुधीजनों का विचार शीर्षक में आठ कविताएँ, ईमानदार अस्वीकृतियों की एक और पवित्र - नशीली रात, परिस्थितियों से चेतना की निर्मिति का एक ओर उदाहरण, दायित्व निर्वाह, प्रतिरोध कर्म, मंसूबे, रहें किनारे बैठ, सागर तट पर जीवन जैसे, सागर कब साहस देता है, चाँदनी पूरनमासी की, कुहरे की दीवार खड़ी है, तारों

भरे आसमान के नीचे एक खिलन्दडा विचार, टूँट खड़ा है, बिन पातों के पेड़ खड़ा है, झील किनारे, आँधी में नाचे हैं तितली, अग्निधर्म है शुचिता का, सुन्दरता का, रंगों और उम्मीदों की कुछ बातें, फुटपाथ पर कुरसी, एक खोई हुई कविता का महाख्यान, पनप रही जो कौंध पौधी-सी, विद्रोही का दुःख, छापामार योद्धा का दुःख, मसखरे का दुःख, लेखक का दुःख, कवि का दुःख, व्यापारी का दुःख, स्त्री का दुःख, बच्चे का दुःख, द्वार का दुःख, खिड़की का दुःख, समय का दुःख, सबसे बड़ा दुःख एवं राख अंधेरे की बारिश में संग्रहीत चार कवितायें इसमें भी संकलित हैं।

१९९९ से २००४ के बीच लिखी सभी कविताएँ इस संग्रह में शामिल हैं। विभिन्न विषयों को लेकर लिखी इस संग्रह की कविताएँ संवेदना एवं चिंतन की गहराई तक हमें ले जाती हैं। इसमें मानव मन के सभी भावों की अभिव्यक्ति है। संग्रह की कई कविताएँ समय की भयावहता को दिखाती हैं। दुःख और संघर्षों के इस समय में उसके विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित करनेवाली कविताएँ भी शामिल हैं। समाज की निराशा और असंतुष्टि को मिटाने के लिए सतत प्रयास करनेवाली कवयित्री अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों के विचारों पर बल देती हैं। दुर्दिनों में भी जनता के मन में आशा भर देना कवयित्री अपना कर्तव्य समझती हैं। इसलिए वे लिखती हैं-

“हम जो कभी भी हिम्मत नहीं हारे थे पूरी तरह

और जो लगातार स्मृति और स्वप्न से

बुनते रहे थे नयी परियोजनाएँ

हाँ, हमारी भी थीं कुछ निराशाएँ

आखिर में, जहाँ तक मेरी अपनी बात है-

लोगों को मैं ने हमेशा आशाओं के बारे में बताया।”^{१५}

कात्यायनी की कविताओं के संबंध में सत्यम ने लिखा है - “उनकी कविताएँ हमारे समय की त्रासदियों - विडंबनाओं भरे अंधेरे से निरंतर युयुत्सु मुठभेड़ करती हैं। वह

स्मृतियों और कल्पनाओं -स्वप्नों की खदानों से अपनी कविता के लिए कच्चा माल लाती हैं और अपना सर्वथा मौलिक बिंबविधान एवं अनूठी अभिव्यक्ति-शैली निर्मित करती हुई इस जटिल संक्रमणकालीन देश-काल का आधिकारिक आख्यान प्रस्तुत करती हैं।”^{१६} अपने कविधर्म को पूरी तरह समझनेवाली कवयित्री कात्यायनी की इस संग्रह की कविताओं में समकालीन समाज पूरी ईमानदारी एवं मार्मिकता के साथ आता है।

५.३.६. एक कुहरा पारभासी

कात्यायनी की ‘कुहरा पारभासी’ नामक काव्यसंग्रह २०१६ में प्रकाशित है। इसमें ३४ कविताएँ शामिल हैं। कवितायें ये हैं - समय एक तत्व है - गोयटे, कविता के अभिलेखागार में। जनवरी २०१०: एक इम्प्रेशन, निराशा की कविता, ‘२०१० में निराशा, प्रेम, उदासी और रतजगे की कविता के बारे में कुछ राजनीतिक नोट्स’, सुप्त पंखों के निकट, एक कुहरा पारभासी, बस यही अपना, पश्चाताप, हमारे समय में मित्रों के बीच दिल खोलना, मौलिकता, हमारा प्यार, २००७, दुःखान्तिका, कलमदान, एक कवि के डायरी के कुछ पन्ने, १९८०-२००८ एक यात्रा वर्णन, सच्चाई, समकालीन कविता का जादुई यथार्थ, हमारे समय में साहित्यालोचना, हमारे समय में प्यार, मूर्ख पक्षी, मृत्यु, शीर्षकहीन, विचार का तर्क, जादूई यथार्थवाद की एक समझ, नश्वरता के पक्ष में, कविता के बारे में एक विमर्श, भय, शंकाओं और आत्मालोचना भरी एक प्रति कविता, बदलना २०१४: कुछ इम्प्रेशन, भगत सिंह के लिए एक गद्यात्मक सम्बोध -गीति, यह आर्तनाद नहीं और एक धधकती हुई पुकार है! फिलिस्तीन २०१५।

इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ सामाजिक एवं राजनीतिक मुद्दों को लेकर लिखी गयी हैं। इसमें हमारे समाज, शासन व्यवस्था एवं सत्ताधारियों की निर्ममता का अंकन है। कविताओं में वर्तमान समय की भविष्य स्थिति का अंकन अत्यंत मार्मिक बन पडा है। संग्रह की कविताएँ निराशा, प्रेम, उदासी, भय, शंका, सच्चाई आदि भावों पर आधारित

हैं। २००७, २०१४ कुछ इंफ्रेशन्स जैसी कविताओं में सत्ताधारियों द्वारा जनता पर जानेवाली दिक्कतों का चित्रण है। कवयित्री कहती हैं -

“सबसे खतरनाक है
जानते - बूझते झूठी दिलासा देनेवाले
मिथ्या आशाओं की मृग मरीचिका
रचनेवाला आदमी।”^{१७}

भगत सिंह को याद करते हुए लिखी एक कविता है - ‘भगतसिंह के लिए -एक गद्यात्मक सम्बोध-गीति’। लखनऊ के सोहनलाल गंज इलाके में एक युवती पर पडे बर्बर बलात्कार और हत्या को लेकर लिखी गई कविता है- ‘यह आर्तनाद नहीं , एक धधकती हुई पुकार है’।

कात्यायनी की इन कविता संग्रहों को पढते वक्त ज्ञात होता है कि उनकी काव्य संवेदना काफी विस्तृत है। राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यकर्ता होने के कारण सर्वहारा वर्ग की पीडा को अच्छी तरह से समझनेवाली कवयित्री अपनी कविताओं के माध्यम से उन लोगों की वाणी को सुनाती हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र से भी जुडे रहने के कारण वे सामाजिक विसंगतियों को अच्छी तरह से जानती हैं। उनकी कविताएँ तमाम अन्यायों के प्रति खुली प्रतिक्रिया हैं। स्वयं उनके ही शब्दों में - “सच्ची कविता निजी स्वामित्व के खिलाफ है और सच्चा कवि भी। इसलिए कवि को कभी-कभी लडना भी होता है, बन्दूक भी उठानी पडती है और फौरी तौर पर कविता के खिलाफ लगनेवाले कुछ फैसले भी लेने पडते हैं। ऐसे दौर आते रहे हैं और आगे भी आयेंगे।”^{१८} अपनी कविता रूपी बंदूक लेकर दुनिया भर की सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध लडनेवाली कवयित्री कात्यायनी का नाम समकालीन कविता के क्षेत्र में सर्वमान्य है।

५.४. मानवीय संवेदना के संदर्भ में कविताएँ

धारा के विरुद्ध तैरना पसंद करनेवाली कवयित्री कात्यायनी की कविता सामाजिक

एवं राजनीतिक विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का पर्दाफाश करती है। अपने निजी अनुभवों को वे व्यापक दृष्टि से देखती हैं। रवीन्द्रनाथ मिश्र के शब्दों में “महिला कवयित्रियों में कात्यायनी की काव्यसंवेदना का फलक काफी विस्तृत है। उनमें जहाँ एक तरफ नारी-जीवन के प्रेम-संघर्ष और त्रासदपूर्ण जीवन के विविध रूप हैं, वहीं पर सार्वजनिक जीवन में सर्वहारा वर्ग की पीडा भी है। राजनैतिक-सामाजिक कार्यकर्ता और पत्रकारिता से जुड़े होने के कारण उनकी कविता में धार है और दृष्टि में पैनापन और मौलिकता है। यही कारण है कि इनकी कविताएँ हमारी संवेदनाओं को झकझोरती है।”^{१९}

वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विसंगतियों से जूझनेवाला आम आदमी उनकी कविताओं के केन्द्र में है। समसामयिक जीवन की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को अभिव्यक्त करनेवाली कात्यायनी की कविताओं को मानवीय संवेदना के धरातल पर निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से परखने की कोशिश करते हैं।

५.४.१. समय की पहचान

कवि हमेशा ऐसे होते हैं कि वे हमेशा अपने समय की पहचान रखते हैं। यह मानवीय संवेदनाओं के क्षरण का समय है। एक अपराधी तथा लुटेरा समय में हम जी रहे हैं। अन्याय एवं अपराध के कारण मानव का अस्तित्व संकट में है। सांप्रदायिक एवं धार्मिक उन्माद के चक्कर में पड़कर जनता पिस रही है। पूरी दुनिया अब बाज़ार की कैद में है। सारे रिश्ते अब मुनाफे पर आधारित हैं। यह हमारी अपनी भाषा को भी हमसे छीन लेने का समय है। ऐसे अपराधी समय को कात्यायनी भलीभांति पहचानती हैं। अपने हृदय की सच्ची भावनाओं को प्रकट करनेवाली कवयित्री पूरे विश्वास के साथ अपने समय के अंधेरे को कविताओं के माध्यम से चुनौती दे रही हैं। ‘एक डलती सदी का सच’ शीर्षक कविता के माध्यम से तत्कालीन समय की भयावहता को अभिव्यक्त करते हुए वे लिखती हैं-

“कानून
 साफ गले से बोलता है
 संविधान
 एक दार्शनिक चुप्पी में डूबा रहता है
 और सत्ता
 भाषा की शुद्धता का आग्रह करती है
 जब लोग
 मुँह खोलते हैं
 तो गले से खून के थक्के बाहर आते हैं।”^{२०}

कवयित्री कहती हैं समय कभी रुकता ही नहीं। वह अपनी रफ्तार तेज़ करता है तो पीछे बहुत कुछ छूट जाते हैं। समय की तेज़ गति में चीज़ें टूट-फूट दरक-तिडक जाती हैं। तत्कालीन समय में बढ़ती हुई शहरीकरण एवं बाज़ारीकरण की प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करके ‘रामधनी’ नामक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“गुजरा समय और बदला शहर है यह।
 बदला है तेज़ी से जाफरा बाज़ार भी।”^{२१}

यह मानवीयता के क्षरण का समय है। कवयित्री कहती हैं कि ऐसे समय में मानव का हृदय और मस्तिष्क मृत बन गया है। अर्थात् मानवीय संवेदनाएँ एवं सोच-विचार मृत बन चुके हैं। प्रतिक्रियाविहीन समय में जीनेवाले जड़ समाज के लोगों को देखकर ‘मरते हुए लोग’ नामक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“मरते हुए लोग
 कुछ न बोलें
 बुद बुदाये
 या बीच-बीच में आँखें खोलकर
 अपने चारों ओर खड़े लोगों
 और चीज़ों का निहारें

कुछ को पहचानते हुए
 कुछ को पहचानने कोशिश करते हुए
 और कुछ को नहीं पहचानते हुए
 तो यह स्वाभाविक होता है।”^{२२}

कवयित्री अपनी कविताओं के माध्यम से इस नये समय में मनुष्यता के पदचिह्नों को खोजती फिरती हैं। एक ऐसे समय में हम जी रहे हैं कि यहाँ जनता के रक्षक ही भक्षक बन गये हैं। इसकी ओर इशारा करते हुए ‘२०१० में निराशा, प्रेम, उदासी और रतजगे की कविता के बारे में कुछ राजनीतिक नोट्स’ शीर्षक कविता में वे लिखती हैं-

“यह वह समय होता था जब सरकारें
 अपनी जनता के खिलाफ देश के भीतर
 जंग लड़ रही होती थी”^{२३}

आज व्यक्ति स्वार्थी बन गया है। दूसरों के बारे में कोई परवाह नहीं करता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते दूसरों की सहायता करना हमारा कर्तव्य है। लेकिन आज मनुष्य यह भूल जाते हैं। ‘मूर्खपक्षी’ नामक कविता में कवयित्री इसकी सूचना देती हैं। कविता में एक पक्षी तूफान से बचने के लिए घोंसलों की ओर भागता है। पक्षी सुरक्षा हेतु असल स्थान की ओर भागता है। लेकिन वह यह नहीं सोचता है कि यह एक ऐसा समय है, ऐसे घोंसले को बचना भी मुश्किल बन गया है। कवि इस कविता में समाज में व्याप्त आश्रयहीनता के संबंध में लिखती हैं।

हमारे मानवीय विवेक को रौंदता-कुचलता, क्षत-विक्षत करता हुआ अज्ञान रूपी अंधकार किसी आतताई आक्रांत की तरह सबसे अधिक गहरा होता रहता है। यह इस समय की सच्चाई है कि धीरे-धीरे बनती हुई यह दुनिया एक दिन खुद बदल जाएगी। क्योंकि यह बदलाव का समय है। अच्छा हो या बुरा हो चाहे अनचाहे हम बदलाव लाना चाहते हैं। ऐसे माहौल में हमारी भाषा, हमारी अपनी संस्कृति ये सब हमसे मिट जाएगी, ‘बदलना’ शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“बदलता तो एक निश्चल पडा पत्थर भी है
 बाज़ार में भाषा भी बदलती है
 और अगले दिन मुर्दानगी भी पहले सी नहीं होती
 हर प्रहर रात निर्वसन होती है-
 अपने ही अंधकार में।”^{२४}

केन्द्र के लोगों को परिधि में एवं परिधि के लोगों को केन्द्र में लाने का काम उत्तराधुनिकता ने किया है। साहित्य, समाज, विज्ञान एवं आम जीवन के अनेक क्षेत्रों को उत्तराधुनिकतावाद ने प्रभावित किया है। एक ओर उपभोक्ता संस्कृति विकसित हो रही है तो दूसरी ओर मानवता सिमट रही है। सांस्कृतिक संदर्भ एवं मानवीय संबंध टूट रहे हैं। ‘फिलिस्तीन - २०१५’ शीर्षक कविता में ‘उत्तराधुनिक’ समय की भयावहता को दिखाते हुए वे लिखती हैं-

“उत्तर आधुनिक समय में ग्लोबल गाँव का जिन्न
 दौड़ता है वाशिंगटन से तेल अवीव तक
 डॉलर के जादू से पैदा बहावी और सलाफी जुनून
 इराक और सीरिया की सड़कों पर
 तवाही का तूफान रचता है।
 ढाका में एक फैक्टरी की इमारत गिरती है
 और मलबे में सैकड़ों मज़दूर
 ज़िंदा दफन हो जाते हैं
 और उसी समय भारत में एक साथ
 कई जगहों से कई हज़ार लोग
 दर-ब-दर कर दिये जाते हैं।
 कुछ भी हो सकता है ऐसे समय में।
 गुजरात में गाज़ा की एक रात हो सकती है
 अयोध्या में इतिहास के विरुद्ध

एक युद्ध हो सकता है
 युद्ध के दिनों में हिरोशिमा-नागसाकी रचनेवाले
 शांति के दिनों में कई-कई भोपाल रच सकते हैं
 और तेल की अमिट प्यास बुझाने के लिए
 समूचे मध्य-पूर्व का नया नक्शा खींच सकते हैं।”^{२५}

अपने समय की निर्भयता को व्यक्त करनेवाली कवयित्री चुनौतियों को स्वीकार करके जीने की हमें प्रेरणा देती हैं। आज समय इतना जीर्ण बन गया है कि लोग भय एवं आशंका में जी रहे हैं। ऐसे समय में हमारा अस्तित्व भी खतरे में है। हमारे समय और समाज के हर पक्ष पर उनकी नज़र है। वे लिखती हैं-

“एक अंधेरे समय में ही
 हम सयाने हुए
 प्यार किया
 लडते रहे ताउम्र
 हालाँकि अंधेरा फिर भी था।”^{२६}

५.४.२. आम आदमी का अंकन

अपने समय की भयावह सच्चाइयों को पहचाननेवाली कवयित्री ने अपनी कविताओं में आम आदमी के संघर्षरत जीवन का अंकन किया है। अभाव में जीने के लिए विवश आम आदमी के प्रति कवयित्री अपनी संवेदना प्रकट करती हैं। समाज के तलछट के बदबूदार कीचड़ में एक अंधेरे कोने में पडकर बिल बिलाकर रहने के लिए विवश बन गए हैं आम आदमी। वे अपने दुःख या अभाव के संबंध में शिकायतें करके रोते रहते हैं। लेकिन उनकी स्थिति में कोई बदलाव नहीं आता है। आम आदमी के जीवन की दीन-हीन स्थिति को उजागर करते हुए कवयित्री ‘यदि हम यहाँ नहीं होते तो’ शीर्षक कविता में लिखती हैं-

“जागते हुए सोते रहते
 सोते हुए जागते रहते
 बीमार और स्वस्थ होने
 खुश और दुखी होते
 जीने और मरने के बीच का अंतर भूलकर
 बस विसटते रहते
 घिसते रहते
 जीवन का एक-एक दिन ठीकरे की तरह।”^{२७}

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके सारे क्रिया कलाप समाज में होते रहते हैं। अर्थ के आधार पर समाज अमीर और गरीब जैसे दो भागों में बाँट गया है। आम आदमी तो अर्थाभाव में जी रहे हैं। पूरे समाज का नियंत्रण पूँजीपती वर्ग के हाथों में है। आज के दौर में पूँजी के अभाव के कारण आम जनता को असामाजिक घोषित कर दिया जाता है। बुनियादी ज़रूरतों कर्तव्यों और अधिकारों से भी उन्हें वंचित रखते हैं। ‘मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है’ शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“जैसे ही हम जान जाने हैं
 एक सामाजिक प्राणी की ज़रूरतों
 कर्तव्यों और अधिकारों को
 कि
 असामाजिक घोषित कर दिये जाते हैं।”^{२८}

अपने जीवन की कठिनाइयों को वे ईश्वर का दिया हुआ समझते हैं और इसे अपनी नियति कहकर जी रहे हैं। जब जीवन में छोटा सा संतोष आता है तो तब उसे वे परमसुख मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि उनका आसमान छोटा-सा है। अपनी कविता ‘शोकगीत’ में कवयित्री, एक मामूली आदमी की तरह प्यार करने की बातें कह रही हैं। कवयित्री कहती हैं कि आम आदमी जितनी ज़िम्मेदारी के साथ पानी जुटाते हैं या

सब्जियाँ खरीदते हैं उतनी ही ज़िम्मेदारी से प्यार भी करते हैं। महंगाई के इन दिनों में सब्जियों खरीदना आम आदमी के लिए कठिन काम है। उसी प्रकार एक मामूली आदमी की तरह ईमानदारी से प्यार करना भी कठिन है। इस बाज़ारवादी संस्कृति में प्यार का कोई महत्व नहीं है। कवयित्री स्वयं अपने को आम आदमी समझती हैं। प्रस्तुत कविता में आम आदमी के जीवन की विडंबनाओं को उजागर करती हुई लिखती हैं-

“प्यार किया एक मामूली आदमी की तरह
 राशन - पानी जुटाया
 सब्जियों की खरीदारी की
 पूरी ज़िम्मेदारी के साथ भरपूर गुस्से के साथ
 जुलूस में शामिल हुए महंगाई के खिलाफ
 निष्ठापूर्वकक गये हडताल पर
 नहीं बना सके एक शांत सुरुचिपूर्ण
 अध्ययन - कक्ष।”^{२९}

कवयित्री कात्यायनी सारी दुनिया के शोषितों पीड़ितों के अभावग्रस्त जीवन के प्रति सहानुभूति प्रकट करती हैं। सोमालिया और सरगुजा के भूखों मरते बच्चों के प्रति संवेदना प्रकट करके ‘जी चाहता है’ शीर्षक कविता में वे लिखती हैं-

“आज जी चाहता है बेहद
 कि सोमालिया और सरगुजा में
 भूखे मरते बच्चों के बारे में
 सीधे-सीधे कुछ कहें।”^{३०}

हमारी व्यवस्था ने समाज में कई तरह की दीवारें खड़ी कर दी हैं। धर्म, जाति, अर्थ, लिंग आदि के आधार पर मानव मानव के बीच में दीवारें खड़ी कर दी हैं। ‘दीवारों के बारे में’ नामक कविता अर्थभेद की दीवारों की ओर इशारा करती हैं। अर्थ के आधार पर समाज को संपन्न और विपन्न दो वर्गों में बाँटते हैं। संपन्न वर्ग का जीवन सुख, समृद्धि

और समस्त अधिकारों से पूर्ण है तो विपन्न वर्ग का जीवन अभावों, यंत्रणाओं और कुंठाओं से भरा हुआ है। हमारे समाज में आर्थिक वैषम्य की स्थिति अत्यंत भयावह है। रोटी का अभाव आज देश की ज्वलंत समस्या बन गया है। भूख के कारण दिन प्रतिदिन कई लोग मर जाते हैं। एक ओर देश नई प्रगति की ओर चल रहा है तो दूसरी ओर स्वतंत्रता के पश्चात इतने वर्ष बीतने के बाद आज भी जनसामान्य को भूख से मुक्ति नहीं मिल सकी। 'इन्कलाब के बारे में कुछ बातें' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“नहीं मिलती है
रोटी कभी लम्बे समय तक
या छिन जाती है मिलकर भी बार-बार
तो भी आदमी नहीं छोड़ता है
रोटी के वारे में सोचना
और उसे पाने की कोशिश करना।”^{३९}

रोटी के अभाव के समान मकान का अभाव भी एक ज्वलंत समस्या है। ज्यादातर लोगों के पास अपने पक्के मकान नहीं है। आर्थिक तंगी के कारण कई लोग अपना मकान तक नहीं बना पाये। 'भय-मुक्ति' शीर्षक कविता में धूप-आतप, धूल-आँधी, सर्दी या गर्मी को सहकर फूटपाथ या पुलों के नीचे ज़िन्दगी काटने के लिए विवश लोगों के प्रति कवयित्री संवेदना प्रकट करती हैं। अभाव भरी ज़िन्दगी में जीने के लिए विवश दीन-हीनों के सामने रहने की जगह एक प्रश्नचिह्न बन गया है। अपनी कविताओं के माध्यम से अभावभरी ज़िन्दगी की वास्तविकता का चित्रण करके कवयित्री सामाजिक यथार्थ का अंकन करती हैं। 'काम काजू समझ की बात' शीर्षक कविता में वे लिखती हैं-

“ज्ञान बघारने से अच्छा है
दाल बघारना
हालाँकि कितनों को मिल पाती है-
सादी दाल भी

सोचने के लिए

यह भी कोई अहम मुद्दा नहीं।”^{३५}

कात्यायनी की कविताएँ आम आदमी के जीवन यथार्थ का दस्तावेज़ हैं। आम आदमी की पीड़ा और उनके अभावों को कवयित्री ने पूरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त की है। आम आदमी के प्रति लगाव और अपनेपन की भावना रखती हुई ‘भय, शंकाओं और आत्मालोचना भरी एक प्रतिकविता’ शीर्षक कविता में वे लिखती हैं -

“ज़रूरी है विचारों और आम लोगों के जीवन के बीच
लगातार होना और कठिन भी।”^{३३}

५.४.३. मेहनतकश ज़िंदगी का यथार्थ

कात्यायनी ने अपनी कविताओं के माध्यम से अपने समाज में स्थित मेहनतकश वर्ग के जीवन यथार्थ को उजागर किया है। दिन-रात कठिन मेहनत करने के बावजूद भी भूख, गरीबी एवं अभाव में जीने के लिए विवश हैं हमारे समाज के किसान, मज़दूर एवं कारीगर जैसे मेहनतकश वर्ग। मेहनतकश लोगों के श्रम का मूल्य वे अच्छी तरह से पहचानती हैं। खेती भारतीय अर्थव्यवस्था का केन्द्र है। लेकिन आज स्थिति बदल गयी है। खेती एवं किसानों के लिए यहाँ कोई मूल्य नहीं है। बड़े-बड़े कारपरेटों को बड़े-बड़े व्यवसाय शुरू करने के लिए किसानों को अपनी भूमि से बेदखल कर देते हैं। विकास के नाम पर भी ज़मीन अधिग्रहण हो रहा है। इसके लिए किसानों को उचित मुआवज़ा भी न मिलता है। इसलिए वे रोज़ी-रोटी की तलाश में दर-ब-दर भटकते रहते हैं। अपने गाँव से बिछुडकर कहीं दूर शहर में मिलों एवं कारख़ानों में काम करने के लिए वे विवश बन जाते हैं। वहाँ अपने मुल्क, घर परिवार की यादें उन्हें सताती रहती हैं। ‘सदी के अंत में पूर्वजों का आवाहन’ नामक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“गंगा-यमुना-ब्रह्मपुत्र के मैदानों में
अपने जरखेज़ खेतों से बेदखल
बेघर-बेदर किसान

चिमनियों से उठते धुएँ
 की काली छतरी के नीचे
 भटक रहे हैं
 बचपन के तारों भरे आसमान
 और कजरी की तान की याद में।”^{३४}

मज़दूर वर्ग ही दुनिया निर्माता है। उन्हीं के हाथों से ही दुनिया का निर्माण होता है। लेकिन आज व्यवस्था द्वारा उपेक्षित लोगों में ज़्यादातर लोग मज़दूर वर्ग हैं। सरकार या न्यायालयों की तरफ से उन्हें सही न्याय नहीं मिलता है। ज़्यादातर मेहनतकश वर्ग शहरों की गंदी गलियों के झुग्गी झोंपड़ियों में जीवन बिता रहे हैं। कभी-कभी विकास के नाम पर या अन्य कोई कारणों से उन्हें वहाँ से बेदखल कर देते हैं। ‘हमारे समय में कुछ काव्य - विस्मृत शब्द और क्रियाएँ’ नामक कविता में स्थानंतरित मज़दूरों की समस्या को उद्घाटित करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“उस दिन
 देश की सबसे ऊँची कचहरी ने
 फैसला सुनाया था
 राजधानी के पर्यावरण को साफ रखने के लिए
 बीस लाख मज़दूरों को
 शहर-बंदर कर देने का।”^{३५}

किसान, मज़दूर या अन्य मेहनतकश वर्ग कठिन मेहनत करके खून-पसीना बहाकर चीज़ों का उत्पादन करते हैं। लेकिन उनकी मेहनत का लाभ उन्हें न मिलता है। पूरा लाभ पूँजीपति वर्गों के हाथों में जाता है। जहाँ वे ऐशो आराम से सुखलोलुप जीवन जी रहे हैं वहाँ ये उत्पादक वर्ग अपनी बुनियादी ज़रूरतों से भी वंचित होकर प्रतीक्षारत जीवन जीने के लिए विवश हैं। उनकी इस विवशता की ओर संकेत करते हुए ‘१९८०-२००८: एक यात्रा वर्णन’ नामक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“पसीना, वासना, कामना शोर और उत्पात से भरी
 उन जनसंकुल वस्तियों में जहाँ जीवन की सारी ज़रूरतें पूरी करने के लिए
 उत्पादन करनेवाले लोगों का जीवन प्रतीक्षारत है
 और प्रतीक्षा जहाँ हठी जिजीविषा, तर्क सजग सक्रियता
 और दुर्दांत युयुत्सा के जटिल रासायनिक संश्लेषण से
 तैयार यौगिक का एक नाम है।”^{२६}

मेहनतकश वर्ग दिन-रात कठिन मेहनत करते हैं। लेकिन वे अभाव में जी रहे हैं। भाषा, समाज और संस्कृति में दिन प्रति दिन कई तरह के बदलाव आते हैं। लेकिन ये लोग इन सबसे अनजान हैं। वे हमेशा अपने कामों में मग्न होकर यंत्रवत् जीवन जी रहे हैं। इनकी ओर इशारा करते हुए ‘कहाँ है शब्दकोशों से बहिष्कृत शब्द?’ नामक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“हालाँकि विचारों की दुनिया में
 भाषा पर तमाम प्रश्न उठ चुके थे
 पर लोग इनसे अनजान
 नयी-नयी मशीनों पर
 कारखानों में, दफ्तारों में
 वदस्तूत काम कर रहे थे।”^{२७}

बदलती भाषाई संस्कृति के बावजूद शब्दकोशों से बहिष्कृत शब्दों की भाँति सामान्य समाज से मेहनतकश वर्ग भी बहिष्कृत होते जा रहे हैं। देहाती मज़दूर यूनियन की बिरहा टोली में शामिल कामरेडों की बेटियों के लिए लिखी गई कविता है - “गाओ गाने की पुनर्जागृत अदम्य ललक और दुर्निवार आवश्यकता के बोध के साथ गाओ।” इस कविता के माध्यम से कवयित्री मेहनतकश मज़दूर वर्ग के अंदर अपने हक जताने की कोशिश करती हैं। जैसे-

“आकाश के पूरे विस्तार के लिए
 अपने शक्तिशाली लोहे के पंखों को खोलने के लिए

धरती की उस सारी सम्पदा के लिए
जिस पर तुम्हारा भी हक है
उस सामाजिक संपदा के लिए
जो ज़रूरत की दुनिया से अपहृत
बाज़ार की दुनिया में पहुँचा दी गयी है।”^{३८}

जब सामाजिक संपदा ज़रूरत की दुनिया से हटकर बाज़ार की दुनिया में पहुँचता है तब समाज के मेहनतकश आम आदमी भूख, गरीबी तथा दरिद्रता झेलने के लिए विवश बन जाते हैं। पूँजीवादी सभ्यता ने ही बाज़ारवादी नीति को फैलाया है। नई आर्थिक नीति में स्त्रियों की स्थिति के संबंध में कात्यायनी लिखती हैं - “बीसवीं सदी के अंत में भारत जैसे गरीब देशों की मेहनतकश स्त्रियाँ रोजमर्रे के आम जीवन से अनुपस्थित होती जा रही हैं। उन्हें देखना हो तो वहाँ चलना होगा, जहाँ वे छोटे-छोटे कमरों में माइक्रोस्कोप पर निगाहें गड़ाये सोने के सूक्ष्म तारों का सिलिकॉन चिप्प जोड़ रही हैं, निर्यात के लिए सिले-सिलाये वस्त्र तैयार करनेवाली फैक्टरियों में कटाई-सिलाई कर रही हैं, खिलौने तैयार कर रही हैं या फूड प्रोसेसिंग के काम में लगी हुई हैं। इसके अलावा वे बहुत पैसे पर स्कूलों में पढा रही हैं, टाइपिंग कर रही हैं, करधे पर काम कर रही हैं, सूच कात रही हैं और पहले की तरह बदस्तूर खेतों में भी खट रही हैं। महानगरों में वे दाई-नौकरानी का भी काम कर रही हैं और ‘बार मेड’ का भी।”^{३९} नयी बाज़ारवादी नीति के सामाजिक व्यवस्था में सामान्य मेहनतकश जनता के लिए कोई जगह नहीं है। इसके संबंध में ‘गाओ गाने की पुनर्जागृत अदम्य ललक और दुर्निवार आवश्यकता के बोध के साथ गाओ’ शीर्षक कविता में कवयित्री आगे लिखती हैं-

“बाज़ार की निर्वन्ध कृत्याओं की चपेट में अपनी
जगह-ज़मीन से उजड़ते ग्रामीणों और
कारखानों से बाहर धकेले जाते
मरते और लडते लाखों कामगारों के
फिल्हाल पराजित, पर जीवित सपनों के लिए गाओ।”^{४०}

५.४.४. बच्चों की बेचैनियाँ

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विसंगतियों से तड़पते समाज में बच्चे वैषम्य का शिकार हैं। आर्थिक विपन्नता से त्रस्त बच्चों की स्थिति और भी संकटग्रस्त है। भूख, गरीबी एवं मोहभंग की स्थिति में इनके बचपन नष्ट होते जा रहे हैं। कात्यायनी अपनी कविताओं में विभिन्न तरह के शोषण का शिकार बनानेवाले बच्चों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करती हैं। वर्तमान युग में भ्रूणहत्या और शिशु हत्या की संख्या बढ़ती जा रही है। विशेषकर कन्या भ्रूणहत्या। सरकार की तरफ से इसके विरुद्ध सख्त कानून बनाकर कानूनी तौर पर इसे रोकने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं। हमारे समाज में लड़कियों को सामाजिक और आर्थिक बोझ के रूप में देखते हैं। इसलिए कई लोग उन्हें जन्म से पहले ही मार दिये जाते हैं। कात्यायनी अपनी कविता 'रात के सन्तरी की' में गर्भपात की अभिव्यक्ति देते हुए लिखती हैं-

“पलामू के एक कस्बे में
नीम उजाले में एक नीम हकीम
एक स्त्री पर गर्भपात की
हर तरकीब आजमा रहा है।”^{४१}

विश्व के कई राष्ट्र आज भी भूख, पानी और घर जैसी बुनियादी ज़रूरतों के अभाव से परेशान हैं। भूखमरी की संख्या भी दिन - प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ज्यादातर लोग कुपोषण का भी शिकार हैं। छोटी उम्र के ज्यादातर बच्चे भूख एवं कुपोषण के कारण मर जाते हैं। पूर्व आफ्रिका में स्थित सोमालिया ऐसा एक देश है जहाँ बच्चे भूख और कुपोषण से मर रहे हैं। अकाल एवं सूखा ही इसके पीछे का एक कारण है। सोमालिया जैसी खतरनाक स्थिति नहीं है तो भी भारत में भी ऐसे कई प्रदेश हैं जहाँ बच्चे भूखों मरते हैं। इनमें ज्यादातर बच्चे आदिवासी इलाकों से होते हैं। 'जी चाहता है' शीर्षक कविता में छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले के आदिवासी इलाकों के बच्चों की भूखमरी एवं सोमालिया के बच्चों की भूखमरी की सूचना देती हैं-

कवयित्री भूखे मरते बच्चों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करती हैं। कवयित्री कहती हैं कि आज छोटे-छोटे बच्चों को बहुत बहला-फुसलाकर उन्हें अच्छे नागरिक बनाने की कोशिश में हैं माँ-बाप। उन्हें सहनशील, भुलक्कड एवं विनम्र नागरिक बनाना ही लक्ष्य है। लेकिन ये बच्चों की ज़िन्दगी में दुःख के कारण बन गये हैं। 'बच्चे का दुःख' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“उसके लिए यह खेल नहीं था
जैसा कि लोग समझने रह
उसे फुसलाते रहे
खिलौनों से बहलाते रहे
सहनशील
भुलक्कड
विनम्र
अच्छा नागरिक बनाते रहे।”^{४२}

हमारे समाज ने ऐसा तय किया है कि सहनशील, भुलक्कड, विनम्र व्यक्ति ही अच्छा नागरिक है। इस प्रकार के अच्छे नागरिक अमानवीय व्यवहार को भी चुपचाप सहते रहते हैं। कवयित्री की मान्यता यह है कि सत्ताधारी भी ऐसे 'अच्छा नागरिक' को चाहते हैं। क्योंकि उनके द्वारा किए-गए अपराधों के विरुद्ध वे कभी-भी आवाज़ नहीं उठाते। 'प्रार्थना' नामक कविता में कंधे झुकाये, आँखें बंद करके श्रद्धानत एवं प्रार्थनारत बच्चों का चित्र खींचते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“जीवन के प्रति अविश्वास
और आत्मविश्वासहीनता से
बूँद-बूँद भरते हुए बच्चे
झुकना सीख रहे हैं।
बच्चों को कातर न बनाये जाय

तो चुनौती बन जाते हैं।

बच्चों को कातर बनाया जा रहा है।”^{४३}

आज हम देख पाते हैं कि स्कूली बच्चों के बैग का वजन काफी ज्यादा है। यह बच्चों के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। ‘बस्ता’ नामक कविता में कवयित्री इसकी सूचना देती हैं। कवयित्री कहती हैं कि ये बच्चे बचपन में भारी बस्ता ढोने के लिए विवश हैं तो बड़ा होने पर जीवन का सारा बोझ ढोने के लिए विवश हैं। बचपन से लेकर बूढ़ा होने तक बड़ा बोझ ढोकर आदमी की पीठ पर कुबड आता है। आगे वे कहती हैं छोटे बच्चों के सपनों में हमेशा बूढ़ा कुबडा आता है। बच्चे इनसे डरते भी हैं। बच्चे भारी बस्ता लेकर स्कूल जाने से भी डरते हैं। क्योंकि उनके सपनों में हमेशा एक कुबडा आता है।

बच्चों का मन कोरा कागज़ है। चाहे हम उसमें आसानी से कोई भी चित्र खींच सकते हैं। भविष्य में उनके चरित्र को प्रभावित करनेवाले कई घटक बचपन से ही वे अपने चारों ओर से स्वीकारते हैं। आज टेलीविजन या अन्य मीडियाओं पर आनेवाले कार्यक्रम बच्चों को ज्यादा प्रभावित करते हैं। छोटे बच्चे हैं तो उनका आकर्षण ज्यादातर कार्टून पर होते हैं। ये बच्चों पर अच्छा और बुरा प्रभाव डालते हैं। ये हमारे बच्चों के भोलेपन को एक महँगी जादुई फन्तासी में तब्दील करते हैं। बच्चे एक रहस्यमयी शक्ति के द्वारा अपनी कल्पनाओं को यथार्थ बनने का सपना देख रहे हैं। बच्चों को यथार्थ की दुनिया से मायावी जगत् में ले जाते हैं। ये उनके दिल और दिमाग को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं। ‘हमला’ शीर्षक कविता में इसकी सूचना देते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“विज्ञान द्वारा विज्ञान से दूर धकेले जाते हुए

सीख रहे हैं वे

एक कालपनिक सहजता के आदि होना

वास्तविक जीवन को

गूढ रहस्यमय मानना

और

रहस्यों के दास बनकर जीना।

वास्तविक सपनों के इस तरह खोना
जैसे कि
धीमे-धीमे धीमा जहर पीना।”^{४४}

बचपन में ही जिन्दगी का बोझ सिर पर लादने के लिए विवश कई बच्चे हमारे समाज में हैं। खेलने-कूदने और पढ़ने की उम्र में ये रोजमर्रा की जिन्दगी के लिए काम के लिए जाते हैं। बचपन की यादें अक्सर अच्छी होती हैं। लेकिन इन बाल मज़दूरों के लिए बचपन याद रखने लायक नहीं होता। अपनी प्रतिकूल आर्थिक स्थिति के कारण शिक्षा ग्रहण करने के उम्र में स्लेट-पेंसिल उद्योग में काम करके फेफड़ों के बीमार का शिकार होनेवाले बच्चों का चित्रण है ‘मन्दसौर के स्लेट -पेंसिल उद्योग में काम करनेवाले बच्चे की कविता’ शीर्षक कविता में। उन बच्चों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“हमारे फेफड़ों को
धुन की तरह खाने के बाद
स्लेट-पेंसिल तैयार होती है
अक्षर को जन्म देने के लिए।”^{४५}

यह जीवन की विडंबना बन गयी है कि स्वयं अक्षरों से वंचित ये बच्चे अक्षरों को जन्म देने के लिए स्लेट-पेंसिल तैयार करते हैं। ‘शिवकाशी में पटाखे बनानेवाले बच्चे की कविता’ में भी बाल मज़दूरी का चित्रण है। कवयित्री व्यंग्य करती हैं कि बचपन में पटाखे बनने में कोई रोक नहीं है लेकिन ये ही बच्चे नौजवानी में बम बनाये तो वह बड़ा अपराध बन जाता है। कवयित्री की राय में नौजवानी में बम बनना जितना खतरनाक है उतना ही खतरनाक है बचपन में पटाखा बनाना। इस दुःस्थिति की सूचना देते हुए कवयित्री कात्यायनी अपनी व्यवस्था से पूछती हैं-

“आज जीने के लिए
बनाते है पटाखे

कल जीने के लिए
क्यों न बनायें वम?"^{४६}

कवयित्री अपनी कविताओं के द्वारा बच्चों से संबंधित कई मुद्दों को उठाती हैं। हरेक बच्चे को उचित समय पर उचित शिक्षा देकर आत्मविश्वास से भरना है।

५.४.५. बाज़ारवादी अपसंस्कृति

भूमंडलीकृत दुनिया आज तेज़ी से बदल रही है। नयी बाज़ारवादी नीतियाँ भूमंडलीकरण की देन हैं। नयी बाज़ारवादी नीतियाँ हमारी संस्कृति और सभ्यता में गहरी चोट पहुँचा रही हैं। इस नयी दुनिया में एक ओर रोज़ कुछ बन रही है तो दूसरी ओर रोज़ कुछ घट रही है। समय की तेज़ रफ्तार के साथ दुनिया भी तेज़ रफ्तार में है। इसके फलस्वरूप बहुत कुछ पीछे छूट जाता है। पूंजी और सत्ता की दौड़ा दौड़ी में आपसी संबंध एवं मानवीय संवेदनाएँ, दरक-तिरक जाता काल के बर्तन की तरह सब टूटे-फूटे जाते हैं। इस नयी दुनिया का यथार्थ चित्र अंकित करते हुए 'रामधनी' नामक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“वैसे तो समय कभी रुका नहीं रहता है
लेकिन वह कभी-कभी अपनी रफ्तार तेज़
करके कुल्लाँचे जब भरता है
छूट-छूट जाता है पीछे बहुत कुछ।
कुछ टूट-फूट जाता, कुछ
दरक-तिडक जाता है
जीवन की गति है यह। नियति मनुष्य की-
पिछले दस-पन्द्रह या बीसेक वर्षों में
ऐसी ही तेज़ी से
गुज़रा समय और बदला शहर है यह।
बदला है तेज़ी से जाफरा बाज़ार भी।”^{४७}

आज चीज़ों को पहचानना मुश्किल बन गया है। चीज़ों को ही नहीं आदमी को भी पहचानना मुश्किल बन गया है। क्षण में ही लोग, घटना और स्थान विस्मृत हो जाते हैं। सब गड्ढ-मड्ढ हो जाते हैं। 'भूलना' आदमी की आदत बन गयी है। इसकी सूचना देते हुए 'भुलक्कड आदमी की कविता' शीर्षक कविता में वे लिखती हैं-

“लिखी गयी इवारत ही बची रही
लिखनेवाली कलम की
पहचान विस्मृत हो गयी
और इतिहास भी।”^{४८}

आगे वे लिखती हैं-

“लोग और घटना और स्थान
सब गड्ढ-मड्ढ हो गये।
कुछ विस्मृत
कुछ परछाई-भर बनकर रह गये।”^{४९}

इस बाज़ारीकृत दुनिया में आपसी संबंधों में भी बदलाव आ गये हैं। तमाम प्यार और दोस्तियाँ बदल चुकी हैं। संबंधों में पहले की तरह कोई आत्मीयता नहीं। पहले पास पड़ोसियों के बीच आत्म संबंध या सहयोग की भावना थी। लेकिन आज संबंधों में दरार आयी है। इसका चित्रण करते हुए 'बुजुर्ग राहगीर की कविता' में कात्यायनी लिखती हैं-

“मेरे घर का रास्ता
उसके घर से होकर जाता था।
उसके घर का रास्ता
मेरे घर से होकर।
फिर हम दोनों के घरों का रास्ता
कुछ और लोगों के
घरों से होकर।

रास्ते घरों के बीच से होकर
जाते हैं।”^{५०}

आगे कवयित्री कहती हैं कि आज घरों के बीच से होकर कोई रास्ता नहीं। सभी रास्ते बाज़ार से होकर है। हर कहीं आज बाज़ार का वर्चस्व है। प्रस्तुत कविता में इसकी ओर संकेत करते हुए कवयित्री लिखती हैं कि आज मंडियों, आमोदगृहों और बियाबानों से होकर रास्ते जाते हैं। पहले की तरह सागरों, पहाड़ों को लाँघकर घरों तक चलनेवाला कोई रास्ता नहीं। पहले के सभी रास्ते खो गए हैं, या तो लोग उन्हें भूल गए हैं।

बाज़ारीकृत दुनिया में पुराने मूल्य एवं संस्कृति को कोई स्थान नहीं। अलगाव बोध एवं अकेलापन इस नयी बाज़ारवादी संस्कृति की देन है। अपनी सोच और इच्छा के अनुसार चलने के लिए स्वतंत्र है। आज संबंधों का आधार अर्थ प्रधान है। बाज़ार की चमक-दमक एवं भीड़-कोलाहल के बीच में भी लोग अकेला है। आदमी के इस अकेलापन की ओर इशारा करते हुए ‘विचार का तर्क’ शीर्षक कविता में कात्यायनी लिखती हैं-

“एक आदमी सन्नाटे में अकेला था
एक आदमी भय में अकेला था
एक आदमी बाज़ार में अकेला था
एक आदमी दोस्तों में अकेला था
एक आदमी परिवार में अकेला था।”^{५१}

इस भूमंडलीकृत बाज़ारीकृत दुनिया में भाषा का अस्तित्व भी खतरे में है। हमारे भावों और विचारों को व्यक्त करने का प्रमुख साधन है भाषा। लेकिन आज भाषा में कई तरह के बदलाव आये हैं। बाज़ार के मुताबिक नये-नये शब्दों का आविष्कार भाषा में देख पाते हैं। शब्दकोशों से कई शब्द लगातार बहिष्कृत हो जाते हैं। इसकी सूचना देते हुए ‘कहाँ हैं शब्दकोशों से बहिष्कृत शब्द’ कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“शब्दकोशों से कुछ पुराने घोषित हो चुके
शब्द निकाल दिये गये थे।”^{५२}

विचारों की दुनिया में भाषा पर तमाम प्रश्न उठ चुके थे। भाषा से छूट जाना तो हमारी
संस्कृति से छूट जाना है। ‘महानगर में उम्मीदें’ शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“विचारक बिना भाषा के सोचते थे
या फिर भाषा को ही
विचार की तरह बरतते थे।”^{५३}

इस बाज़ारीकृत दुनिया में वर्तमान मनुष्य अपनी सुख-शांति को खोकर एक यंत्रवत
जीवन जी रहे हैं। बाज़ारीकृत अपसंस्कृति ने मनुष्य की संवेदना पर गहरी चोट पहुँचा दी
है। बाज़ारीकृत अपसंस्कृति के चंगुल में फँसे समाज के प्रति कात्यायनी अपनी संवेदना
प्रकट करती हैं।

५.४.६. रिश्तों में दरार

आधुनिक यंत्रवत समाज में मनुष्य का जीवन तनावपूर्ण है। वह अपने जीवनकाल में
विभिन्न स्थितियों से गुज़रता है। आधुनिक मानव अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित बन गए हैं।
औरों के प्रति वे कभी भी ध्यान नहीं देते हैं। वे अपने ही स्वार्थ के बीच रहे हैं। फलस्वरूप
माँ, बाप, भाई, बहन, दोस्त एवं अन्य सगे संबंधियों के साथ जो संबंध है उसमें दरार
आती है। पारिवारिक रिश्ते टूटने लगते हैं। आधुनिक व्यस्त मानव के जीवन की इन
विसंगतियों के प्रति कवयित्री ने अपनी कई कविताओं में संवेदना प्रकट की है। आधुनिक
युग में ‘प्यार’ केवल दिखावा बन गया है। अपने माँ बाप हो या पति - पत्नी हो या अन्य
रिश्तेदार हो मानव कभी-भी अपने निजी मामलों में दूसरों का हस्तक्षेप नहीं चाहते हैं।
आपस में सुख-दुःख बाँटने को वह नहीं चाहते हैं। अर्थात् आपसी संबंध यांत्रिक बन गया
है। प्रेम एक नकली चीज़ बन गया है। इसकी ओर संकेत करते हुए ‘पोंडड और चूँडड’
नामक कविता में कात्यायनी लिखती हैं-

“एक दूसरे के
 आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप से
 बढ़ता है प्यार।
 ऐसे ही चल सकती है
 आज
 आपसी सहयोग और समझदारी से
 जिंदगी
 कि
 वे हों पोंडड और
 आप हो चूँडड।”^{५४}

आधुनिक मानव पहले से अधिक स्वार्थ बन गये हैं। वे अपने आप में सिकुड़कर रहना पसंद करते हैं। अपने घरवालों से बातें करना भी वे नहीं पसंद करते हैं। आज सोशल मीडिया के उपयोग ने इसे बढ़ावा दिया है। पति-पत्नी के बीच संबंधों में दरार आने के लिए यह प्रमुख कारण बन गया है। दोनों अपने-अपने कामों में या सोशल मीडिया पर अडिग रहने के कारण पति - पत्नी के रिश्ते में कमज़ोर होने लगे। आज स्त्री या पुरुष कोई भी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की खोज में चल पड़े हैं। विवाह जैसे बंधन कमज़ोर पड़ने लगता है और समय के अंतराल के साथ संबंध टूट भी जाता है। अन्य सभी संबंधों की स्थिति भी ऐसी हो गई है। बिना संवादों के टूटनेवाली संबंधों की ओर सूचना देकर कवयित्री लिखती हैं-

“दो भाषाएँ थी
 दोनों के बीच
 नहीं था
 कोई संवाद।”^{५५}

प्यार एक सुंदर एहसास है। प्यार के लिए मानव हमेशा तरसता है। प्यार ही हमें किसी व्यक्ति से खींचता या अलगता है। रिश्तों को लंबे समय तक बनाये रखने के लिए

प्यार ज़रूरी है। प्यार के बिना कोई भी रिश्ता नीरस बन जाता है। ‘इन्कलाब के बारे में कुछ बातें’ शीर्षक कविता में कात्यायनी लिखती हैं-

“कभी-कभी लंबे समय तक आदमी नहीं पाता है प्यार
और कभी-कभी तो ज़िन्दगी भर।
खो देता है कई बार वह इसे पाकर भी
फिर भी वह सोचता है तब तक
प्यार के बारे में
जब तक घड़कता रहता है उसका दिल।”⁴⁶

आज प्यार तो खोई हुई एक चीज़ है। यह जानते हुए भी कवयित्री उन्हें खोई हुई चीज़ों में ढूँढना नहीं चाहती हैं। ‘चीज़ों अपनी जगह’ कविता में वे कहती हैं -

“प्यार को
खोई हुई चीज़ों की सूची में नहीं ढूँढना है
(जानते हुए भी कि वहीं है वह)
दुर्घटनाग्रस्त जहाज के
मृत और लापता अभागे यात्रियों के
छपे हुए नामों के बीच भी नहीं
उसे अनवरत खोजना है
दुर्गम लक्ष्यों
साहित्यिक योजनाओं
अविश्वसनीय स्वप्नों
या असहमतियों से घिरी परिकल्पनाओं के बीच
और
पा भी लेना है
वहीं कहीं।”⁴⁹

दोस्ती का रिश्ता सबसे अनमोल माना जाता है। खून का रिश्ता न होने पर भी दिल से निभानेवाला सुंदर रिश्ता है दोस्ती। दोस्तों के साथ आदमी अपने अकेलापन को काटते हैं। आज मित्रता भी स्वार्थ की नींव पर खड़े रहते हैं। वहाँ भी प्यार का अभाव है। सच्ची मित्रता वहाँ होती है जहाँ मित्र आपस में अपने सुख-दुःख बाँटने को तैयार बन जाते हैं। अर्थात् आपसे मैं अपने दिल खोलने को तैयार बन जाते हैं। सच्चे मित्रों के बीच में औपचारिकता की बातें कभी भी आती नहीं। लेकिन समय बदलने के साथ-साथ स्थिति भी बदल गयी है। 'हमारे समय में मित्रों के बीच दिल खोलना' शीर्षक कविता में औपचारिक ढंग से बातें करनेवाले मित्रों पर व्यंग्य करती हैं -

“हम एक भव्य मंच तैयार करते हैं
 रोशनी, झालरों, पर्दे और शानदार - कुर्सियों से सजा हुआ।
 काफी संवेदनशील माइक होता है।
 पहले कुछ संगीत होता है
 कुछ सस्पेंस रचा जाता है
 पृष्ठभूमि तैयार की जाती है
 फिर थोड़ी प्रतीक्षा
 और फिर समय आता है कि
 मुख्यवक्ता एकत्रित जनसमुदाय के सामने
 एकदम से अपना दिल खोल कर रख दे।”^{५८}

दुनिया आज अधिकाधिक संवेदन शून्य बनती जा रही है। प्यार करना भी आज सीखना पड़ता है। 'शीर्षकहीन' नामक कविता में कवयित्री कहती हैं कि प्यार करना सीखने में पूरा जीवन खप जाता है। गंधक के सोते की तरह दर्द खदबदाते रहता है। आज ज़्यादा संकट ग्रस्त स्थिति है। जैसे -

“दिल खोलकर रख देने के लिए
 घोंडे तक नहीं मिलते।”^{५९}

आज के दौर में मानव जीवन में संबंधों को बनाये रखने के लिए कई सुविधाएँ होने पर भी आदमी अकेला बनता जा रहा है। वह अपने सारे संबंधियों जैसे परिवार, पड़ोसी एवं मित्रों से संबंध टूटने लगता है। आज की भौतिकवादी दृष्टि ने संबंधों का आधार अर्थ प्रधान बना दिया है। उन्हें अकेलापन का अनुभव होता है। अकेलापन के संबंध में 'विचार का तर्क' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“एक आदमी सन्नाटे में अकेला था
 एक आदमी भय में अकेला था
 एक आदमी बाज़ार में अकेला था
 एक आदमी दोस्तों में अकेला था
 एक आदमी परिवार में अकेला था
 एक आदमी नींद में अकेला था
 एक आदमी सपने में अकेला था
 एक आदमी जागने में अकेला था
 एक आदमी विचार में अकेला था”^{६०}

असल में रिश्तों का आधार प्यार ही है। लेकिन जब सारे संबंध अर्थ केन्द्रित या मुनाफा केन्द्रित बन गये तब प्यार कहीं खोने लगे। कवयित्री प्यार को पुराने पडने से बचाने की इच्छा प्रकट करती हैं। वे कहती हैं कि पुराने पडने से उसे किसी संग्रहालय में भी स्थान नहीं मिलेगा। इस बेहद अशांत दुनिया में प्यार पाना कठिन बन गया है। 'बूढ़े आदमी की कविता' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

“जिस चुप्पी के साथ
 ओस घास को नम करती है
 धूप, जिस दत्त चित्तता से
 उसे सुखाती है
 एक बेहद अशांत दुनिया में

हमने सोचा

ऐसा ही प्यार करने के बारे में

और बूढ़े हो गये।”⁶⁹

वर्तमान समय में मनुष्य यंत्रवत् जीवन जी रहे हैं। सब अपने-अपने कार्यों में इतना उलझ गये हैं कि औरों के बारे में कोई परवाह नहीं। धनार्जन की भागदौड़ में वे अपने प्यार, परिवार, दोस्त एवं अन्य सगे संबंधियों को भूल जाते हैं। अपने संबंधों के प्रति उदासीन होने के कारण आधुनिक मानव के संबंधों में शिथिलता एवं दरार आ गयी है।

५.४.७. राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण

कात्यायनी अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश करती हैं। कवयित्री स्वयं राजनैतिक कार्यकर्ता होने के कारण वर्तमान भ्रष्ट राजनीति से ज़्यादा परिचित भी हैं। इसके संबंध में वे कहती हैं - “मैं ने अपने को कभी मुख्यतः कविता का आदमी नहीं माना। मैं सबसे पहले एक राजनीतिक कार्यकर्ता हूँ और अपने इस जीवन की सक्रियता के दौरान हासिल विपुल कच्चे माल का शोधन करके कविताएँ - कहानियाँ भी लिखती हूँ। हो सकता है कि ये भाषा, ये बातें उनके लिये ‘आउटडूटड’ घिसी हुई, नारेबाजी जैसी लगें जिनके लिये पराजय के महज एक धक्के के बाद समाजवाद, क्रान्ति, भौतिकवाद द्वन्द्ववाद जैसे शब्द पुराने पड चुके हैं। पर मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि ये बातें मैं हृदय की गहराई से, पूरी ईमानदारी से कह रही हूँ।”⁶²

वर्तमान राजनीति में चाटुकारिता की प्रवृत्ति ज़्यादातर देखने को मिलती है। साहित्यकार एवं समाज सुधारक लोग समाज के प्रति अपने कर्तव्य को भूलकर राजनीति के चाटुकार के रूप में कार्यरत हैं। ‘दिल्ली पर एक कविता’ नामक कविता में राजनीति पर व्याप्त इन चाटुकारिता की प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए वे लिखती हैं-

“दिल्ली पर एक कविता लिखी

दिल्ली में रहते हुए

एक ने
 दूसरे ने
 दिल्ली बिना देखे ही
 कौन था असंभव, दुर्दान्त
 कवि
 हमारे समय का
 एक महान जादूई यथार्थवादी?"^{६३}

समकालीन राजनीति सत्ता प्राप्ति के लिए धर्म और विभिन्न संप्रदायों को राजनीति से जोड़ने का काम करती है। आज राजनीतिज्ञ जाति एवं धर्म को अपने हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। 'आस्था का प्रश्न' नामक कविता में ऐसे फासीवादी ताकतों की ओर संकेत करते हुए कात्यायनी लिखती हैं-

"कुछ भी कर सकती है
 सड़कों पर
 नाच सकती है डायनों - सी
 खप्पर में पीती हुई बच्चों का खून,
 विकट रूप धर, बस्तियों को
 राख करती
 दिली तक जा सकती है
 मच्छर बन मतपेटियों में
 समा सकती है,
 भीम रूप संसद में
 प्रवेश पा सकती है।"^{६४}

राजनीतिक दलों के प्रति जनता की अंधी आस्था ही इन्हीं फाँसीवादी शक्तियों को बढ़ावा देती है। फलस्वरूप समाज में धार्मिक उन्माद पैदा होता है। आतंकवादी हमले भी होते हैं। कोई इसके विरुद्ध आवाज़ उठा नहीं सकता। 'नये रामराज्य का फरमान' नामक कविता में भयावहता का अंकन करते हुए वे कहती हैं कि आज संदेह करनेवालों को उम्र

कैद एवं तर्क करनेवाले को फाँसी की सजा मिलती है। यहाँ नास्तिकों को सूली पर रखने की स्थिति है। अल्प संख्यक पर बहुमत का धर्मराज्य ही चल रहा है।

राजनैतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए सहस्राब्दियों पुरानी ज़मीन पर राजनीतिक दलों ने ही धार्मिक उन्माद का विष बीज बोया था। 'गुजरात २००२' शीर्षक कविता में सत्ता पाने की अदम्य लालसा के कारण राजनीतिक दलों द्वारा किये जानेवाली करतूतों पर कवयित्री लिखती हैं-

“यहीं पैदा हुए हैं ये आक्रान्त।

इन्हें कुछ सरगना जब संसदीय मुखौटे, लगाकर तलवे चाटते हैं

वाशिंगटन - लन्दन - टोक्यो - बर्लिन-पेरिस के अधिपतियों के

तो इन्हीं में से कुछ मंच सजाकर स्वदेशी राग गाने लगते हैं

और तभी, इनके शस्त्र सज्जित गिरोह राष्ट्रीय गौरव की स्थापना के लिए

सबसे निरीह, सबसे बेबस, सबसे मासूम और

सबसे आम लोगों पर

हमला बोल देते हैं।”^{६५}

अपनी कई तरकीबों के सहारे ये आतंक और धार्मिक उन्माद को बनाये रखने की कोशिश कर रहे हैं। '२००७' शीर्षक कविता में निरीह लोगों को अपनी मर्जी के अनुकूल लाने के लिए नई-नई युक्तियाँ सोचनेवाले राजनीतिज्ञों की ओर संकेत हैं-

“बीस रूपये रोज़ पर गुज़र करते

चौरायी करोड़ लोगों के हृदय

अपहृत कर छुपा देने की

नई-नई तक़ीबें सोची जा रही हैं।”^{६६}

जनता को अपने काबू में लाकर उनके अनुकूल बातें करने के लिए ये जनता को विचश करते हैं। सत्ताधारी पार्टी का दल है तो उनकी कामना यह है कि जनता जो कुछ भी सहने पर भी उनके विरुद्ध आवाज़ न उठाये।

साधारण जनता को सामने रखकर हिंसा, लूटपाट और दंगे करनेवाले लोग राजनीतिक दल के लोग हैं। ये लोग सबसे कुटिल किस्म के बेरहम हैं। कभी-कभी अपने ही बीच के लोगों को मार डालने के लिए भी ये इंकार नहीं करते। जनता के विरुद्ध नई-नई तरकीबें बनानेवाले ये जनता को यह विश्वास दिलाने में समर्थ हैं कि वे ही उनकी बुनियादी जरूरतों की पूर्ति के लिए खड़े रहते हैं। '२०१४ कुछ इम्प्रेशन्स' शीर्षक कविता में राजनीतिक दलों के इस कुटिल मानसिकता का चित्रण है। जैसे-

“सबसे कुटिल किस्म के बेरहम हैं वे लोग
जो कत्लगाहों के बाहर
मुफ्त शवपेटिकाएँ बांट रहे हैं
यंत्रणागृहों के बाहर टेबुलों पर
मरहमपट्टी का सामान सजाये बैठे हैं
और लूटे-पिटे लोगों के बीच
रोटी-कपडा-दवाइयों और
किताबें बांट रहे हैं
और छोटी-छोटी पुडियों में
थोड़ी-थोड़ी आज़ादी भी।”^{६७}

आज स्थिति ऐसी हो गयी है कि हम शत्रु और मित्र को समझ नहीं पाते हैं। हमारे बीच में रहनेवाले शत्रु को भी हम पहचान नहीं कर पाते हैं। यह सबसे खतरनाक स्थिति है। 'भगत सिंह के लिए एक गद्यात्मक संबोध गीति' शीर्षक कविता में इंसानियत की रूह में हरकत पैदा करनेवाली प्रतिक्रियावादी शक्तियों का चित्रण करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“सबसे खतरनाक वह हमला होता है जब हमलावार
कहीं बाहर से नहीं आये होते हैं
बल्कि हमारे बीच से ही गिरोहबन्द होती हैं
सर्वाधिक मानवद्रोही आत्माएं

और अपने आसपास की अल्पसंख्यक आवादी को अन्य और
बाहरी घोषित कर देती है,
उनकी बस्तियों को जलाकर राख कर देती है
और बलात्कार और नरसंहार का ताण्डव रचती है
और इन सबके विरोध में राजधानी की
किसी सुरक्षित रौशन सडक पर
सिर्फ कुछ मोमबत्तियाँ जलाई जाती है।”^{६८}

अब लोग क्रिया के पहले ही प्रतिक्रिया की पूरी तैयारियाँ करते हैं। हमला तो कभी अप्रतीक्षित नहीं है। ये लोग पहले ही इसके लिए तैयार होते हैं। कोटे के हिसाब पहले ही ऐसा तय करता है कि रोज़ कुछ बलात्कार होना है, कुछ को ज़िन्दा जलाना है, कुछ बस्तियाँ जलानी हैं और कुछ बच्चों के कलेजों में त्रिशूल भोंकना है आदि। राजनीतिक दलों के नेताओं का एकमात्र लक्ष्य चुनाव जीतना है। इसके अनुकूल माहौल बनाकर सभी विकल्पों को खुला रखना ही इनका लक्ष्य है। आजकल राजनीति कुटिलता का पर्याय बन गयी है। किसी न किसी प्रकार सत्ताधारी पार्टी बनना ही हरेक राजनीतिक दलों का लक्ष्य है। अपनी लक्ष्यपूर्ति के लिए अमानवीय व्यवहार करने में भी वे हिचकते नहीं। ईमानदार व्यक्ति को राजनीति में कोई स्थान नहीं, वे हमेशा पीछे छूट जाते हैं। इसकी ओर संकेत करते हुए ‘प्राम्पटर की कविता’ नामक कविता में कात्यायनी लिखती हैं-

“चीज़ों को
सपाट ढंग से
लेकिन साफ-साफ
कहनेवाले
हमेशा
विंग के पीछे
खड़े कर दिये जाते हैं।”^{६९}

अर्थात् आज राजनीति दूषित हो चुकी है। सत्ता पाने की इच्छा ही राजनीतिक दलों को आगे बढ़ाती है। जनता के हित का परवाह उन्हें नहीं है। बल्कि जनता के विरुद्ध हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ करने को भी कोई हिचकिचाहट नहीं।

५.४.८. शासक वर्ग के अत्याचारों का पर्दाफाश

मानवीय संवेदना पर बल देनेवाली कवयित्री कात्यायनी हमेशा आम जनता का साथ देती हैं। यहाँ जनता का रक्षक ही भक्षक बन जाये तो एक संवेदनशील कवयित्री होने के नाते वे चुप नहीं रह सकतीं। वे अपनी कविताओं में शासक वर्ग द्वारा जनता पर किये जानेवाले शोषण एवं अत्याचारों का पर्दाफाश करती हैं। आपातकाल के दौरान तत्कालीन सरकार द्वारा जनता पर बड़े पैमाने पर अत्याचार किया गया। जन आन्दोलनों को कुचलने का प्रयास हुआ। 'नई ईशा-वन्दना' नामक कविता में कवयित्री शासकवर्गों से कहती हैं कि तुम जनआंदोलनों से भयभीत हो। यूनियनों की रीढ़ निकालना है, और हड़तालियों को कुचलवाना है ताकि जनता आक्रोश नहीं करे। भूखे रहने न चाहनेवालों को गोलियों से कुचलवा देते हैं। आमजनता शासन के अत्याचारों के विरुद्ध संगठित होकर आंदोलन का मार्ग अपनाती है तो सरकार उन्हें कुचलने के लिए कई हथ कंडे अपनाती है। 'नई ईशा-वन्दना' शीर्षक कविता में इसकी सूचना देते हुए व्यंग्य रूप में कवयित्री कहती हैं -

“प्रभू! यूनियनों की रीढ़ निकाल ले
इन्हें भ्रष्ट नेताओं से भर है
हड़तालियों को कुचलवा दे प्रभु
जो नहीं रहना चाहते भूखे,
उन्हें गोलियाँ खिला दे।
प्रभू जनतंत्र का बचा
ज़रूर हो तो आपात काल ला।”^{७०}

स्वाभाविक चीज़ों को अस्वाभाविक महसूस करने का आदि बनाने का काम सरकार ही करती है। ज़रूरतों को गैर ज़रूरी बताते हैं तो गैर ज़रूरी चीज़ों को ज़रूरी बताते हैं। इस प्रकार जनता को असमंजस में डाला जाता है। वे जनता को सत्ता के चाटूकार बनाना चाहते हैं। जो सरकार का चाटूकार बनता हो वे पुरस्कृत भी हो जाते हैं। इसके संदर्भ में 'सुसंस्कृत, भद और ज़िम्मेदार नागरिक होने के बारे में कुछ उद्दण्ड गैरज़िम्मेदाराना विचार' शीर्षक कविता में कवयित्री सूचना देती हैं-

“सत्ता के लिए होंगे हम
अहानिकार विश्वसनीय
और अधिक समझदार हुए तो
सन्निकट, पुरस्करणीय।”⁹⁹

संगठित जनसमूह को देखने पर सत्ताधारी भयभीत होते हैं। वे सत्ता को बनाये रखने के लिए नये-नये षड्यंत्र रचते हैं। अपनी पुलिस एवं सैन्य-शक्ति से किसी न किसी प्रकार जनआंदोलनों को कुचलने का प्रयास भी करते हैं। १७ मई १९९४ में लखनऊ में घटित ऐसी एक घटना पर लिखित कविता है 'गोयबल्स १९९४'। १७ मई १९९४ को लखनऊ में एक अखबार की पीत-पत्रकारिता के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे संस्कृतिकर्मियों पर गुंडों ने कातिलाना हमला किया। फिर पुलिस ने घायल संस्कृतिकर्मियों को ही गिरफ्तार कर लिया। देशव्यापी विरोध के बाद रिहाई के कुछ दिनों बाद लिखी गयी इस कविता में अधिकार एवं पूँजी के बल पर जन संगठन को बेरहमी से कुचलने की नीति को अभिव्यक्त करती हैं-

“और हवा में हरे-हरे नोट
उड़ने लगते हैं
सत्ता के गलियारों में जाकर
गिरने लगते हैं
खाकी वर्दीधारी घायल स्त्री-पुरुषों को

घसीटकर गाड़ियों में
भरने लगते हैं।”¹⁹²

आन्ध्र प्रदेश में एक क्रांतिकारी वामपंथी छात्र-कार्यकर्ती को पुलिस द्वारा सड़कों पर निर्वस्त्र घुमाने की घटना की प्रतिक्रिया में लिखी कविता है ‘वे अपना मृत्युलेख लिखते हैं’। उस लड़की के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करती हुई कात्यायनी लिखती हैं-

“वे निर्वस्त्र करते हैं तुम्हें
घुमाते हैं
तुम्हारे शहर की सड़कों पर
और अपने जीने का हक
एक बार फिर खो देते है।
वे तुम्हें निर्वस्त्र घुमाते हैं सड़कों पर
और नब्बे करोड लोगों की ओर
एक चुनौती उछालते हैं।”¹⁹³

जनता अपने हक की माँग करके गलियों में निकलती है तो सरकार उसके विरुद्ध दमन की नीति अपनाती है। जनशक्ति को रोकने का प्रयास करती है। इसकी अभिव्यक्ति ‘बनी नहीं कविता’ में मिलती है-

“उस दिन मैं ने
पूरी ईमानदारी से
दो-दूक शब्दों में
वयान कर दी वे सारी बातें जो दिल में थीं।
उस दिन
पूरे शहर में रेड अलर्ट घोषित कर दिया गया
रिवेरो और गिल और प्रकाशसिंह का
भेज दिया गया
हालात पर काबू पाने के लिए।

उस दिन
सायरन के शोर से
सारा शहर भर गया”⁹⁸

निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन के दौर में जनता कभी - कभी प्रतिक्रियाहीन बन जाती है। जनता की प्रतिक्रियाहीनता से शासक वर्ग लाभ उठाते हैं। अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए ये निरंकुश शासक जनता को बंदूक की नली से देखते हैं। “जो समाज भविष्य के नागरिकों को रुढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करने की इज़ाजत नहीं देता, वह अपनी गुलामी की बेड़ियों को खुद ही मज़बूत बनाने का काम करता है।”⁹⁹ शासकों की संवेदनशून्य मनोवृत्ति एवं जनता की प्रतिक्रियाहीनता की ओर संकेत करते हुए ‘शिनाख्त’ कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“जहाँ
निशान थे
दीवारों पर गोलियों के
जीवन था।
हत्या जहाँ हुई थी
वहाँ था
सिर्फ सन्नाटा।
काफी कुछ
उपजा करता है
सन्नाटे से।”¹⁰⁰

लोकतांत्रिक प्रणाली में जनता द्वारा चुना गया प्रतिनिधि शासन-व्यवस्था को संभालता है। जनता की बुनियादी सुविधाओं को बढ़ावा देना जनता द्वारा चुनी गयी सरकारों का उत्तरदायित्व है। उसी प्रकार देश की मूल समस्याओं को समझकर, गहन विश्लेषण करके समाधान ढूँढना भी शासक वर्ग का दायित्व है। समस्याओं को पहचान

कर विश्लेषण करने एवं समाधान ढूँढने के लिए विद्वज्जनों के नेतृत्व में सलाहकार समितियाँ भी कार्यरत हैं। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि किसी भी मामले में विद्वज्जनों द्वारा प्रस्तुत समाधान अमल में नहीं लाते हैं। इसकी ओर संकेत करते हुए 'दायित्व-निर्वाह' नामक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“पर न था कोई
जो अमल में लाता
विद्वज्जनों द्वारा प्रस्तुत समाधान।
सो होता रहा
महज़ विचारों का आदान-प्रदान।
चलती रही चाय
और चबाये जाते रहे पान।”⁹⁹

वास्तव में शासक वर्ग हमेशा जनता से भय रखते हैं। सत्ता समाप्त होने पर अपने दुर्ग से बाहर निकलने में वे अरक्षित बन जाते हैं। सत्ता समाप्त होते वक्त शासक वर्ग को कोई स्थान नहीं उनकी स्थिति दयनीय एवं निरीह-सी हो रही है। जनता अपने देश एवं आम लोग को प्यार करनेवाले नेताओं की प्रतीक्षा में है। अचानक लोगों के बीच में पड़े तो वे भयातुर हो जाते हैं। क्योंकि-

“कल तक जो चीज़ रहस्यमय थी
एक सुरक्षित दूरी पर,
आम लोगों की पहुँच से काफी दूर,
बम, कभी-कभार एक काँध-सी नज़र आनेवाली
आतंक पैदा करती हुई
आतंक पैदा करनेवालों द्वारा इस्तेमाल होती हुई
वह यदि अचानक अपने को
लोगों के बीच पाये
तो भयातुर हो जाती है।”¹⁰⁰

तत्कालीन शासक वर्ग संचार के नये माध्यमों के सहारे अपना वर्चस्व मज़बूत बना रहे हैं। बीस रुपया रोज़ाना की कमाई पर जीनेवाले चौरासी करोड़ लोगों को, बीस करोड़ बेरोज़गारों एवं छब्बीस करोड़ आधा पेट खानेवाले लोगों को राष्ट्रीय गौरव के साथ जीने का आदेश दिया गया है। कवयित्री देश में व्याप्त अमानवीय व्यवहारों के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। जैसे-

“निर्देश है कि स्त्रियों को जलाये जाने से पहले, किसानों को
आत्महत्या करने के पहले, गांव के गरीबों, बाँध क्षेत्रों के विस्थापितों
और जंगल पहाड़ के लोगों को दर-बदर होने से पहले
और शहर के फूट पार्थों पर रहे लोगों के कुचल दिए जाने से पहले
कम से कम एक बार राष्ट्रीय गौरव का स्वाद चखना होगा।
और संविधान, न्यायपालिका और तिरंगा की अवमानना
किसी भी हालत में नहीं करनी होगी”⁹⁹

आम जनता के प्रति संवेदना रखनेवाली कवयित्री अपनी कविताओं के माध्यम से शासक वर्ग के मनमानेपाने को खुलकर दिखाने में हिचकती नहीं। वर्तमान जनतांत्रिक-प्रणाली में उन्हें विश्वास कम हो रहा है। पूँजीवादी शासकों के हाथों की कठपुतली बन गया है वर्तमान लोकतंत्र। जनविरोधी कार्यों में लगे हुए शासक वर्ग सामान्य जनता का शोषण कर रहे हैं। कात्यायनी की कविता वर्तमान शासकों के अन्याय एवं अत्याचारी प्रवृत्तियों को खुलकर दिखाने का प्रयास है।

५.४.९. चुप्पी की संस्कृति

आज समाज में अपराध की वारदातें बढ़ती जा रही हैं। कई तरह की सामाजिक विसंगतियों से जनता जूझ रही है। एक ओर सामान्य जनता आर्थिक अभाव से तडप रही है तो दूसरी ओर पूँजिपति विलासिता का जीवन जी रहे हैं। देश में हिंसा, बलात्कार, अपराध, अक्रामकता एवं लूटपाट बढ़ने पर भी जनता निष्क्रिय है। कात्यायनी अपनी कई कविताओं में प्रतिक्रियाविहीन समाज के प्रति सहानुभूति प्रकट करती हैं। भारत एक

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। फिर भी कभी-कभी जाति, धर्म, लिंग एवं भाषा के नाम पर कई मुठभेड चलते रहते हैं। भीषण नरहत्या भी होती है। सबसे निरीह, सबसे बेबस, सबसे मासूम और आम लोगों पर यहाँ हमला चल रहा है। ये फासिस्ट शक्तियाँ संसद, संविधान और न्यायलयों में भी घुस गई हैं। फासिज़्म तो देश के ऊपर फैल गयी है। अपने चारों ओर जले-अधजले शरीर, बिखरे मांस के लोथड़े, गर्भवती स्त्री का पेट चीरकर निकाले गये शिशु की छितराई बोटियाँ आदि देखने पर भी जनता निष्क्रिय है। कवयित्री कहती हैं कि हर कहीं अराजकता फैल जाने पर शांति कपोत उड़ाने और मोमबत्तियाँ जलाने से कोई फायदा नहीं। आगे भीषण हिंसा देखने पर भी चुप रहनेवाली जनता से 'गुजरात २००२' कविता में वे पूछती हैं-

“मुझे बताओ
 क्यों तुम चुप बैठे रह गये थे
 मुझे बताओ
 जब उपद्रवी पगलाये हुए थे
 क्यों नहीं तुमने उठाये हथियार
 वज्रधाक के बने अपने वे धन
 और उन्हें तब पीट-पाटकर
 पटरा क्यों नहीं कर डाला था
 उस फासिस्टी मलबे को?”^{८०}

निष्क्रिय जनता आम सहमति पर पहुँच गयी है। लोग समझते हैं कि हमारा आसमान छोटा-सा है। वे छोटे संतोष को ही जीवन का परम सुख मानते हैं। वे किसी का कुछ नहीं बिगाड़ने को चाहते हैं। कठिन समय की दैत्याकार चुनौतियों के सामने सब निष्क्रिय हैं। सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले साहित्यकार भी आज निष्क्रिय या चुपचाप बन गये हैं। कात्यायनी के शब्दों में-

“मुमकिन है कि
 इस कठिन समय की दैत्याकार चुनौतियों के सामने

हम बीने लग रहे हैं।

और शायद हमारी कविताएँ।

सभी सहमत थे

और इस आम सहमती से खुश निश्चिन्त”^{८१}

‘सौ साल कैसे जिये’ नामक कविता में बिना प्रतिरोध करके चुपचाप सब कुछ सहनेवाले लोगों के प्रति कवयित्री सहानुभूति प्रकट करती हैं। ये लोग समाज में व्याप्त महंगाई, भ्रष्टाचार, दंगों, बलात्कार, भूखमरी और युद्ध को भी ईश्वर की लीला समझकर चुपचाप रहते हैं। डंकल गैट, पर्यावरण एवं साम्राज्यवाद की चर्चाओं से जितना दूर रह सकते हैं तो उतना ही अच्छा मानते हैं। कविता में झगड़ों से बचानेवाले एवं गुस्से में न आनेवाले निष्क्रिय जनता का चित्रण है। जैसे-

“रोशनी से बच

अंधेरे कमरे में बैठें काली कमरिया ओढकर

बूजा रंग न चढे कोई

न व्यापे जगत गती

ऐसी सिल बने जिस पर

लगातार रस्सी आने -जाने से की

न पडे कोई निशान।”^{८२}

चुप्पी की संस्कृति को थामनेवाले लोग खुद ही बनाए हुए कैद में रहते हैं। समाज की ओर खुलनेवाली खिड़कियों और दरवाज़ों को स्वयं बनाई गई सिटकिनियों के सहारे वे बंद करते हैं। ये सिटकिनियाँ इतनी बुरी होती हैं कि अपनी संवेदनाओं के दरवाज़ों को भीतर से ही बंद करती हैं। अर्थात् आज मानव संवेदनशून्य एवं प्रतिक्रियाविहीन बन गए हैं। ‘सिटकिनी’ कविता में इसी संदर्भ को लेकर कवयित्री लिखती हैं-

“इनकी मदद से हम खुद को
केंद्र करते हैं
बन्द दरवाज़ों के पीछे।”^{८३}

कवयित्री कहती हैं कि आज हर कहीं जीवित मुर्दों को देख पाते हैं। मतलब यह है कि जिनकी दृष्टि, आत्मा एवं सोच - विचार में जमती है उनको उन्होंने मृत घोषित किया है। जहाँ मानवीयता का क्षरण होता है वहाँ मानव एकदम मृत बन जाता है। कवयित्री की राय में आज युवा लोग अपने विचारों में एकदम वृद्ध बन गए हैं। वे हमेशा कुछ निष्फल विरोध बताते हैं। प्रतिक्रियाविहीन समाज के सन्नाटे में हम जी रहे हैं। जीवित रहते हुए भी जड़वत् जीवन जीनेवाले लोगों के प्रति हमदर्दी प्रकट करके ‘मरते हुए लोग’ कविता में वे लिखती हैं-

“अस्पतालों से
और घरों में विस्तरों से उठाए
बाहर सड़कों पर निकल आये हैं
मरते हुए लोग।”^{८४}

कवयित्री भलीभाँति जानती हैं कि आज वे उन लोगों के बीच में रहती हैं, जो अपने जीवन की कुलीनता-शालीनता कूपमण्डूकता में धुत्त अंधे लोगों के बीच रहते हैं। संक्षेप में कहें तो उनकी अधिकांश, कविताएँ जनता की निष्क्रियता पर, संवेदनशून्यता पर गहरी चोट पहुँचाती हैं।

५.४.१०. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने का अधिकार है अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। विचारों का स्वतंत्र प्रसारण होना चाहिए। भारतीय संविधान भारत के हर नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था को बनाये रखने का मूल आधार है अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। बोलकर, लिखकर और छापकर हम भावों और विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। लेकिन आज अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी बाधाएँ आ

गई हैं। चाहे व्यक्ति हो, संस्था हो, विशेषकर पत्रकार या साहित्यकार हो वे अपने विचारों को, कभी-कभी देश के शासन संबंधी होते हैं या देश में व्याप्त मामलों पर होते हैं, खुलकर अभिव्यक्त करते हैं। लेकिन आज सरकार द्वारा इसमें प्रतिबंध लगाया जाता है। कवयित्री कात्यायनी इसके विरुद्ध हैं। क्योंकि कात्यायनी की कविताएँ यथास्थिति की कटु आलोचना हैं। वर्चस्ववादी शक्तियों से हठी प्रतिरोध उनकी कविताओं में देख पाते हैं। हमारे समय की त्रासदियों एवं विडंबनाओं को निर्भीक प्रस्तुत करने में वे हिचकती नहीं।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर देखनेवाले प्रतिबंधों का विरोध वे अपनी कविताओं के माध्यम से करती हैं। हरेक साहित्यकारों को आगे आकर अन्याय के खिलाफ बिना किसी डर से आवाज़ उठाना होगा। समाज के हित के लिए अपनी राय प्रकट करनी चाहिए। 'जी चाहता है' नामक कविता में इस दुनिया के दर्द, आँसू एवं समस्याओं के बारे में लिखने की चाहत है। कवयित्री कहती हैं चाहे वह सोमालिया और सरगुजा में भूखे मरते बच्चों के बारे में हो या इराक में अमेरिकी बम मारी की और लॉस एंजेलस के दंगों के बारे में हो खुलकर अभिव्यक्ति करने के लिए जी चाहता है। पेरू में जारी मुक्ति-युद्ध के और आन्ध्र में जारी दमन-चक्र के बारे में भी खुलकर बातें करना वे चाहती हैं। हाल की कई घटनायें हमें यह याद दिलाती हैं कि समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करना एक चाहत मात्र बन गई है। कविता अभिव्यक्ति का साधन है। कविता और कवि के लिए स्वतंत्रता अनिवार्य है। वे अपने समय की भयावह स्थितियों के बीच से ही गुज़र रही हैं। इसकी ओर संकेत करते हुए 'लौटने के बारे में (दो)' कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“यह ज़रूरी होता है
क्योंकि बेहतर दिनों की ओर बढ़ते हुए
सबसे कठिन दिनों और
सबसे खतरनाक, घाटियों से गुज़रते हुए
कविता को स्वयं ही कुछ कहने देना होता है।”^{८५}

कवयित्री भलीभाँति जानती हैं कि आज कवि कर्म तो बहुत खतरनाक बन गया है। वर्चस्ववादी शक्तियाँ बोलने के लिए तर्क तरीकों का इस्तेमाल कर रही हैं। 'दिल्ली में कविकर्म' कविता में वे लिखती हैं-

“ताकत से डरे!मरे।

जन्मे।

फिर ताकत से डरे।”^{८६}

‘बनी नहीं कविता’ शीर्षक कविता में कवयित्री पूरी ईमानदारी से अभिव्यक्ति की आज़ादी पर सवाल उठाती हैं। अपने दिल की सारी बातों को बिना संकोच से बयान करती हैं तो नतीजा यह निकला है कि-

“उस दिन

पूरे शहर में रेड अलर्ट घोषित कर दिया गया

रिबेरो और गिल और प्रकाशसिंह को

भेज दिया गया

हालात पर काबू पाने के लिए।

उस दिन

सायरन के शोर से

सारा शहर भर गया।”^{८७}

अभिव्यक्ति की आज़ादी पर अंकुश लगाना मानवीय संवेदनाओं पर होनेवाली गहरी चोट है। हरेक मानव की प्रत्येक अभिव्यक्ति का अपना महत्व है। एक नागरिक होने के नाते अपनी संवेदनाओं को समाज के समक्ष प्रकट करना या अभिव्यक्त करना ज़रूरी है। युग जीवन के यथार्थ को मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर अभिव्यक्ति कविता का मुख्य उद्देश्य है।

५.४.११. सांप्रदायिकता एवं आतंकवाद

सांप्रदायिकता एक विषैला सर्प है, जो आज हमारे दौर की सबसे बड़ी चुनौती है।

इसके पीछे चलनेवाले हर व्यक्ति धर्मांध बन जाता है। विभिन्न धर्म के मूल तत्वों को लेकर लोग आपस में टकराते हैं। बरसों से एक जुट होकर भाइचारे से रहते आए लोग आपस में मुठभड करते हैं। वर्चस्ववादी ताकतें इसके पीछे कार्यरत हैं। भारत में सांप्रदायिकता की बढ़ोत्तरी के मूल में भारत-पाक विभाजन है। समकालीन हिंदी कविता सांप्रदायिकता को अच्छी तरह से पहचान गई है। एक ओर सांप्रदायिकता के भीषण स्थिति को अभिव्यक्त करती है तो दूसरी ओर सांप्रदायिकता के विरुद्ध सांप्रदायिक सद्भाव एवं मानवीय मूल्यों पर बल देती है।

कवयित्री कात्यायनी ने धर्म के कट्टरवादी स्वरूप एवं सांप्रदायिकता की भीषणता के विभिन्न प्रभावों को अपनी कविताओं में बखूबी दर्ज की है। भारतीय जन मानस को झकझोर करनेवाली अनेक बर्बर घटनाएँ भारत में हुई हैं। कश्मीर समस्या, पंजाब समस्या, इंदिरा गाँधी और राजीव गाँधी की हत्या, बाबरी मस्जिद का विध्वंस, मुंबई पर आतंकवादी हमला, गुजरात हिंसा आदि ने जन-सामान्य के जीवन को संकटग्रस्त बना दिया था। सांप्रदायिक फासीवादी बर्बरों के ताण्डव का चित्रण है कात्यायनी की कविता 'गुजरात-२००२' में। सांप्रदायिक दंगों की भीषणता का अंकन करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“गंदगी और समस्त मानवीय चीज़ों से घृणा का सैलाब-सा

गुजर जाता है हमारे ऊपर से

और हम देखते हैं अपने चारों ओर, सड़कों पर, गलियों में फैले

मलबे में दबे जले- अधजले शरीर, बिखरे हुए मांस के लोथड़े।

गर्भवती स्त्री का पेट चीरकर निकाले गये शिशु की छितराई बोटियाँ

चौराहों पर, स्टेशनों और बस अड्डों पर लावारिस पड़े

चाकुओं - त्रिशूलों से गुदे-बिंधे नग्न नारी शरीर,

आसमान की ओर धूरती फटी-निर्जीव आँखें

पत्थरों से ढंक दी गयी बलात्कृत स्त्रियाँ

और कौवे और चीलें और गिद्ध, और कुत्ते

और सियार और लोमडियाँ

और लकडबग्घे।”^{८८}

वित्तीय पूँजी के बिलों से निकले अंध-आस्था रखनेवाले धर्मान्ध लोग हमारे महापुरुषों के स्मृति चिह्नों पर, इतिहास एवं मानववाद पर, स्वनों और भविष्य भूणों पर पूरी ताकत के साथ दावा बोले थे। स्वार्थ प्रेरित सत्ताधारी ही सांप्रदायिकता के नाम पर लाभ उठाते हैं। हरेक सांप्रदायिक दंगों के पीछे सत्ताधारियों का षड्यंत्र अवश्य है। इसकी ओर संकेत करके वे लिखती हैं-

“गोधरा चाहे हफते भर से जारी रामसेवकों
से उत्पात की प्रतिक्रिया हो
या चाहे खुद इन्हीं की रची साजिश हो
या इन्हीं जैसे किन्हीं और तालिवान की
या आई.एस.आई और अल-कायदा की
या फिर महज कुछ अपराधियों की करतूत रही हो,
जो गोधरा के बाद हुआ वह एकदम
पूर्वनियोजित था।
अनियंत्रित दंगा नहीं, वह सत्ता द्वारा आयोजित
नरसंहार था।”^{८९}

‘हत्यारा’ नामक कविता में कवयित्री लिखती है-

आज पूरे देश में हत्यारों का निशान मिलता है। कात्यायनी कहती हैं कि पूरब के किसी सराय में उसकी छोड़ी हुई कंवल, पिंडारी ग्लेशियर के निकट उसके कैनवैस के जूते, शिवालिक की पहाड़ियों में चमड़े की जीन, सोनपुर के मेले में उसका घोडा, केरल के समुद्र-तट पर सफरी थैला, गुजरात के किसी गृहस्थ के घर उसकी कलम हम देख पाते हैं। अर्थात् हमारे राष्ट्र के कोई भी कोना इन हत्यारों से मुक्त नहीं है। देश इतना अरक्षित बन गया है कि ये मानवद्रोही हमलावार हमारे बीच में ही रहकर हमला कर रहे

हैं। जातिगत एवं धार्मिक विषबीजों को उगानेवाले हत्यारों के अमानवीय व्यवहारों को कवयित्री 'भगत सिंह के लिए एक गद्यात्मक सम्बोध-गीति' नामक कविता में यों चित्रित करती हैं-

“अपने आसपास की अल्पसंख्यक आबादी को 'अन्य' और
बाहरी घोषित कर देती है
उनकी वस्तियों को जलाकर राख कर देती हैं
और बलात्कार और नरसंहार का ताण्डव रचती हैं।”^{१०}

आज ऐसी स्थिति हो गई है कि इस मुल्क में रहना है तो आस्थावान बनना ज़रूरी बन गया है। आस्था बहुमत का अधिकार होती है। आस्था का न्याय से कोई संबंध नहीं होता। 'आस्था का प्रश्न' नामक कविता में आस्था के संबंध में कवयित्री लिखती हैं-

आँखें नहीं होती आस्था की
कुछ भी कर सकती है-
सडकों पर
नाच सकती है डायनों -सी
खप्पर में पीती हुई बच्चों का खून
विकट रूप धर, वस्तियों को
राख करती
दिली तक जा सकती है
मच्छर बन मतपेटियों में
समा सकती है,
भीम रूप धर संसद में
प्रवेश पा सकती है।”^{११}

सत्ता का सबसे कारगर हथियार है धर्म। आज सत्ता ने धर्म को अपनी स्वार्थ पूर्ति का साधन बना दिया है। कात्यायनी अपनी कविता 'क्या स्थगित कर दें कविता?' में लिखती हैं - परम-पुनीता साध्वियों के उन्मत्त भाषणों एवं शंकराचार्य जैसे महान पुरुषों

को नेपथ्य में धकेल कर कोई पंसारी धर्मध्वजधारी बना है। ऐसी स्थिति में धर्मान्धता फैलना एवं सांप्रदायिक दंगों में सड़कों पर लोगों का मरना आम बात होना स्वाभाविक ही है। धर्मान्धता फैलानेवाले धर्म के ठेकेदार धर्म या जाति के नाम पर जनता के बीच भेदभाव पैदा करते हैं। 'दीवारों के बारे में' नामक अपनी कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“कभी वहाँ नहीं थीं दीवारें
जहाँ आज हैं।”^{९२}

कात्यायनी ने अपनी कविताओं में सांप्रदायिकता की भीषणता एवं दुष्प्रभाव को रेखांकित किया है। 'आह मेरे लोगो ओ मेरे लोगो' शीर्षक कविता में सांप्रदायिकता की भयावहता का चित्रण करते हुए वे कहती हैं कि सांप्रदायिकता ने मानवता को कुचल दिया है। मानव के सहज विवेक को चूर कर दिया है। हमारी संस्कृति, सच्चाई एवं श्रेष्ठ विचारों को भी दफन कर दिया है। कवयित्री लिखती हैं-

“धुआँ और राख और जली-अधजली लाशों
और बलात्कृत स्त्रियों - बच्चियों और चीर दिये गर्भों
और टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये शिशु-शरीरों के बीच,
कुचल दी गयी मानवता, चूर कर दिये विवेक और
दफन कर दी गयी सच्चाई के बीच
संस्कृति और विचार के ध्वंसावशेषों में
कुछ हेरते, भटकते
रूदन नहीं, सिसकी की तरह,
उमड़ते रक्त से रुंधे गले से
वस निकल पडते है नाजिम हिकमत के ये शब्द
आह मेरे लोगो
साधो, ये मुरदों का गाँव”^{९३}

५.४.१२. न्याय व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न

लगता है कि हमारी न्याय व्यवस्था सत्ता के नियंत्रण में है। आम जनता को न्यायव्यवस्था के बारे में जानकारी नहीं के बराबर है। इसलिए वे न्याय की माँग नहीं कर सकते हैं। न्याय का निषेध होने पर पहचानता भी नहीं। न्याय पालन करनेवाले जज एवं वकील कभी-कभी सत्ता के हाथों की कटपुतली बनकर सत्ताधारियों के लिए काम करने के लिए मज़बूर होते हैं। कात्यायनी ने अपनी कविताओं के माध्यम से न्याय व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर किया है। 'वकील की कविता' शीर्षक कविता में वकील अपनी मज़बूरी प्रकट करते हुए कहती हैं।

“कहीं कहीं हम मज़बूर होते हैं

जैसे कि नदी में उतराती

तमाम लाशों को

हम न्याय नहीं दिला सकते।

अफसोस!

वे अक्सर लावारिस होती हैं।”^{१४}

देश की नदियों, सडकों के किनारे, खेतों-बियाबानों, प्लेटफोर्मों और रेल-लाइनों पर पड़ी लावारिश लाशों से न्यायपालिका का कोई रिश्ता नहीं। इसकी ओर संकेत करते हुए 'वकील' शीर्षक कविता में कात्यायनी की पंक्तियाँ हैं-

“न्यायपालिका का क्या रिश्ता होता है

क्या रिश्ता होता है

बन्दूक की गोली से

और ज़िन्दगी से न्याय का

कानून की किताबों में

इनका उल्लेख नहीं होता।”^{१५}

लावारिश लाशों को न्याय कभी नहीं मिलेगा, क्योंकि मुकदमा पैसे के आधार पर चलता है। आज हमारी कानून व्यवस्था ज़्यादा महंगी हो गयी है। अब स्थिति ऐसी हो गयी है कि जिनके पास पैसा है उनको ही न्याय मिलने की संभावना है। कभी सामान्य जनता न्याय के पहुँच के बाहर होती है। यहाँ जज भी धाराओं-अनुच्छेदों से ज़िन्दगी तोलती है। इस न्याय व्यवस्था से बेगुनाहों को तक सजा मिलती है। 'जज की कविता' नामक कविता में जज झूठी न्याय व्यवस्था के हिस्सा होने के कारण त्रस्त दीख पड़ता है। बेगुनाहों को सजा देने से उनके हाथ रक्त से सना हुआ है। उन्हें ऐसा लगता है कि अपने रक्त रंजित हाथों से धरती भी गीली बन गई है। कवयित्री को जजों का काम कसाई का काम जैसा लगता है तो वे जज के माध्यम से कहती हैं-

“जजी में क्या रखा है।

सोचा हूँ होटलों में

मुर्ग सप्लाई करूँ

या चमड़े के कारखाने में सुपरवाइज़र हो जाऊँ।”^{१६}

कभी-कभी सत्ताधारियों या शासक वर्गों की इच्छा के अनुसार आम जनता के विरुद्ध फैसले निकालने के लिए न्यायालय मज़बूर बन जाता है। 'हमारे समय में कुछ काव्य-विस्मृत शब्द और क्रियाएँ' नामक कविता में इसकी ओर संकेत करती हैं-

“उस दिन

देश की सबसे ऊँची कचहरी ने

फैसला सुनाया था

राजधानी के पर्यावरण को साफ रखने के लिए

बीस लाख मज़दूरों को

शहर-बंदर कर देने का।”^{१७}

कात्यायनी अपनी कविताओं के माध्यम से हमारी न्यायव्यवस्था का पर्दाफाश करती हैं। वे यह साबित करना चाहती हैं कि न्याय व्यवस्था में आम जनता के लिए जगह कम

है। उनके सामने न्याय देवता आँखों में पट्टी बाँधकर खड़ी है। यह मानवीय संवेदनाओं पर पड़ी गहरी चोट है। न्याय व्यवस्था हरेक नागरिकों की रक्षा के लिए बनी हुई है। लेकिन आज न्याय व्यवस्था के फैसलों से जनता परेशान हो जाती है।

५.४.१३. सांस्कृतिक संकट

मनुष्य के विकास का अर्थ है उसका सांस्कृतिक होना। मनुष्य की श्रेष्ठता उसकी संस्कृति पर निर्भर है। अपने सांस्कृतिक बोध के अनुसार ही वह समाज में व्यवहार करता है। अर्थात् संस्कृति ही हमारी पहचान है। भारत की संस्कृति सदियों से विश्व स्तर पर अनूठी है। लेकिन आज हम अपनी संस्कृति से पीछे चलते जा रहे हैं। अर्थात् भारतीय संस्कृति में कई तरह के बदलाव आये हैं। बिना शंका से कह सकते हैं कि 'अतिथि देवो भव', 'वसुधैव कुटुंबकम्', अनेकता में एकता' आदि भावनायें हमसे कहीं छूट गयी हैं। आधुनिकता की चकाचौंध में हम अपनी संस्कृति एवं सभ्यता को दर किनार कर रहे हैं। हमारी संस्कृति पर पड़े संकट की स्थिति ने मानवीय संवेदना पर गहरी चोट पहुँचा दी है। कवयित्री कात्यायनी ने अपनी कविताओं के माध्यम से सांस्कृतिक संकट को उजागर किया है। भाईचारे का मनोभाव हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। लेकिन आज वह मनोभाव नष्ट होता जा रहा है। 'बुजुर्ग राहगीर की कविता' नामक कविता में वे कहती हैं कि पहले रास्ते घरों के बीच से होकर जाते थे। लेकिन आज रास्ते मंडियों, आमोदगृहों एवं बियाबानों से होकर जाते हैं। आज घरेलू संस्कृति को छोड़कर लोग बाज़ारू संस्कृति की ओर दौड़ रहे हैं। बाज़ारू संस्कृति में संबंधों का कोई मूल्य नहीं। वहाँ सारा संबंध मुनाफा केंद्रित है। मुनाफा केन्द्रित समाज में मानवीयता का कोई स्थान नहीं होता है। कवयित्री इस पर आशंका प्रकट करके नई पीढ़ी के लिए लिखती हैं-

“खुदाइयों के बाद

घरों का इतिहास तो निकल आता है

पर टूटे हुए दिलों

और खोये हुए रास्तों का नहीं।
 इसलिए मेरे बच्ची,
 राहें भटकनी नहीं चाहिए भरसक
 न हीं दिल टूटने चाहिए
 हमेशा के लिए।”^{९८}

इस अंधेरे समय में हमारी श्रेष्ठ संस्कृति एक स्मृति चिह्न बन गयी है। खुद से बेखबर होकर हम सुख बुनते रहते हैं। विरासत में मिली हुई सभी चीज़ें आज लापता हो गयी हैं। ये चीज़ें हमारी स्मृतियों में स्थाई जगह पा चुकी हैं। ‘रंगों और उम्मीदों की कुछ बातें’ नामक कविता महत्वपूर्ण है। पंक्तियाँ देखिए-

“नयी सदी जब तय कर चुकी थी
 तीन वर्षों से कुछ अधिक समय का फासला,
 हमने कुछ गुमशुदा चीज़ों के बारे में
 संजीदगी के साथ कुछ बातें की-
 चीज़ें जो गुम होकर
 हमारी स्मृतियों में स्थाई जगह पा चुकी थीं
 हमने उनके रंगों और आभाओं और
 प्रभावों को याद करने की कोशिश की।”^{९९}

हमारे समाज और संस्कृति निरंतर बदलती रहती है। कवयित्री की राय में निश्चल पड़ा पत्थर भी बदलता है। भाषा हमारी निशान है। उस भाषा में भी कई तरह के बदलाव हम देख पाते हैं। भाषा भी बाज़ारू वातावरण के अनुरूप बदल चुकी है। कवयित्री के शब्दों में-

“भाषा जितनी पंगू है और विचार मानसिक उपनिवेशन के शिकार,
 विकास दर के शाही जुए में जकड़े हुए बौद्धिक जहाँ
 महाशक्ति बनने की मृग-मरीचिका का पीछे भाग रहे हैं।”^{१००}

कवयित्री कात्यायनी अपनी विराट संस्कृति पर पड़े संकट को लेकर परेशान हैं। संस्कृति के विकास से ही मानवीयता का विकास होता है। जहाँ सांस्कृतिक संकट उत्पन्न होता है वहाँ मानवीयता का नष्ट होना स्वाभाविक ही है।

५.४.१४. पिंजरे में बंद स्त्री जीवन

आधुनिक साहित्य एवं समाज के बहुचर्चित विषयों में एक है स्त्री जीवन और उसकी अस्मिता की समस्या। नारीजीवन के सुख-दुख, स्त्री के प्रति उपेक्षा का भाव, उसका अस्तित्व, नारी शोषण आदि अनेक मुद्दों पर समकालीन कविता अत्यंत गहराई से चर्चा करती है। इस पौरुषपूर्ण समय में परतंत्रता की पीडा सहकर जीने के लिए विवश नारी की अकुलाहट, निरीहता और मज़बूरी को कात्यायनी जी ने अपनी कविताओं में अंकित की है। विभिन्न सामाजिक कुरीतियों, एवं मज़बूरियों का शिकार होकर वह सदियों से जी रही हैं। अपने ही एकांत में कैद जीवन जीने के लिए विवश नारी परंपरागत रुढ़ियों को तोड़ने में असमर्थ बन जाती है। डॉ.अरविंदाक्षन के शब्दों में “कात्यायनी की इन समकालीन कविताओं में नारी अथवा नारीमुक्तिवादी दृष्टि है, स्त्री को स्त्री तक सीमित करने की दृष्टि नहीं। वह एक सीमित कटघरा नहीं है। मात्र लिंग-संदर्भों वर्चस्व से स्त्री को मुक्त करने की इच्छा ही उनमें प्रस्फुटित नहीं होती, बल्कि मानव-मात्र को मुक्त करने की सांस्कृतिक दृष्टि के रूप में ही उनकी इन कविताओं में नारीमुक्तिवादी दृष्टि विकसित हुई है।”^{१०१} इस पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री का सोचना भी खतरनाक सिद्ध किया जाता है। ‘स्त्री का सोचना एकान्त में’ शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं कि स्त्री एकांत में सोचती है। लेकिन नतीजे तक पहुँचने से पहले ही उसे खतरनाक घोषित कर दिया जाता है। ‘दाहक जीवन-दाह’ नामक कविता में स्त्री के प्रति संवेदना प्रकट करती हुई कवयित्री कहती हैं-

“ज़िन्दगी की सरहदों में

लपलपाती रहती है

अग्नि की लाल जिह्वाएँ
 मृत्यु में ही मुक्ति
 देखती है स्त्री
 बार-बार बरती है उसे।”^{१०२}

कात्यायनी की ‘हाकी खेलती लड़कियाँ’ कविता में सब कुछ भूलकर खेलनेवाली लड़कियों की मानसिकता का अंकन है। वही लड़कियाँ घर में घरवालों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती हैं। खेल के मैदान में निस्संकोच-निर्भीक दौड़ती-भागती और हँसती रहनेवाली लड़कियाँ खेल के बाद भीषण जंग से निपटने की तैयारी करके घर लौटती हैं। नहीं तो वह सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन हो जाएगा। ‘सात भाइयों के बीच चंपा’ नामक कविता में एक लड़की के टूटते-बिखरते सपनों को कवयित्री ने वाणी दी है। उनके प्रति संवेदना प्रकट करती हुई कवयित्री लिखती हैं-

“बाप की छाती पर साँप-सी लोटती
 सपनों में
 काली छाया-सी डोलती
 सात भाइयों के बीच
 चंपा सयानी हुई।
 ओखल में धान के साथ
 कूट दी गयी
 भूमी के साथ कूड़े पर
 फेंक दी गयी।”^{१०३}

कात्यायनी ‘इस पौरुषपूर्ण समय में’ नामक संग्रह की ‘त्रियाचरित्र पुरुषस्यभाग्यम्’ ‘एक असमाप्त कविता की अति प्राचीन पांडुलिपि’, ‘एक भूत पूर्व नगरवधु की दुर्गपति से प्रार्थना’, ‘औरत और घर’, ‘एक गौरतत्व सिचुएशन’ आदि कविताओं में स्त्री जीवन के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करती हैं। ‘इस पौरुषपूर्ण समय में’ नामक कविता में कवयित्री कहती हैं इस सान्द्र क्रूरता भरे अंधेरे समाज में स्त्री का ज़िन्दा रहना ही अद्भुत है।

गुरु शिष्या के संवाद के रूप में लिखी गई कविता है 'एक असमाप्त कविता की अति प्राचीन पाण्डुलिपि'। अपने अधिकारों से वंचित होकर दोयम दर्जे की ज़िन्दगी जीने के लिए विवश नारी के प्रति संवेदना प्रकट करती हुई वे लिखती हैं-

“स्त्री हूँ, अज्ञान के अंधकार में भटकने को पैदा हुई-
यह जानने में ही उम्र का एक बड़ा हिस्सा खत्म हो गया।”^{१०४}

पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री को निरक्षर बेवकूफ बनाना चाहता है, ताकि वह पुरुष के विरुद्ध प्रतिक्रिया न कर सके। कुछ औरत तो ऐसी हैं कि अपने समाज के संबंध में उन्हें कोई जानकारी नहीं है। घर की चारदीवारी के अंदर कैद होकर रहनेवाली औरतें स्त्रीवर्ग की उपलब्धियों से भी अपरिचित बनी रहती हैं। हमेशा निपट गँवार ही गँवार रहना उनकी नियति है। 'नहीं हो सकता तेरा भला' नामक कविता में कवयित्री इन्हीं औरतों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखती हैं-

“यह औरत तो बस भात राँध सकती है
और बच्चे जन सकती है
इसे भला कैसे मुक्त किया जा सकता है?”^{१०५}

पुरुष सत्तात्मक समाज ने नारी जीवन की खुली हुई वातायनों को बंद करके, सभी रोशनदाने मूँद दिये हैं। मातृत्व की महानता की याद दिलाते हुए धरती के समान उन्हें सर्वथा के लिए सर्वसहा बना दिया है। उसकी रूह को घुप्प अँधेरे में कैद कर दिया है। पुरुष सत्तात्मक समाज के लिए स्त्री केवल भोग की वस्तु है। पुरुष के आमोद-प्रमोद एवं उनकी स्वार्थपूर्ति के लिए एक साधन मात्र है। कवयित्री यह बताना चाहती हैं कि पुरुष प्रधान समाज स्त्री शरीर एवं सौंदर्य को अपनी मुनाफा का साधन बनाता है। इसकी ओर संकेत करते हुए 'एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना' नामक कविता में कात्यायनी लिखती हैं-

“राजपुरुषों - श्रेष्ठियों-अभिजनों के आमोद-प्रमोद के लिए
प्रशस्त राजमार्ग या नगर की जनसंकुल वीथियों से

पुष्प सज्जित यान पर आरूढ गुज़रते हुए
 अपनी मात्रा एक झलक से कामातुर नागरिकों के हृदय को
 उन्मत्त कर देने के लिए
 तुम्हारे पुष्पक विमानों में यात्रा करते
 महाजनों की सेवा के लिए
 तुम्हारी सजी-धजी दुकानों के संभ्रान्त ग्राहकों को
 प्रसन्न करने के लिए
 तुम्हारी मधुशालाओं के लिए और
 रात्रि-आमोद-गृह के लिए
 मैं अनुपयोगी हो चुकी हूँ।”^{१०६}

अपना अस्तित्व एवं अस्मिता सब के लिए प्रधान है। लेकिन पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के अस्तित्व एवं अस्मिता का दमन किया जाता है। आज स्त्रियाँ अपने अस्तित्व से जुड़े संकट को पहचानती हैं। ‘एक भूतपूर्व नगरवधु की दुर्गपति से प्रार्थना’ कविता में पुरुष सत्तात्मक समाज का प्रतीक दुर्गपति से प्रार्थना करती हुई स्त्रियों का चित्रण करके कवयित्री उन्हीं स्त्रियों के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करती हैं जो अस्तित्व से जुड़े संकट से रूबरू हो रही हैं-

“सिर्फ एक बार दुर्ग के द्वार खोल दो, दुर्ग पति।
 प्रार्थना मुझ दुखियारी की सुन लो
 नगराधिपति!”^{१०७}

आगे वे कह रही हैं-

“क्योंकि, अभी भी मैं जीवित, रहना चाहती हूँ!
 नहीं.यह कहना उचित होगा कि
 अब,मैं जीवित होना चाहती हूँ दुर्गपति,
 मुझे जाने दो

मैं अपनी पहचान तक जाना चाहती हूँ
 अपनी आत्मा तक
 अपनी अस्मिता तक जाना चाहती हूँ मैं।”^{१०८}

अर्थात् स्त्री पुरुष के सामने सर्व समर्पण को छोड़कर स्वतंत्र चलना चाहती है। बचपन से ही स्त्री जीवन कैद में है। बचपन से ही पिता द्वारा पंखविहीन बननेवाली नारी शादी के बाद पति द्वारा आँख विहीन भी बन जाती है। बचपन में पिता उनकी पंख बन जाते हैं तो यौवन में पति उनकी आँख बन जाते हैं। ‘सूली ऊपर सेज’ कविता में अपने विस्तृत आसमान को अपने हृदय में ही कैद रखने के लिए विवश नारी आज अपनी अभिव्यक्ति को खुद ही ढूँढकर कह रही है-

“नये पंखों के उगने की प्रतीक्षा में
 हासिल करके फिर से अपनी आँखें
 अपनी अस्मिता तक
 डडकर पहुँच जाने के लिए
 हाहाकार करते इस हृदय में
 सुखी जीवन को नष्ट कर देने की
 जो अदम्य इच्छा है।”^{१०९}

पिता और पति की साया में जो सुखी जीवन उसे मिलती है उसे भी नष्ट करके उन्मुक्त गगन में वह उड़ना चाहती है। ‘स्त्री का दुःख’ शीर्षक कविता में कवयित्री स्त्री का दुःख का अंकन इस प्रकार करती हैं-

“सिकने
 सीझने, पकने के बीच
 झेलने को हुनर।
 सहस्राब्दियों का इतिहास।”^{११०}

स्त्रियों की सुरक्षा के लिए कई नियम होते हुए भी आज समाज में स्त्री या लड़की सुरक्षित नहीं। अपने घर में हो, रास्ते में हो, स्कूलों में हो, या अन्य कोई जगहों में हो कई स्त्रियाँ या लड़कियाँ बलात्कार का शिकार बन जाती हैं। बलात्कार एवं स्त्री हत्या की संख्या आज बढ़ रही है। लखनऊ के मोहनलाल इलाके में एक युवती के बर्बर बलात्कार और हत्या के बाद लिखी गयी कविता है 'यह आर्तनाद नहीं, एक धधकती हुई पुकार है।' लखनऊ के मोहनलाल गंज के निर्जन स्कूल में एक युवती के जिस्म को तार-तार करके उन्हें मारा। अपने अंतिम सांस तक वह जूझती रही। मदद के लिए आवाज़ भी देती रही। लेकिन कोई नहीं आया। कवयित्री इस घटना का जिक्र करके हमें याद दिलाती हैं कि यहाँ औरतों की ज़िन्दगी खतरे में है। औरतों के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करके कवयित्री उन्हें प्रतिरोध करने की प्रेरणा देती हुई लिखती हैं। जैसे-

“बहनो ! साथियो!!

मुट्टियाँ तानकर अपनी आज़ादी और अधिकारों का

घोषणा पत्र एक बार फिर जारी करो

धर्म ध्वजाधारी प्रेतों और पूंजी के पाण्डुर पिशाचों के खिलाफ।

मृत परंपराओं की सड़ी-गली बास मारती लाशों के

अंतिम संस्कार की घोषणा कर दो।

चुनौति दो ताकि बौखलाये ये बर्बर बाहर आये खुले में।

जो शिकार करते थे, उनको शिकार करना होगा।”⁹⁹⁹

‘अपराजिता’ नामक कविता में कवयित्री कहती हैं स्त्री की आत्मा को पराजित करने के लिए उस पर तमाम अपवित्र इच्छाओं और दुष्कर्मों की मार लाद दी है। फिर भी उनके उत्तराधिकारियों और उत्तराधिकारियों के उत्तराधिकारी चाहते हुए भी उसकी आत्मा को पराजित नहीं कर सकेंगे। उसकी अजेय आत्मा की महिमा उद्घाटित करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“उसी तरह नहीं पराजित कर सके वे
 हमारी अजेय आत्मा को
 आज भी वह संघर्ष से है
 नित-निरन्तर
 उनके साथ
 जिनके पास खोने को सिर्फ ज़मीनें ही हैं
 बिल्कुल हमारी ही तरह!”⁹⁹²

वे कहती हैं कि स्त्री की आत्मा मानवता की अमर अजेय आत्मा है। स्त्री की क्षमता को पहचानने पर भी पुरुष द्वारा निर्मित हाशिए से उसे आगे बढ़ने नहीं देता। आज स्त्री अपनी क्षमता एवं अधिकारों के प्रति जागरूक है। पुरुष द्वारा बनाये गये नियमों को तोड़ने की क्षमता उसमें है। लेकिन सामाजिक लिंग नीति ने स्त्री को अधिकारों से वंचित रखा है। “औरतों को पुरुषों और पूरे समाज से जितना अमानवीय पार्थक्य हिंदुस्तान में है, उतना मध्यपूर्व के कुछ देशों को छोड़कर और कहीं नहीं है।”⁹⁹³ ‘गार्गी’ नामक कविता में इसकी सूचना है। वे लिखती हैं-

“मत जाओ गार्गी प्रश्नों की सीमा से आगे
 तुम्हारा सिर कटकर लुढ़केगा ज़मीन पर
 मत करे याज्ञवल्क्यों की अवमानना
 मत उठाओ प्रश्न ब्रह्मसत्ता पर”⁹⁹⁴

पुराण में ‘गार्गी’ एक सशक्त स्त्री पात्र है। वह पुरुष की हर प्रवृत्तियों के लिए मदद करती है। स्त्री क्षमता के प्रति सतर्क करते हुए कवयित्री कहती हैं कि नारी के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है। पुरुष द्वारा दुनिया को फतह करने, असमान तक चढ़ने एवं महान बनने के पीछे नारी की शक्ति एवं क्षमता है। साहित्य या कला-संस्कृति के क्षेत्र में भी स्त्री के प्रति दमनकारी नीतियाँ देख पाते हैं। स्वयं स्त्री होने के कारण कवयित्री इस दमनकारी नीति को अच्छी तरह से पहचानती हैं। शिक्षित और कामकाजी होने पर भी स्त्रियों के

प्रति शुष्क व्यवहार है। स्त्री जितना उन्नत पद पर आसीन है तो भी उसे तुच्छ समझते हैं। इस पर प्रहार करते हुए कवयित्री कहती हैं - “वहाँ से भेज रही हूँ यह एक कलाहीन कविता दुनिया के तमाम सुधी आलोचकों - संपादकों के नाम। मेरी कब्र के ऊपर नहीं बना है कोई पक्का चबूतरा कोई पहचान नहीं उसकी। न कोई नामपट्टी, न कोई समाधि-लेख जिससे कि आप मेरे सफर के आखिरी मुकाम की शिनाख्त कर सकें अपने तमाम संपादकीय अनुभवों और आलोचनात्मक विवेक के बावजूद। यदि यह कविता बन सकी एक थकी हुई मगर अजेय स्त्री की पहचान तो यह कविता रहेगी असमाप्त। और यह दुनिया तक रहेगी, चैन से नहीं रहेगी।”³³⁵

जो भी हो कवयित्री सभी मर्दों को मर्दवादी नहीं मानती हैं। वे कहती हैं जिस पुरुष में समतामूलक समाज का सपना है वह स्त्रियों को जीवन और युद्ध में बराबर का साथी मानता है। कात्यायनी ने अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्री समाज के प्रति अपनी संवेदना प्रकट की है। साथ ही साथ समाज की पुरुष मानसिकता बदलने का आग्रह भी प्रकट करती हैं। पुरुष सत्तात्मक समाज के दुर्गद्वारों को तोड़कर आगे बढ़ने की प्रेरणा वे देती हैं।

५.४.१५. साहित्य जगत की मान्यताएँ एवं विडंबनाएँ

रचनाकार एवं सामाजिक कार्यकर्ता होने के कारण कवयित्री समाज के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध हैं। अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण उनकी कविता लोगों की संवेदनाओं से जुड़ती है। उनकी कविताओं में मात्र करुणा की प्रधानता नहीं बल्कि विद्रोहात्मक स्वर भी मुखर है। साहित्यकारों के सामाजिक दायित्व को भलीभाँति समझनेवाली कवयित्री अपने लेखन के बारे में कहती हैं-“ ऐसा जो कुछ भी मेरा लेखन है, वह बहुत व्यवस्थित नहीं है। लेकिन मेरी कोशिश हमेशा यह रही है कि जिस मुद्दे को उठाया जाये, उस पर दो टूक ढंग से अपनी राय रखी जाये, जो गलत लगे उसकी निर्मल आलोचना, बिना किसी चीज़ की परवाह किये की जाये, और जो तर्क संगत हो,

जनपक्षीय हो, भविष्योन्मुख हो, उसे स्थापित करने या रोशनी में लाने की कोशिश की जाये।”^{१३६} अन्य साहित्यकारों या कवियों से भी लोगों के प्रति यही प्रतिबद्धता की आशा वे रखती हैं। ‘कला और सच’ शीर्षक कविता में वे कहती हैं-

कला को
माँजा और निखारा जाये
इस हद तक कि
सच के बारे में
लिखी जा सके
एक सीधी-सादी छोटी-सी
कविता।”^{१३७}

कवयित्री कविता के प्रति आस्था प्रकट करती हुई लिखती हैं-

“कविता कितना देगी, क्या देगी?
सीमा अपनी भी है
फिर भी जो कहना है
जो कहना संभव है
उसको कह डाला है कविता में”^{१३८}

‘आशावादी नागरिक की कविता’ शीर्षक कविता में वे कहती हैं कि उनकी कविताएँ पढकर कोई तीव्र पीडा से भर उठेगा तो किसी को खालीपन महसूस होने लगेगा। शायद एक भी हृदय को नहीं बदलेगी। आलोचकों की दुनिया से बहिष्कृत हो जायेगी। सुधीजनों से उपेक्षित हो जायेगी। सब जन तक न पहुँचेगी। फिर भी वे विश्वास रखती हैं-

“अपरिभाषित
उपयोग लायक
समझी जा सकेंगी
मेरी कवितायें।”^{१३९}

वे कविता या लेखों के माध्यम से सामान्य जनों की पीड़ा, अन्याय व शोषण से जुड़े रहकर उसके विरुद्ध आवाज़ उठाना ही कवि कर्म मानती हैं।

कला और साहित्य से संबंधित अपनी मान्यताओं को व्यक्त करनेवाली कवयित्री अपनी कविताओं के माध्यम से साहित्य जगत की विडंबनाओं को लोगों के सामने खुलकर दिखाती हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले कविगण आज प्रतिक्रिया विहीन बन गये हैं। सामाजिक विसंगतियों के प्रति वे अपनी आँखें मूँदकर बैठे हैं। 'हमारे समय में कुछ काव्य - विस्मृत शब्द और क्रियाएँ' शीर्षक कविता में कवयित्री कहती हैं-

“रक्त बह रहा है सडकों पर
मौन,
घर जल रहे हैं,
बिक रहे हैं बच्चे और स्त्रियाँ
और सपने और श्रम
और हमारे सबसे कीमती पैदावारों और खनिजों की
और स्मृति के धरोहरों की
नीलामी बोली जा रही है दुनिया की मंडी में
और कविता की गवाही मंजूर नहीं।”^{१२०}

कविता या कला जो भी हो सामान्य जनता से बहुत दूर हो रहा है। इसके संबंध में कवयित्री प्रस्तुत कविता में लिखती हैं कि उन्नत कला हमेशा सामान्य जनता की पहुँच के बाहर है। वह जिस प्रकार सामान्य जनता के लिए अनुपयोगी है उसी प्रकार सामान्य जनता भी उन्नत कला के लिए अनुपयुक्त है।

आज हम देख पाते हैं कि सत्ता द्वारा सामान्य जनता पिसती जा रही है। शासक ही जनता के शोषक बन जाने की स्थिति आयी है। लेकिन कवि या कलाकार उसके विरुद्ध आवाज़ नहीं उठाते हैं या उनकी लेखनी सत्ता को बिगाड़ने में असमर्थ बन गयी है। क्योंकि

ये भली भाँति जानते हैं कि ऐसे लोग ही सम्मानित एवं पुरस्कृत होते हैं। कभी-कभी सत्ता के साथ झुनझुनिया बजाने के लिए इन्हें पुरस्कृत किया जाता है। कवयित्री लिखती हैं-

“दो कवि थे
बचे हुए अंत तक
वे भी पुरस्कृत हो गये
इस वर्ष”^{१२१}

कवयित्री कहती हैं बहुतेरे कवि और कलाकार ऐसे होते हैं जो जान बूझकर अपनी रचनाओं को प्रकाश में नहीं लाते हैं। लेकिन समय आने पर पुरस्कृत हो जाते हैं। इसके संदर्भ में ‘स्टेज लाइटिंग का काम करनेवाले की कविता’ में कवयित्री लिखती हैं-

“सचमुच बहुत कठिन है
एकदम
नाटक के हिसाब से ढल जाना
और
पुरस्कृत हो पाना।”^{१२२}

‘रहें किनारे बैठ’ कविता में कवयित्री यह व्यक्त करती हैं कि पुरस्कार के लिए कविता लिखने से बेहतर है कविता की अविरल प्रवाहित धार को किनारे बैठकर देखना। स्वयं बड़े कवि माननेवाले कुछ कवि हैं। वे छोटी-छोटी चीज़ों को बेहद गौर से देखते हैं। उनपर गहराई से सोचते हैं। निर्जीव चीज़ों से संवाद करना वे पसंद करते हैं। निर्जीव चीज़ों को ही अपनी कविता की शक्ति मानते हैं। समस्त मनुष्येतर चराचरों की भाषा में वे बातें करते हैं। लेकिन उजड्ड और गँवार लोग उनकी कविताओं में कही भी नहीं आते हैं। वे हमेशा कविता के माध्यम से अपनी हिफाजत के लिए अकेले लड़ते हैं। समाज के लिए नहीं। ‘चिंतन चमत्कारी उनका जीवन है जादूई’ कविता में ऐसे साहित्यकारों की स्वार्थी मानसिकता का चित्रण करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“जिसके आगे दुनिया की तमाम लडाइयाँ
तुच्छ होती हैं
जिन्हें लोग लडा करते हैं
अपनी तुच्छ ज़िन्दगी की
बेहद तुच्छ ज़रूरतों को
पूरा करने के लिए।”^{१२३}

सुविधाभोगी कवि अपने को भले मानुस बनने की कोशिश में हैं। समाज में व्याप्त अन्याय शोषण से मुँह-मोडकर झगड़ों एवं आंदोलनों से ये दूर रहते हैं। ‘बनना है भला मानुस’ नामक कविता में कवयित्री उन भले मानुसों पर व्यंग्य करती हैं-

“तो अब मित्रों-शुभचिन्तकों का कहा मान
भलामानुस बन जाना है
एकदम शालीन और सुपाच्य।
दुनिया देखे अग्रज कवियों की सलाह मान
झगड़ों-टण्टों, आंदोलनों से
अलग रहना है।”^{१२४}

भले मानुस बनने की प्रक्रिया में कुछ कवि ज़्यादा तटस्थ देख पाते हैं। दुनिया के मामलों में हस्तक्षेप डालना वे नहीं चाहते हैं। उनके अहस्तक्षेपकारी मनोवृत्ति को दिखाते हुए कवयित्री लिखती हैं-

एक दूसरे के
आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप से
बढता है प्यार।
ऐसे ही चल सकती है
आज
अपसी सहयोग और समझदारी से
ज़िन्दगी।”^{१२५}

कवयित्री अपनी कविताओं के माध्यम से आलोचकों पर भी प्रहार करती हैं। जो अभी तक कविता, कहानी और उपन्यास नहीं लिखता है वही आलोचना लिखता है। कवयित्री की राय में आलोचक कविता का आखेट कर रहे हैं। कवि ने जो कुछ किया-धरा था आलोचक उसे मटियामेट करते हैं। आलोचकों की इस प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“दो आलोचक थे
एक आलोचक था
और दूसरा
आलोचना करता था”^{१२६}

५.४.१६. निष्कर्ष

संक्षेप में कहें तो कात्यायनी ने अपनी कविताओं में सामाजिक जीवन समाज से संबंधित सभी विषयों को स्थान दिया है। आपकी कविताओं में समाज में व्याप्त दमनकारी नीतियों के प्रति विचार एवं संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। उन्होंने अपनी कविताओं में सर्वहारा वर्ग की समस्त पीडा एवं संघर्ष को वाणी देने के साथ ही साथ अपना विद्रोह तथा आक्रोश भी प्रकट किया है। उनकी कविताओं में मानवीय संवेदना अपने उत्कृष्ट रूप में देख पाते हैं। उनकी कविताएँ लोगों को अत्यंत गहराई से प्रभावित करने में सक्षम हुई हैं। नारी हो या अन्य सर्वहारा वर्ग हो कात्यायनी एक ओर उनकी पीडा एवं संघर्ष को वाणी देती हैं तो दूसरी ओर उनकी मुक्ति एवं जागरण को वाणी देती हैं। राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में वे समाज से जितना प्रतिबद्ध हैं उसका दृष्टांत है उनकी कविताएँ। वे कहती हैं - “अच्छी रचना के लिए लोगों की सबसे तिरस्कृत-लांछित लोगों की उत्पादन करने और निचोड़े जानेवाले तमाम लोगों की ज़िन्दगी, भावनाओं और संघर्ष से जुड़ना ही होगा। यह बात आज भी न तो पुरानी पडी है न किसी है।”^{१२७}

समाज की कुछ अमानवीय घटनाएँ राजनीति से प्रेरित होती हैं तो भी उसे वे अपनी कविताओं में निर्भयता के साथ बयान करती हैं। जहाँ कुछ साहित्यकार ऐसी घटनाओं को खुलकर दिखाने में हिचकते हैं तो वहाँ कात्यायनी हमेशा निडरता के पथ पर अग्रसर रही हैं। वे अपनी रचनाओं एवं सामाजिक कर्मों के माध्यम से सर्वहारा वर्ग के उत्कर्ष के लिए सर्वथा प्रयत्नरत हैं।

संदर्भ सूची

१. कात्यायनी - कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत, पृ.सं.२२७.
२. कात्यायनी - कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत, पृ.सं.२२४-२२५.
३. विष्णुखरे - इस पौरुषपूर्ण समय में - फ्लैप से
४. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.१९.
५. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.६४.
६. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.८४.
७. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.१०४.
८. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.१३०.
९. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.९५.
१०. विष्णुखरे - इस पौरुषपूर्ण समय में-फ्लैप से
११. मंगलेश डबराल - जादू नहीं कविता - फ्लैप से
१२. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१६५.
१३. मंगलेश डबराल - जादू नहीं कविता - फ्लैप से
१४. कात्यायनी - राख अंधेरे की बारिश में , पृ.सं.२१.
१५. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.१५१.
१६. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, फ्लैप से
१७. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.६१-६२
१८. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में फ्लैप से
१९. रवीन्द्रनाथ मिश्र - अंतिम दशक की हिंदी कविता, पृ.सं.१४२.
२०. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.९५

२१. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१२८.
२२. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुरसी, पृ.सं.२७.
२३. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.१८
२४. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.६०
२५. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.८२
२६. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.४४.
२७. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.११३
२८. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.९८
२९. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.१०३.
३०. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.११३.
३१. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.८५
३२. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.११४
३३. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.५८.
३४. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.८७.
३५. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.५०
३६. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.४१
३७. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१४८
३८. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.९०
३९. कात्यायनी - दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ.सं.१८.
४०. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.९४-९५
४१. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.२१
४२. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.१८२.
४३. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१११

४४. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.११५-११६.
४५. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.११८.
४६. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१२०.
४७. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१२८.
४८. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.३१.
४९. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.३१.
५०. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.३२.
५१. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.५०.
५२. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१४९
५३. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१५
५४. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.३६-३७
५५. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.६०
५६. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.८५
५७. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.४८
५८. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.२५
५९. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.४९
६०. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.५०
६१. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.१८.
६२. कात्यायनी - कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत, पृ.सं.२३६
६३. कात्यायनी - सात भाईयों के बीच चंपा, पृ.सं.७१.
६४. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.११७.
६५. कात्यायनी - राख आंधरे की बारिश में, पृ.सं.११.
६६. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.२९.

६७. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.६२.
६८. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.७४.
६९. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.४४.
७०. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.९३.
७१. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.२०
७२. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१६९.
७३. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१७२.
७४. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.११२.
७५. कात्यायनी - प्रेम, परंपरा और विद्रोह, पृ.सं.१८.
७६. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.६७.
७७. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.१३३
७८. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.१५२-१५३
७९. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.७२.
८०. कात्यायनी - राख अंधेरे की बारिश में, पृ.सं.१४.
८१. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.५२
८२. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.२५
८३. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.१४१
८४. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.२९.
८५. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.३३
८६. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.११३
८७. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.११२
८८. कात्यायनी - राख अंधेरे की बारिश में, पृ.सं.१२
८९. कात्यायनी - राख अंधेरे की बारिश में, पृ.सं.१२.

९०. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.७४
९१. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.११७.
९२. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.७७.
९३. कात्यायनी - राख अंधेरे की बारिश में, पृ.सं.२०.
९४. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.४६
९५. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.४७
९६. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.४८
९७. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.५०
९८. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.३३
९९. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.१४८.
१००. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.७१.
१०१. ए.अरविंदाशन - समकालीन हिंदी कविता, पृ.१२५.
१०२. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.२०
१०३. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.२९
१०४. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.६२
१०५. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.३६
१०६. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.६५-६६
१०७. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.६५
१०८. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ.सं.६६-६७
१०९. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ.सं.९३
११०. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी, पृ.सं.१८१.
१११. कात्यायनी - एक कुहरा पारभासी, पृ.सं.७९.
११२. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ.सं.४०.

११३. कात्यायनी - दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ.सं.९०.
११४. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा,पृ.सं.४५
११५. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में,पृ.सं.६४
११६. कात्यायनी - कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत,पृ.सं.६.
११७. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा,पृ.सं.५५.
११८. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा,पृ.सं.१२०.
११९. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में,पृ.सं.४१.
१२०. कात्यायनी - फुटपाथ पर कुर्सी,पृ.सं.५१
१२१. कात्यायनी - जादू नहीं कविता,पृ.सं.३५.
१२२. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में,पृ.सं.४३
१२३. कात्यायनी - जादू नहीं कविता,पृ.सं.३५
१२४. कात्यायनी - जादू नहीं कविता,पृ.सं.२३
१२५. कात्यायनी - जादू नहीं कविता,पृ.सं.३६
१२६. कात्यायनी - जादू नहीं कविता,पृ.सं.६६
१२७. कात्यायनी - कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत,पृ.सं.२३४.

छठा अध्याय

निर्मला पुतुल की कविताओं में अभिव्यक्त
मानवीय संवेदना

यह अमानवीयता का दौर है। जीने के मूलभूत अधिकारों से वंचित होकर आदमी हर कहीं किसी न किसी प्रकार के अमानवीय बंधनों से जकड़ा हुआ है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस नए युग में आदमी देखते-देखते पत्थर जैसा बन गया है। जाति, लिंग, नस्ल, रंग, धन एवं राष्ट्र के नाम पर मानव अधिकाधिक हाशिएकृत होने लगे। वर्तमान समय में उसकी मुट्ठी से जीने का अधिकार भी छूट जाने लगा तो वे अपने अधिकारों के बारे में अधिकाधिक सोच विचार करने लगे। ऐसी स्थिति में मानव के तमाम अधिकारों का संरक्षण करके उनकी गरिमा और प्रतिष्ठा को बनाये रखने की एक नयी ललक साहित्य में देख सकते हैं। कविता सर्वाधिक संवेदनशील विधा होने के कारण मनुष्यता और उसकी रक्षा के लिए अपनी भूमिका निभाती है। सत्ताधारियों का षड्यंत्र एवं पूँजीवादी वर्चस्व के प्रभाव के कारण हाशिएकृत लोगों का अस्तित्व संकटग्रस्त होने लगा। दलित, आदिवासी, स्त्री एवं अल्पसंख्यक समाज के अस्तित्व एवं अस्मिता को इन विघटनकारी शक्तियाँ तोड़ रही हैं।

आदिवासियों के बहुत सारे मुद्दों को उठाकर आदिवासी कविता ने आज हिंदी साहित्य क्षेत्र में अपनी जड़ जमायी है। पृथ्वी का आदिम निवासी माननेवाले आदिवासियों का जीवन निरंतर संघर्ष से गुजर रहा है। आदिवासियों के जीवन का केन्द्र जंगल है। उनकी ज़िन्दगी और संस्कृति सामान्य जनता से अलग है। इसलिए ही मुख्यधारा समाज से कोसों दूर है आदिवासी लोग। उनकी अपनी संस्कृति है, उनका अपना जीवनयापन है। लेकिन कालों से सांस्कृति एवं राजनीतिक बलतंत्र का शिकार है आदिवासी जनता। उनकी मिट्टी एवं जंगल के लिए नए नए हकदार आए तो उन्हें अपनी ज़मीन से बेदखल

कर दिया जा रहा है। बाह्य दारिद्र्यों के फलस्वरूप सांस्कृतिक असंतुलन पैदा होने लगा। सत्ताधारियों ने इन लोगों की बुनियादी मामलों में सक्रिय हस्तक्षेप किया ही नहीं बल्कि वे इनका आर्थिक, सांस्कृतिक, शारीरिक शोषण करने में उत्सुक भी रहे। शोषण एवं उत्पीड़न से पिसती जनता के जीवन संघर्ष को समाज के सामने प्रस्तुत करने के लिए उन्हीं के बीच में से कई साहित्यकार उभर आये हैं। इनमें निर्मला पुतुल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी कविताएँ भोगे हुए यथार्थ को दुनिया के सामने प्रस्तुत करने की कोशिश हैं। सामाजिक संघर्ष में सक्रिय रूप से भागीदार होने के साथ ही साथ वे रचनात्मक प्रतिबद्धता भी दिखाती हैं। पाठकों के अंतर्मन में काँटों की तरह चुभनेवाली ये कविताएँ जनता को जागरूक करती हैं। निर्मला पुतुल की कविताएँ अमानवीयता के इस दौर में मानवीय संवेदना को बनाये रखने का सतत प्रयास हैं। मानवीय संवेदना के धरातल पर निर्मला पुतुल की कविताओं का विस्तृत अध्ययन करने से पूर्व उनके व्यक्तित्व एवं रचना संसार का परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

६.१. जीवन परिचय

आदिवासी क्षेत्र के कार्यकर्ता एवं कवयित्री निर्मला पुतुल का जन्म ६ मार्च १९७२ में झारखंड के दुधनी कुरुवा जिला दुमका के एक संथाल परगना में हुआ। उनकी माता कांदिनी हंसदा एवं पिता सिरिल मुर्मू है। उन्होंने राजनीतिशास्त्र में ऑनस एवं नर्सिंग में डिप्लोमा की है। लेखन के साथ ही साथ पत्रकारिता एवं समाज कार्य में वे विशेष रुचि रखती हैं। वे एक अच्छी कहानीकार भी हैं। लेकिन हिंदी साहित्य जगत में उनकी प्रतिष्ठा संथाली भाषा की कवयित्री के रूप में हुई। सामाजिक कार्यों में वे सक्रिय भागीदार हैं। संथाली समाज के समग्र उत्थान के लिए वे व्यक्तिगत एवं संस्थागत स्तर पर सतत प्रयास कर रही हैं। महिला संगठन के माध्यम से आदिवासी महिलाओं एवं बच्चों के लिए वे विभिन्न कार्य कर रही हैं। आदिवासी महिलाओं का विस्थापन, पलायन, शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्पीड़न आदि विषयों पर आयोजित सम्मेलनों एवं कार्यक्रमों में वे व्याख्यान दे रही हैं।

जीवन रेखा ट्रस्ट, संथाल परगना की संस्थापक-सचिव, झारखंड नेशनल एलायंस ऑफ विमेन, संथाल परगना, झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा, जनसंस्कृति मंच, उपाध्यक्ष, केन्द्रीय समिति, दिल्ली आदि संस्थाओं में वे कार्यरत हैं। वर्तमान में वे बदलाव फाऊण्डेशन से जुड़कर आदिवासी स्त्रियों के ऊपर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध कार्य कर रही हैं।

६.२. सृजन परिचय

निर्मला पुतुल का रचना संसार हमारे सामने एक अलग दुनिया खोलता है। उनकी रचनाएँ आदिवासी जीवन का सटीक चित्रण हैं। कहानी, लघुकथा, आलेख, रिपोर्टार्ज आदि सभी साहित्यिक विधाओं में उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। लेकिन कविता उन्हें ज़्यादा पसंद है। अपने एक साक्षात्कार में वे कहती हैं- “वैसे साहित्य की सारी विधाओं का अपना महत्व है। कमोबेश में कुछ विधाओं पर काम भी करती रही हूँ। मसलन कहानी, लघुकथा, आलेख, रिपोर्टार्ज, डायरी आदि पर जहाँ तक सबसे प्रिय विधा की बात है, तो मैं कविताएँ लिखना ज़्यादा पसंद करती हूँ।”^१

निर्मला पुतुल की पहली कविता ‘मुर्मु नामक लड़की के लिए तीन कविताएँ’ वागर्थ में प्रकाशित हुई थी। तब से वे लगातार कविता लिख रही हैं। अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासी समाज के तमाम दुःख दर्दों को उन्होंने शब्दबद्ध किया। ‘अपने घर की तलाश में’ (२००४), ‘नगाडे की तरह बजते शब्द’ (२००५) ‘बेघर सपने’ (२०१४) आदि उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। वे अपनी मातृभाषा संथाली में कवितायें लिखती हैं। इसके स्पष्टीकरण के रूप में वे कहती हैं- “मैं जिस समुदाय से आती हूँ, जिसके बीच रहती हूँ, जिसके लिए काम करती हूँ उसी के आसपास की चीज़ें उसी की भाषा में उसी तरह रखती हूँ जैसे रोजमर्रा की ज़िन्दगी में उसके साथ बैठते - उठते बोलती बतघाती हूँ। यही वजह है कि मैं ज़्यादातर अपनी मातृभाषा संथाली में लिखती हूँ और जैसा भी, जो लिखती हूँ चमत्कारिक भाषा और बिंबों की भूतमूल्या से परे बिल्कुल सीधे-सीधे संवाद

की तरह होता है।”^२ भारत की अन्य कई भाषाओं में इन कविताओं का अनुवाद हुआ है। हिंदी में अशोक सिंह ने इन कविताओं का अनुवाद किया है।

६.३. कविता संग्रह - संक्षिप्त परिचय

निर्मला पुतुल की कविता में आदिवासी जीवन, संस्कृति एवं भाव संवेदनाएं मुखरित हो रही हैं। अज्ञान, अंधविश्वास, शोषण और भ्रष्टाचार ने आदिवासियों के जीवन को तहस-नहस कर दिया है। धर्म, संस्कृति, शोषण, अन्याय, अत्याचार, विस्थापन की समस्या, जल - जंगल और ज़मीन से जुड़ी हुई समस्याएँ, रूढ़ि एवं अंधविश्वास आदि विषयों को लेकर वे अपनी कविताओं के माध्यम से संवेदना प्रकट करती हैं। स्वयं आदिवासी समाज से होने के कारण आदिवासी जीवन के अति सूक्ष्म पक्षों को आप ने महसूस की है। उनकी कविता में अभिव्यक्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विद्रूपतायें आदिवासी जनता के जीवन संघर्ष एवं व्यवस्था के प्रति आक्रोश कवि के निजी जीवनानुभवों का सबूत है।

६.३.१. नगाडे की तरह बजते शब्द

२००५ में प्रकाशित काव्य संग्रह है ‘नगाडे की तरह बजते शब्द’। ‘अपने घर की तलाश में’ नामक संग्रह की अधिकांश कविताएँ इसमें संकलित हैं। इस संकलन में अड़तीस कविताएँ हैं। इसमें संकलित कविताएँ ये हैं- ‘क्या तुम जानते हो’, ‘अपनी ज़मीन तलाशती बेचैन स्त्री’, ‘आदिवासी स्त्रियाँ’, ‘बाहामुनी’, ‘बिटिया मुर्मू के लिए’, ‘आदिवासी लड़कियों के बारे में’, ‘चुडका सोरेन से’, ‘कुछ मत कहो सजोनी फिस्कू’, ‘संथाल परगना’, ‘क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए’, ‘अपने घर की तलाश में’, ‘बूढ़ी पृथ्वी का दुःख’, ‘खून को पानी कैसे लिख दूँ’, ‘पहाड़ी स्त्री’, ‘पहाड़ी पुरुष’, ‘पहाड़ी बच्चा’, ‘ढेपचा के बाबू’, ‘माँ के लिए ससुराल जाने से पहले’, ‘उतनी दूर मत ब्याहना बाबा’, ‘ये वे लोग है जो’, ‘मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो’, ‘भाई मंगल बेसरा, एक बार फिर’, ‘घडा

उतार तमाशा के विरुद्ध', 'पिलचू बूढी से', 'मेरे बिना मेरा घर', 'मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नज़र में', 'आस-पड़ोस के छोटे भाइयों से', 'आओ', 'मिलकर बचाएँ', 'अभी खूँटी में टाँगकर रख दो माँदल', 'सुगिया', 'माँझी-थान', 'धीरे-धीरे', 'कहाँ गुम हो गये', 'मेरे एकांत का प्रवेश-द्वार', 'उतनी ही जनमेगी निर्मला पुतुल', 'मैं चाहती हूँ', 'जो कुछ देखा-सुना', 'समझा', लिख दिया'।

इस संग्रह की कविताएं अपने समय और समाज की अभिव्यक्ति हैं। आदिवासी समाज की वेदना, पीड़ा, दर्द, उपेक्षा, अपमान एवं विवशता को गहरी मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। आदिवासी समाज में स्त्री की स्थिति ज़्यादा खतरनाक है। वह तिहरे शोषण का शिकार है। संग्रह की पहली कविता 'क्या तुम जानते हो' में कवयित्री इस तथ्य को पूरी संवेदना के साथ अंकित करती हैं कि 'मात्र देह नहीं है स्त्री'। बाहामुनी, सजोनी किस्कू, सुगिया, डेपचा की माँ, चुडका सोरेन, बिटिया मुर्मू आदि कई पात्रों के द्वारा आदिवासी जनजाति पर किये जानेवाले शोषण को चित्रित करती हैं। अशिक्षा, भूख, अस्तित्व का संकट, सांस्कृतिक संकट, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, आदिवासी स्त्री के दर्द एवं वेदना की अभिव्यक्ति इस संग्रह की कविताओं में देख पाते हैं।

आज हर कहीं बाज़ार का वर्चस्व है। आदिवासी जनता का कुटीर उद्योग एकदम समाप्त हो रहा है। बाज़ारीकरण की प्रवृत्ति आदिवासी बस्तियों में कितना हमला करता है! 'डेपचा के बाबू' कविता में इसकी अभिव्यक्ति करती हुई वे लिखती हैं-

“दोना पत्तल भी नहीं बिकता
 और न ही लेता है कोई चर-चटाई
 झाड़ू, पंखा, दातुन का भी बाज़ार नहीं रहा अब
 भूले-भटके गर कभी कोई पैँकार आता भी है
 तो रुपये जोडा माँगता है पंखा
 और सौ रुपये दर्जन चटाई
 एक तो सब छोड़-छाड़ दिन-भर लग रहा

उस पर भी गर पचास-साठ नहीं निकले
तो उसे करने से क्या फायदा?”³

इस संग्रह की कविताओं के माध्यम से आदिवासी समाज के विभिन्न पहलुओं को गहरी संवेदना के साथ उद्घाटित करती हैं। ‘ढेपचा के बाबू’, ‘पिलची बूढी’, ‘चुडका सोरेन से’, ‘अपने घर की तलाश में’, ‘कुछ मत कहो सजोनी किस्कू’, ‘क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए’, ‘क्या तुम जानते हो’ आदि कविताओं में स्त्री शोषण एवं उत्पीड़न का चित्रण ही नहीं बल्कि मुक्ति की चाहत करनेवाली स्त्रियों की आशा, आकांक्षा एवं एहसास का चित्रण है। ‘उतनी दूर मत ब्याह न बाबा’, ‘आओ मिलकर बचाये’ कविताओं के माध्यम से प्रकृति के प्रति संवेदना व्यक्त करती हैं। ‘मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नज़र में’ एवं ‘ये वे लोग हैं’ जो शीर्षक कविताओं में गैर आदिवासी मानसिकता को दिखाने की कोशिश है। ‘संथाल परगना’, ‘कहाँ गुम हो गये तुम’, ‘चुडका सेरेन से’ आदि कविताओं में विस्थापन, पलायन एवं आदिवासियों की संस्कृति एवं भाषा पर पड़नेवाली बाहरी प्रभावों की अभिव्यक्ति है।

आदिवासी शोषण का चित्रण करनेवाली कवयित्री उसके पीछे के कारणों का भी जिक्र करके संघर्ष और प्रतिरोध का रास्ता दिखाती हैं। ‘खून को पानी कैसे लिख दूँ’, ‘पहाड़ी स्त्री’, ‘पहाड़ी पुरुष’, ‘उतनी ही जन्मेगी निर्मला पुतुल’ आदि कविताएँ इसके लिए उदाहरण हैं। इस संग्रह की कविताएँ चौतरफा शोषण का शिकार होकर पल-प्रतिपल पिसती जनता को क्रांति का आह्वान करके नगाडे की तरह बजती रहती हैं।

६.३.२. बेघर सपने

२०१४ में प्रकाशित उनका काव्य संग्रह है ‘बेघर सपने’। इस संकलन में इक्कावन कविताएँ संकलित हैं। इसमें संकलित कविताएँ ये हैं- ‘माँ’, ‘सबसे डरावनी रात’, ‘मिटा पाओगे सब कुछ’, ‘वह जो अक्सर तुम्हारी पकड से छूट जाता है’, ‘समाज और तुम बाँसुरी बजाते रहे’, ‘मैं’, ‘मेरा दुःख और समुद्र’, ‘वेश्या’, ‘कविता’, ‘गमछा’, ‘कुर्सी’,

‘मुसाफिर’, ‘बयोडाटा’, ‘गजरा बेचनेवाली स्त्री’, ‘अखबार बेचती लड़की’, ‘अगर तुम मेरी जगह होते’, ‘स्वर्गवासी पिता के नाम पाती’, ‘तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें’, ‘पहाड़ी यौवना’, ‘आपके शहर में’, ‘आपके बीच रहते’, ‘आपकेलिए’, ‘आखिर कहें तो किससे कहें’, ‘एक सार्थक चीख के पहले की गहराती चुण्पी’, ‘सद्दाम के फॉसी के बाद’, ‘गदहे’, ‘अभी चुप रहो विधान सभा में बाढ आयी है’, ‘तुम्हारे हाथ’, ‘कुछ भी तो बचा नहीं सके तुम’, ‘अब आम आदमी को नसीब नहीं होता ‘आम’, ‘जब टेबुल पर गुलदस्ते की जगह बेसलरी की बोतलें सजती हैं’, ‘आखिर कब तक’, ‘ईश्वर से स्त्रीयों की माँग’, ‘कुत्ते’, ‘बिल्ली’, ‘स्त्रियाँ लिखेंगी अपना इतिहास’, ‘बेघरों के सपनों से जुड़ा मेरा घर’, ‘जगमगाती रोशनियों से दूर अँधेरों से घिरा आदमी’, ‘आओ उस बात पर बात करें’, ‘बाघ’, ‘बाँस’, ‘मैंने आँगन में गुलाब लगाए’, ‘झारखंड का सच’, ‘दामिनी’, ‘और तुम देखते रहे मेरा बलात्कार होना’, ‘इन दिनों’, ‘जमाने में और भी गम है’, ‘मुहब्बत के सिवा’, ‘दूरी’, ‘नज़दीकी’, ‘किसी से कहा नहीं हमने’, ‘एक माँ का अपराध’, ‘मुजरिम नहीं था वह’, ‘औरत’।

इस संग्रह की कविताओं में आदिवासी समाज के संघर्षों को उठाया है। आदिवासी समाज से भिन्न आदिवासी स्त्री का संघर्ष दोहरा है। जातिपरक संघर्ष के साथ-साथ वह लिंगपरक संघर्ष भी झेलता है। कवयित्री खुद इन दुःखों से गुज़रकर आयी हैं, नहीं तो बहुत निकट से इन्हें देखा परखा है। इसलिए ही दर्द एवं प्रतिरोध के स्तर पर खड़े होकर सीधे लक्ष्य पर चोट पहुँचाती हैं।

भूख-बीमारी से लड़ते-मरते मंगरू, बुधवा, इलाज के लिए राशनकार्ड गिरवी रखनेवाले समरू पहाडिया, उत्तर प्रदेश के जनपद में पाँच हज़ार में बेची गई सोनामुनि हांसदा, सामूहिक बलात्कार का शिकार मेलचो मुर्सू, नौकरी की आरा में स्वयं सेवी संस्था के पचास वर्षीय प्रमुख के हाथों से लगातार यौन शोषण का शिकार होती रही फूलमुनि बसेरा आदि आदिवासी चरित्र पूरी व्यथा कथा के साथ उभर आती है। आधुनिकता के इस दौर में भी

अपनी बुनियादी सुविधाओं से वंचित आदिवासी समाज की अभिव्यक्ति करते हुए वे लिखती हैं-

“मैं बात करना चाहती हूँ
अपने उस गाँव की, जहाँ आज तक बिजली नहीं पहुँची
सड़कों नहीं पहुँची, ओर तो और जहाँ की महिलाएँ
आज भी कोस भर दूर झरनों से पानी ढोकर लाती हैं।”^४

जहाँ ‘माँ’ शीर्षक संग्रह की पहली कविता में एक महिमा मंडित माँ का चित्रण है तो ‘सबसे डरावनी रात’ शीर्षक कविता की माँ बोतल भर दारू और एक मुर्गे के लिए अपनी बेटी तक का सौदा करती है। ‘स्त्रियाँ लिखेंगी अपना इतिहास’, ‘ईश्वर से स्त्रियों की माँग’, ‘अखबार बेचती लडकी’, ‘गजरा बेचनेवाली स्त्री’, ‘मिटा पाओगे सब कुछ’, ‘अगर तुम मेरी जगह होते’ आदि कविताओं में स्त्री जीवन का दर्द, उपेक्षा, एवं संघर्ष का चित्रण है। ‘वह जो तुम्हारी पकड से छूट जा रहा है’ कविता स्त्रीवाद के पाखंड पर लिखी गई है, कवयित्री कहती हैं रोती और गाती स्त्रियों की पंक्तियों के बीच कवियों और लेखकों की नज़र से छूट जानेवाली तीसरी मेहनतकश औरत है। ‘तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें’ शीर्षक कविता विकास बनाम विस्थापन की राजनीति चलानेवाले सत्ताधारियों एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों की साजिश का पोल खोलती है।

निर्मला पुतुल के अनुसार वर्तमान राजनीति अंग्रेज़ों का उत्तराधिकारी है जिस से न्याय की उम्मीद नहीं कर सकते। ‘आखिर कहें तो किससे कहें’ शीर्षक कविता में ऐसी राजनीति से सतर्क रहने की आह्वान करती है। मानवीय संवेदना को छूनेवाली इस संग्रह की कविताओं में आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व का गहरा संकट है साथ ही साथ प्रतिरोध की भावना भी।

६.४. मानवीय संवेदना के संदर्भ में कविताएँ

संवेदना से लेकर भाषा तक एक नए संसार की सृजन करनेवाली कवयित्री ‘निर्मला

पुतुल' की कविताओं में आदिवासी जीवन की सहजता स्पष्ट देख सकते हैं। उनकी कविताएँ मानवीय रिश्तों से लेकर प्रकृति तक से आदिवासियों के गहरे संबंध की अभिव्यक्ति हैं। आदिवासी स्त्री को देहमात्र समझनेवाले समाज से वे अपना विरोध प्रकट करती हैं। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के सवाल को केन्द्र में रखकर लिखी गयी निर्मला पुतुल की कविताओं को मानवीय संवेदना के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर सकते हैं।

६.४.१. विकास बनाम विस्थापन

जब कोई व्यक्ति अपने घर को छोड़कर दूसरी जगह जाने पर मज़बूर हो जाता है या उसे बलपूर्वक वहाँ से हटा दिया जाता है तो उसे हम विस्थापन कहते हैं। विस्थापन कई प्रकार के होते हैं। कुछ लोग रोज़गार के लिए, कुछ पर्याप्त सुविधाओं के लिए और कुछ लोग विकास के नाम पर अपने मूल स्थान से विस्थापित होते हैं। कारण जो भी हो विस्थापित होने की स्थिति दर्दनाक है। विस्थापन आदिवासियों की एक प्रमुख समस्या है। भारत में विभिन्न विकास योजनाओं एवं औद्योगीकरण का बुरा असर आदिवासी इलाकों पर पडा है। बहुत बड़ी संख्या में विस्थापित होने को वे बाध्य हुए हैं। आदिवासी समाज के विस्थापन पर तीन प्रकार से अध्ययन किये जा सकते हैं-“प्रथम जब सिंचाई के बड़े-बड़े बाँध एवं विद्युत परियोजनाओं के दौरान प्रत्यक्ष विस्थापन लगातार चलता है। द्वितीय राजमार्ग जैसी परियोजनाओं में प्रत्यक्ष विस्थापन नगण्य होता है लेकिन परियोजना के पूर्ण होने पर बाहरी लोगों के आगमन के फलस्वरूप वास्तविक विस्थापन का प्रारंभ होता है जो लंबे समय तक बंद नहीं होता।”⁴

रमणिका गुप्ता लिखती हैं - “जंगल माफिया कीमती पेड उससे सस्ते दामों पर खरीदकर ऊँचे दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी ही नीतियों के कारण आदिवासी ज़मीन के मालिक बनने के बजाय पहले मज़दूर बने फिर बंधुआ मज़दूर”⁵

आदिवासी के जीवनयापन का आधार जंगल है। उनकी संस्कृति भी जंगल से जुड़ी हुई है। विकास के नाम पर आज सरकार एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों जंगलों पर कब्जा करके आदिवासी लोगों को वहाँ से बेदखल करने लगीं। माफियाओं की कुल्हाड़ियों से आज जंगल कट रहा है। पूँजीवाद के प्रभाव से आदिवासी बस्तियाँ उजाड़कर वहाँ कारखाने खुलने लगे। जंगल के स्थान पर कांक्रिट जंगल बढ़ रहा है। 'तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें' शीर्षक कविता में कवयित्री इस विकास को संदेह की नज़र से देखती हैं-

“अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़कर कल-कारखाने बनाना है
तालाबों को भोथकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर आफिसर्स कॉलोनियाँ बसानी है
और पुर्नवास के नाम पर हमें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है
तो तुम्हारे तथा कथित विकास की मुख्यधारा में
शामिल होने के लिए
सौ बार सोचना पड़ेगा हमें।”⁹

कवयित्री भलीभाँति जानती हैं कि ये विकास तो जंगलों को लूटने का एक साजिश मात्र हैं। विदेशी कंपनियों के पूँजी निवेश के लिए सरकार ही योजनाएँ बनाती है। सरकार का आमंत्रण स्वीकार करके वे शांत जंगलों में घुस आती हैं। उन कंपनियों को आदिवासियों की ज़मीन में फलने-फूलने के लिए सारी सुविधाएँ सरकार ही देती हैं। फलस्वरूप अपनी ज़मीन से बेदखल होकर वे बदहवास भाग रहे हैं। ये सब चुपचाप सहने के लिए विवश जनता के प्रति संवेदना प्रकट करती हुई कवयित्री 'एक सार्थक चीख के पहले की महराती चुप्पी' शीर्षक कविता में लिखती हैं-

“हमारी सरकार हमसे
हमारी ज़मीन छीनकर

विदेशी कंपनियों को उपलब्ध करा रही है
हम चुप हैं”^८

उनके वोटों से भी कुर्सी पर आसीन सरकार अब विदेशियों के हाथों की कठपुतली बने तो उनके गुहार कौन सुन सकता है? खनिज और प्राकृतिक संपदाओं से चमकनेवाला देश है झारखंड। धन और दौलत के लिए सत्ताधारी झारखंड को कैसे नष्ट कर रहे हैं, इसे ‘झारखंड का सच’ नामक कविता के माध्यम से कवयित्री व्यक्त करती हैं।

“यहाँ चारों तरफ लूट मची है
जो जहाँ बैठा है वहीं से लूट रहा है
और बात-बात पर एक दूसरे पर दोषारोपण करते
सरकार गिराने की बातें करता है।
अजीब तमाशा है हमारे झारखंड की राजनीति का
कोई सरकार बनाने की बात करता है तो कोई
सरकार गिराने की
तो कोई बचाने के लिए करता है सौदा
ऐसे में दो पाटों के बीच जनता के बीच पिस रही है
और विकास के नाम पर विस्थापन झेल रही है।”^९

यह सच है कि झारखंड में बहुत तेज़ी से जंगल गायब होते जा रहा है। जंगल की गोद में पलनेवाले आदिवासी ही जंगल की रक्षा करते थे। यह कैसी विडंबना है कि उन्हें वहाँ से विस्थापित किया जा रहा है। इस प्रकार विस्थापित होनेवालों के पुनर्वास के लिए उचित योजना नहीं बनाते हैं। अच्छा मुआवज़ा भी नहीं देते हैं। इनमें से कुछ लोगों का पुनर्वास करते हैं तो ज़्यादातर आदिवासी लोगों की स्थिति न घर का न घाट का है। और अगर पुनर्वास हो गए तो उनकी स्थिति न घर का न घाट का जैसी ही है। “आज़ादी के बाद योजनाबद्ध विकास से आर्थिक क्षेत्र में विशेषतया ऊर्जा, खनिज, भारी उद्योग, सिंचाई तथा बहुत विकास कार्यों में क्रांतिकारी प्रगति तो हुई। लेकिन इस प्रगति के लिए

उन लाखों लोगों को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी, जिन्हें बिना इच्छा के अपनी ज़मीन और रोज़ी रोटी से हाथ धोना पडा। आज़ादी के बाद पहले ५ वर्षों में लगभग ढाई लाख लोगों में से २५ प्रतिशत लोगों को विस्थापित होना पडा। उनका थोडा बहुत तो पुर्नवास तो किया गया। लेकिन वह बहुत ही अपर्याप्त था। उनके मूलभूत अधिकार जो उनकी ज़मीनों के साथ जुडे हुए थे, जैसे जंगल, उत्पादन तथा घूँटकटीटी या कोडकर जैसे विशेष अधिकार, पुर्नवासित होने पर भी उन्हें प्राप्त नहीं हो पाये।”^{१०}

आदिवासियों के जीवन-तरीके, रीति-रिवाज़ एवं पर्व-त्योहार जंगल से जुडे रहते हैं। इसलिए अपने जंगल और पहाडों से दूर अन्य जगहों पर उन्हें कोई अस्तित्व ही नहीं। सरकार को यह समझना चाहिए कि एक जगह से उखाडकर दूसरे में रोप देने के लिए आदमी धान का बिजडा नहीं है। जन्म से लेकर मृत्यु तक आदिवासी का अस्तित्व जंगल से जुडा रहता है।

६.४.२. प्रकृति के प्रति संवेदना

आदिवासी समाज और प्रकृति का अटूट संबंध है। प्रकृति उनके जीवन का अभिन्न अंग है। वे हमेशा प्रकृति के साथ घुलमिलाकर रहते आये हैं। लेकिन आधुनिकता का हस्तक्षेप उनके प्राकृतिक जीवन में मुसीबतें पैदा करने लगीं। प्रगति के नाम पर प्रकृति को लूटने लगे तो आदिवासी जीवन का अस्तित्व खतरे में पडा। निर्मला पुतुल की कविताएँ हमेशा मानव का साथ देती हैं। वे अच्छी तरह जानती हैं कि मानव की भलाई प्रकृति पर निर्भर है, खासकर आदिवासी जनता की। जंगल के घने वृक्ष और नदी नालों से इन्हें अटूट संबंध है। नदी पर बाँध बनाकर एवं वृक्षों की अवैद्य कटाई से जंगलों को उजाडकर तथाकथित सभ्य समाज का अनियंत्रित हस्तक्षेप होता है। विकास और औद्योगीकरण के नाम पर जंगली भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा है। लेखिका भलीभाँति जानती हैं कि सिर्फ आज के लिए नहीं बल्कि आनेवाली पीढियों के लिए भी इन्हीं प्राकृतिक संपदाओं का संरक्षण अनिवार्य है। ‘आओ मिलकर बचाएँ’ नामक कविता में इसकी अभिव्यक्ति है-

“जंगल की ताज़ा हवा
 नदियों की निर्मलता
 पहाड़ों का मौन
 गीतों की धुन मिट्टी का सौंधापन
 फसलों की लहलहाहट
 नाचने के लिए खुला आँगन
 गाने के लिए गीत
 हसने के लिए थोड़ी सी खिलखिलाहट
 रोने के लिए मिट्टी भर एकांत
 वच्चों के लिए पहाड़ों की शांति
 और इस अविश्वास भरे दौर में
 थोडा-सा विश्वास थोड़ी-सी उम्मीद
 थोड़े से सपने।”⁹⁹

अर्थात् कविता में अपने परिवेश को बचाने की तडप है। प्राकृतिक जीवन से परिचित व्यक्ति ही प्रकृति को सुरक्षित रखने के लिए आतुर होता है। जल, जंगल और ज़मीन आदिवासी जीवन के प्रमुख आधार हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में प्रकृति का अंधाधुंध शोषण हो रहा है। जंगलों को तोड़कर, वृक्षों को काटकर कल-कारखाने बनाते हैं। ‘बूढ़ी पृथ्वी का दुःख’ शीर्षक कविता प्राकृतिक विनाश से पृथ्वी का दुःख नहीं बल्कि कवयित्री का अपना दुःख है। वे कहती हैं-

“क्या तुमने कभी सुना है
 सपनों में चमकती कुल्हाड़ियों के भय से
 पेड़ों की चीत्कार?”⁹²

प्रकृति के प्रति मानव की नृशंसता देखकर कवयित्री आदमी होने पर संदेह प्रकट करती हैं। प्रकृति और आदिवासी के बीच एक समझौता है। आदिवासी ही प्रकृति को अच्छी तरह जानते, व समझते हैं। जंगली पगड़ंडियों में नंगे पैर चलने में उन्हें कोई भय नहीं। जंगली जानवरों के हरकतों से वे मौसम की भिजाज समझते हैं। जंगली जडी-

बूटियों से इलाज़ करना वे जानते हैं। फिर भी पेड़-पौधे, नदी-झरने, पर्वत-पहाड़ आदि के विनाश होते हुए भी वे खामोश हैं। पारिस्थितिक पतन के पीछे चलनेवाली साजिशों के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए 'बिटिया मुर्मु के लिए' कविता के माध्यम से कवयित्री प्रेरणा देती हैं-

“देखो, अपनी बस्ती के सीमांत पर
जहाँ धराशायी हो रहे हैं पेड़
कुलहाडियों के सामने असहाय
रोज़ नंगी होती बस्तियाँ
एक रोज़ माँगेगी तुमसे
तुम्हारी खमोशी का जवाब”^{१३}

पानी की समस्या आदिवासी इलाकों की बहुत बड़ी समस्या बन गई है। अंधाधुंध प्राकृतिक दोहन इनके पीछे कार्यरत है। आदिवासी इलाकों की नदियों के ऊपर बाँध बनाकर नहर के रास्ते पानी शहरों में ले जाता है। इसलिए पानी का संकट भी वहाँ आ गया है। अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के लिए पानी लेने के लिए स्त्रियों को कोसों दूर जाना पड़ता है। 'अगर तुम मेरी जगह होते' कविता में कवयित्री इसकी ओर संकेत करती हैं। वे मुख्यधारा समाज से यह सवाल उठाती हैं कि अगर तुम्हारी बेटियों को कोस भर दूर से झरनों से पानी ढोकर लाना पड़ता तो तुम्हें कैसे लगता?

आदिवासी स्त्रियों को प्रकृति के प्रति विशेष लगाव है। 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा' की लड़की एक प्रकृति प्रेमी से विवाह करने की इच्छा प्रकट करती हुई कहती हैं -

“और उसके हाथ मत देना मेरा हाथ
जिसके हाथों में कभी कोई
पेड़ नहीं लगाए
फसलें नहीं उगाई।”^{१४}

इन दिनों शहरी मानव के अनियंत्रित हस्तक्षेप से जंगलों का अस्तित्व खतरे में है। इसलिए संपूर्ण प्राणी जगत के जीवन में संकट की स्थिति पैदा हुई है। जंगलों में कोई ठिकाना नहीं तो हाथी एवं अन्य जानवर जंगल छोड़ गाँव की ओर चल पड़े हैं। जंगल काटने से बाघ और भालू कम होते जा रहे हैं। आदमी के बढ़ते आतंक से जंगलों में सब कुछ उलट पुलट हो गया है। अब जंगल जंगल नहीं रह गया है तो 'इन दिनों' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“दादी
अब नहीं कहती जंगलों की किस्से
झरनों से बहते शीतल जल के सोते की
पक्षियों के किस्से भी
नहीं कहती हैं अब
दादी हाय मुग्ध है
अपने समय के जंगलों को याद कर
जहाँ से चुन लाती थी
अपने खोपा के लिए
मकचन्द का फूल
बीमारी के लिए घास का जड़।”⁹⁴

सह अस्तित्व की संस्कृति से जुड़े रहने के कारण पशु-पक्षियों एवं पेड़-पौधों के प्रति कवयित्री अपनी संवेदना प्रकट करती हैं। इनकी सहजीविता और सह अस्तित्व के संबंध में रमणिका गुप्ता लिखती हैं - “आदिवासी जीवन शैली में मनुष्य और प्रकृति तथा उसके जीवजंतु साथ - साथ जीते हैं, साथ-साथ कष्ट झेलते हैं, हँसते गाते हैं, रोते-बिसूरते हैं। इनके पहाड़, इनकी नदियाँ, हवा या आग इनके देवता हैं। जिस की रक्षा करना ये अपना कर्तव्य मानते हैं और इनका दृढ़ विश्वास है कि प्रकृति इन्हें पालती पोसती है।”⁹⁵

प्राकृतिक संपदाओं के प्रश्रय में रहनेवाले इन लोगों का आर्थिक स्रोत वन है। जंगलों से प्राप्त प्राकृतिक संसाधनों से वे अपना जीवनयापन करते थे। लेकिन जब इन संसाधनों पर गैर आदिवासी लोगों की गिद्ध दृष्टि पड़े, तब से वे इन्हें लूटने लगे। इसकी वजह से आदिवासी जीवन में अभाव का अंधकार छाने लगा। कवयित्री निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रकृति के वर्तमान परिवेश एवं वातावरण के प्रति संवेदना प्रकट करके समस्याओं के प्रति सचेत रहने का संदेश दिया है।

६.४.३. सांस्कृतिक संकट

आदिवासी समाज में एक श्रेष्ठ परंपरागत संस्कृति है। भारत की अन्य संस्कृतियों से वह नितांत भिन्न है। मानव मूल्यों एवं जीवनमूल्यों का भंडार होने के कारण अन्य संस्कृतियों के मुकाबले में इसकी विशिष्ट पहचान है। सहजीविता, सहभागिता, सामूहिक भावना, जाति एवं लिंग समानता, प्रकृति प्रेम आदि इस संस्कृति के श्रेष्ठ गुण हैं।

आदिवासी समाज तो विभिन्न समुदायों में विभाजित है फिर भी यहाँ जातिगत भेदभाव नहीं है। मुख्यधारा समाज के समान ऊँच-नीच का भेदभाव कदापि नहीं है। सामूहिकता या सामूहिक जीवन इस समाज की बहुत बड़ी विशेषता है। हरेक आदिवासी समुदायों में सामूहिक भावना की परंपरा है। खेती बाड़ी, आचार-विचार, रीति-रिवाज़, पर्वत्योहार आदि में इनकी अनूठी सामूहिक भावना देख सकते हैं। समानता या समता की भावना आदिवासी संस्कृति की विशेषता है। इसमें जाति, धर्म, लिंग एवं अर्थ के स्तर पर कोई भेदभाव नहीं है। आदिवासी संस्कृति में स्त्री पुरुष के बराबर है। कुछ अंधविश्वासों के होते हुए भी पितृसत्ता के बंधनों से मुक्त होने के कारण स्त्री स्वतंत्र, स्वावलंबी, परिश्रमी एवं साहसी होती है। स्त्री और पुरुष के अधिकारों में भी बराबरी है।

सहजता, सरलता एवं भोलापन आदिवासी समाज के विशेष गुण हैं। इन सद्गुणों के साथ अज्ञानता एवं अशिक्षा होने के कारण आज इनका अस्तित्व प्रश्न चिह्न बन गया

है। ग्रामीण संस्कृति एवं आधुनिक सभ्यता के बीच के द्वन्द्व में वे पिसते जा रहे हैं। गाँवों की जीवनरिति एवं संस्कृति से एकदम भिन्न है शहरी जीवन। आधुनिक सभ्य कहे जानेवाले शहरी सभ्यता का बुरा प्रभाव आदिवासी समाज में आज देखने को मिलता है। शहरी समाज के संसर्ग में आने के बाद अब आदिवासी खुद अपनी परंपरा, भाषा, संस्कृति और मूल्यों को हेय की दृष्टि से देखने लगे। ऐसी अवस्था में अपनी संस्कृति एवं भाषा को बचाने की कोशिश निर्मला पुतुल की कविता में देखने को मिलती है। 'बिटिया मुर्मु के लिए' शीर्षक कविता में वे अपने समाज को सचेत करते हुए कहती हैं-

“वे दबे पाँव आते हैं तुम्हारी संस्कृति में
वे तुम्हारे नृत्य की बड़ाई करते है
वे तुम्हारी आँखों की प्रशंसा में कसीदे पढते है
वे कौन है?
सौदागर हैं वे.....समझो
पहचानो उन्हें बिटिया मुर्मु....पहचानो”⁹⁰

निर्मला पुतुल उनकी अपनी संस्कृति को एवं अस्मिता को विनष्ट करने की साजिशों के विरुद्ध सशक्त बनने की प्रेरणा देती हैं। संथाल लोगों की बस्ती को संथाल परगना कहते हैं। संथाल परगना की संस्कृति श्रेष्ठ है। संथालों के अपना जीवन तरीका एवं रीति रिवाज़ हैं। संगीत, भाषा, एवं साहित्य में वे विशेष पहचान रखते हैं। कवयित्री खुद इस क्षेत्र के होने के कारण संथाल परगना की आज की दशा पर व्यथित है। 'संथाल परगना' शीर्षक कविता में वे इसकी सूचना देती हैं। वे कहती हैं कि बाज़ार की तरफ भागते-भागते संथाल परगना के सब कुछ गड्ढमड्ढ हो गया है। अब संथाल परगना, संथाल परगना नहीं रह गया है। वहाँ के लोगों की भाषा और वेशभूषा में भी बदलाव आए हैं।

इस संथाल परगना की प्रकृति तक कायापलट हो रही है। समय की मुर्दागाडी में चढ़कर कहीं गायब होने की स्थिति में है अब संथाल परगना। प्रस्तुत कविता में वे लिखती हैं -

“उतना भी बच नहीं रह गया ‘वह’
 संधाल परगना में
 जितने की उनकी
 संस्कृति के किस्से”^{१८}

निर्मला पुतुल अपनी मातृभाषा संधाली में विशेष रुची रखती हैं। अपने साहित्य लेखन में वे संधाली भाषा को प्रधानता देती हैं। क्योंकि उनकी अपनी मातृभाषा जंगल, नदी, पहाड से जुडी गई भाषा है। उस भाषा को छोड़कर उन्हें कोई अस्तित्व नहीं है लेकिन तथाकथित सभ्य समाज अपनी भाषा आदिवासी समाज के ऊपर चढ़ाने की कोशिश करता है। सभ्य समाज भाषा के ज़रिए आदिवासी समाज के ऊपर अपना वर्चस्व स्थापित करता है। ‘पहाडी पुरुष’ शीर्षक कविता द्वारा कवयित्री अपने आदिवासियों की भाषा के प्रति संवेदना व्यक्त करती हैं-

“वह पहाडी भाषा में बोलता पहाड से
 बतियाता है अपना सुख-दुख
 गाता है पहाड पर बैठ पहाडों के गीत
 पहाडी लिपि में, पहाड पर लिखता है
 ‘प’ से पहाड।”^{१९}

निर्मला पुतुल अच्छी तरह जानती हैं कि शहरी सभ्यता संधाल परगना को मर्यादाहीन बना दी है। उनकी भाषा में कृत्रिमता आ गई है। ‘आओ मिलकर बचाएँ’ शीर्षक कविता में शहर की आबो-हवा से त्रस्त अपनी बस्तियों को बचाने का आह्वान करके वे लिखती हैं-

“अपनी बस्तियों को
 नंगी होने से
 शहर की आबो-हवा से बचाएँ उसे
 बचाएँ डूबने से
 पूरी की पूरी बस्ती को
 हडिया में

अपने चेहरे पर
संथाल परगना की माटी का रंग
भाषा में झारखण्डीपन”^{२०}

शहरी आबोहवा से बचाने का मतलब सांस्कृतिक क्षरण से बचाना है। जंगली इलाकों में भी बाज़ार का वर्चस्व बढ़ गया है। यह आदिवासी अस्तित्व के लिए खतरा बन गया है। बाज़ार का बढ़ता प्रभाव उनकी जीवन रीति में कई तरह के बदलाव लाया है। जंगल के शुद्ध झरनों से पानी पीनेवाले लोगों को बोतल बंद पानी, पेप्सी, स्राइट आदि पीने की आदत हो गयी है। उनका चरित्र भी उनसे छूट रहा है। कवयित्री को आश्चर्य होता है कि-

“पता नहीं कब
हमारी प्यास में घुस गया यह सब
सभा सम्मेलनों में आते-जाते एक बोतल बंद पानी ने”^{२१}

ये बदलाव आदिवासी समाज का मुख्यधारा समाज से संपर्क के कारण है। झारखंडी अस्मिता पर बातें करने के लिए सभा सम्मेलनों में आनेवाले लोगों की चालाकी कवयित्री पहचानती हैं। इसी संदर्भ को लेकर ‘जब टेबुल पर गुलदस्ते की जगह बेसलरी की बोतलें सजती हैं’ शीर्षक कविता में वे लिखती हैं-

“आखिर वे लोग
जो हमारे भीतर
जल-जंगल ज़मीन बचाने का जज्बा देखते हैं
झारखंडी अस्मिता और देशज संस्कृति तलाशते हैं
उन्हीं की संगति ने हमारी भाषा बिगाड़ दी
और प्यास बुझाने के लिए
पेप्सी और स्राइट का चमका लगा लिया।”^{२२}

बाहरी लोगों की संगति आदिवासी जल, जंगल और ज़मीन को मिटा रही है। आदिवासी परगनाओं की संस्कृति को भी जड़ से उखाड़ रही है। समाज में समय-समय

पर कई तरह के बदलाव आते हैं। आधुनिकता की घुसपैठ से इतना बदलाव आया है कि आज समाज का चेहरा हम पहचान नहीं सकते हैं। हम अपनी श्रेष्ठ संस्कृति को छोड़कर नख-शिखर अपसंस्कृति के पीछे पड़े हैं। समाज का बदलना तो साधारण बात है। इनके साथ ही साथ आदमी की चिंताएँ, आदमी का चरित्र आदि तेज़ी से बदल रहे हैं। आदमी के अंदर अब समाज टुकड़ों-टुकड़ों में बाँट रहा है। आदमी के बदलता स्वरूप समाज को बिगाड़ता है। कवयित्री को यह अच्छा नहीं सूझता है, तो वे 'समाज' शीर्षक कविता में लिखती हैं-

“समाज का बदलना कोई नई बात नहीं है
नयी बात कुछ है तो वह है
कि समाज के साथ आदमी का बदलना
क्या उतनी तेज़ी से बदल रहा है आदमी।”^{२३}

आदिवासी समाज के अस्तित्व के प्रति कवयित्री चिंता रखती हैं। भाषा, संस्कृति, जल-जंगल-ज़मीन आदिवासी अस्तित्व के मूल तत्व हैं। आधुनिक दौर में तथाकथित सभ्य समाज या मुख्यधारा समाज की संगति एवं युगीन प्रभाव ने आदिवासी समाज के ऊपर गहरा घात पहुँचाया है। अपनी संस्कृति, भाषा एवं अस्मिता के प्रति संवेदनशील समाज के लिए अवश्य ही यह चिंतनीय विषय है।

६.४.४. अभावग्रस्त ज़िंदगी

कठिन मेहनत करने के बावजूद भी अभाव में जीने के लिए विवश एक समाज है आदिवासी समाज। आधुनिक समय में औद्योगीकरण का प्रभाव हर क्षेत्र में नया मोड लाया है। लेकिन आदिवासी समाज में यह हितकर नहीं बना। गरीबी, बेरोज़गारी, भूख आदि उनके जीवन में पहले की तरह आज भी ज्यों का त्यों रहते हैं। स्वतंत्रता के बाद विकास तो अवश्य हुए लेकिन विडंबना की बात यह हुई कि विकास कुछ चुनिंदे लोगों का मात्र रह गया। बाकी लोगों को इस विकास से बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ी। सरकार द्वारा बनायी गयी विकास योजनाएँ आदिवासी समाज के आर्थिक संतुलन को

बिगाड दिया। महंगाई के कारण दैनिक उपयोग की वस्तुएँ खरीदना भी मुश्किल बन गया है। वे कुपोषण का शिकार भी बन गए हैं।

आदिवासियों की अर्थव्यवस्था को बनाये रखने में वन एवं वन पदार्थों की अहम भूमिका है। वन विभवों पर उनका जो अधिकार है वह आज राजनितियों एवं माफियाओं की गुटबाजी में एकदम समाप्त हुआ है। इस पर रमणिका गुप्ता ने लिखा है- “जंगल माफिया कीमती पेड़ उनसे सस्ते दामों पर खरीदकर उच्चे दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी ही नीतियों के कारण आदिवासी ज़मीन के मालिक बनने के बजाय पहले मज़दूर बने फिर बंधुआ मज़दूर”।^{२४}

आदिवासी समाज के अधिकांश लोग खेती बाड़ी करके जीवन यापन करते हैं। ऊबड़-खाबड़ जंगली धरती में कठिन मेहनत करके वे इन्हें खेती करने योग्य बना देते हैं। लेकिन सरकार एवं पूँजीपतियों के गठजोड़ ने इस भूमि का अधिग्रहण किया है और इन्हें वहाँ से खदेड़ते हैं। इससे उनके जीवनयापन में कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। खेती के समाप्त होने पर गरीबी झेलने के लिए ये विवश बन जाते हैं।

अपनी ज़मीन से बेदखल होकर किसी काम-काज के लिए शहर की ओर भागनेवाले आदिवासी लोग बेरोज़गारी की समस्या से जूझ रहे हैं। यदि वहाँ कोई काम मिलता तो वे विभिन्न शोषण के शिकार भी बन जाते हैं। ज़्यादातर आदिवासी इलाके खनिज से संपन्न हैं। फिर भी इस खनिजों में इन्हें कोई अधिकार नहीं है। खनिज संपन्नता पर पूँजीपतियों का कब्जा है। खनिजों में कठिन मेहनत करने के फलस्वरूप ज़्यादातर आदिवासी लोगों की ज़िंदगी में आजीवन रोगग्रस्तता का अभिशाप आया है। गरीबी की भट्ठी में जलते आदिवासी जीवन संघर्षों का दस्तावेज़ है निर्मला पुतुल की कविताएँ। ‘संथाल परगना’ शीर्षक कविता में निर्मला पुतुल ने आदिवासी जीवन में व्याप्त अभाव को यों शब्दबद्ध किया है-

“भूख है

भूख में दूर तक पसरी ऊबड़-खाबड़ धरती है

धरती पर काले नंगे पहाड़ है

पहाड़ पर वीरानियाँ”^{२५}

‘आपके शहर में, आपके बीच रहते, आप के लिए’ शीर्षक कविता में भूखा ग्रस्त होकर जीनेवाले लोगों की दर्दनाक स्थिति हमारी संवेदना के स्तर पर गहरी चोट पहुँचाती है। भूख की भयानकता की अभिव्यक्ति इसप्रकार हुई है-

“भूख, बीमारी, शोषण से लडते-मरते लोगों के मुद्दे पर

मेरे दोस्त का थका-हारा चेहरा

में अपने इलाके के सूखे और अकाल की

चर्चा करना चाहती हूँ आपसे

भूख बीमारी से लडते-मरते मंगरू, बुधवा और

इलाज के लिए राशनकार्ड गिरवी रखनेवाले

समरू पहाडिया की बात करना चाहती हूँ

जड खाकर जिन्दा संतालों और

चूहें पकाकर खा रहे भूखे नंगे

पहाडिया बच्चों की बात करना चाहती हूँ”^{२६}

‘अखबार बेचती लडकी’ शीर्षक कविता भी रोटी की समस्या को सामने रखती है। कवयित्री को इसका पता नहीं कि वह लडकी अखबार बेच रही है या खबर बेच रही है। लेकिन निश्चय ही इसका पता है कि वह रोटी के लिए अपनी आवाज़ बेच रही है।

स्वतंत्रता के पश्चात् इतने वर्ष बीत चुकने के बाद भी आदिवासी इलाकों के झुग्गी झोंपडियाँ अभाव के अंधेरे में हैं। झोंपडियों के बाहर शोषण का अंधकार है तो अंदर शोषण के फलस्वरूप उत्पन्न अभाव का अंधेरा है। अंधेरों से लडकर हारनेवाले दिए बन गयी है उनकी ज़िन्दगी। ‘जगमगाती रोशनियों से दूर अंधेरों से घिरा आदमी’ शीर्षक कविता में इसकी ओर संकेत है।

“एक अँधेरा बाहर है
जो उसे चारों ओर घिरा है
और दूसरा उसका भीतर का अँधेरा है
जो वर्षों से दूर नहीं हो रहा है
अंधेरों से घिरा आदमी लगातार लड रहा है
अपने बाहर और भीतर के अँधेरे से”^{२७}

आदिवासी समाज में पुरुषों के समान स्त्रियाँ एवं लड़कियाँ भी कठिन मेहनत करनेवाली हैं। लेकिन ये स्त्रियाँ अर्थगत शोषण का शिकार बन कर अभाव ग्रस्त ज़िन्दगी जी रही हैं। कठोर मेहनत करने के बाद भी वे पेट भरने में असमर्थ हैं ‘बाहामुनी’ शीर्षक कविता में इस दर्दनाक स्थिति की ओर संकेत करते हुए वे लिखती हैं-

“तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हज़ारों
पर हज़ारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट”^{२८}

इनकी अभावग्रस्त ज़िन्दगी की विवशता की ओर इशारा करते हुए कवयित्री कहती हैं कि यह बहुत बड़ी विडंबना है कि चटाई बुननेवाली औरत स्वयं ज़मीन पर बैठती है तो पंख्रा बनानेवाली औरत पसीने से लथपथाती है। पत्तल बनना, झाड़ू बनना, चटाई बुनना, पंख्रा बनना, वन से मिलनेवाले महुए, चिरौंजी, धानें, आदि को इकट्ठा करना, उन चीज़ों की सफाई, चँटाई आदि काम वे करती हैं। साथ ही साथ पूँजीपतियों के कल कारखाने एवं खनिजों में भी काम करती हैं। अपने जीवन भर रोटी की खोज में भागते फिरते औरतों के प्रति कवयित्री अपनी संवेदना प्रकट करती हैं।

‘ढेपचा के बाबू’ शीर्षक कविता में बेरोज़गारी, भूखमरी एवं गरीबी से त्रस्त आदिवासी समाज का सीधा खुलासा चित्रण है। रोज़ी रोटी कमाने के लिए ढेपचा के बाबू, बहन और स्वयं ढेपचा अपने इलाके छोड़कर पलायन करने के लिए मज़बूर बन गये हैं। अब घर में ढेपचा की माँ और पाँच साल का लड़का अकेले बन गये हैं। जंगल की स्थिति ऐसी हो गयी है

कि कन्द फल खतम हो गये हैं, महुआ का टपकना बंद हो गया है, खेती-बाड़ी का हाल बेहाल हो गया है, तो उनकी ज़िन्दगी भी बर्बाद हो गये हैं। साथ ही साथ बाज़ारीकरण की मार की पीडा भी झेलती है वह औरत। कविता 'ढेपचा के बाबू' शीर्षक कविता में ऐसा कथन है -

“इधर काम-काज भी नहीं मिलता आजकल,
जो मेहनत मजूरी कर घर चलाऊ
दोना पत्तल भी नहीं विकता
और न ही लेता है कोई चार-चटाई
झाड़ू, पंखा, दातुन का भी बाज़ार नहीं रहा अब
भूले-भटके गर कभी कोई पैकार आता भी है
तो रुपये जोडा माँगता है पंखा
और सौ रुपये दर्जन चटाई
एक तो सब छोड़-छोड़ दिन-भर लगे रहो
उस पर भी गर पचास-साठ नहीं निकले
तो उसे करने से क्या फायदा?”^{२९}

आदिवासी बस्तियों में आर्थिक विपन्नता के कारण स्त्रियों यौन शोषण का भी शिकार बन जाती हैं। रोजी रोटी कमाने के लिए शहरों में जानेवाली स्त्रियों को आर्थिक शोषण और यौन शोषण दोनों झेलने पड़ते हैं। शहरी लोग इन्हें बहला फुसलाकर सुनहरी ज़िन्दगी का सपना दिखाकर दिल्ली की आया बनानेवाली फैक्ट्रियों में कच्चे माल की तरह सप्लाई कर रहे हैं। अपनी आर्थिक विपन्नता के कारण कभी-कभी वहाँ ये औरतें देह व्यापार करने के लिए मज़बूर होती हैं। 'चुडका सोरेन' शीर्षक कविता में कवयित्री इस दुरवस्था पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं-

“पूरी बस्ती को रिझाती जा
बैंग लटकाये जाती है बाज़ार

और देर रात गये लौटती है-
खुद को बेच कर बाज़ार के हाथों।”^{३०}

आदिवासी इलाकों में अभाव इतना पैर पसारा है कि अपनी लड़कियों एवं स्त्रियों को बेचने के लिए ये विवश बन गए हैं।

“हम देखते हुए चुप है
हमारी बस्ती की
सोनामुखी और रासमुनी को
दिल्ली और उत्तर प्रदेश के
जनपदों में बेच रहा है।”^{३१}

“अस्सी के दशक में गरीबी के कारण झारखंड क्षेत्र के शहरों में आदिवासी लड़कियों को दाई के रूप में महिलाओं द्वारा संपन्न घरानों में बर्तन धोने, झाड़ू लगाने, कपडा धोने इत्यादि कार्यों के माध्यम से आय प्राप्त करने की शुरुआत हुई। इस प्रक्रिया में उत्तरोत्तर बदलाव आते हुए और ग्रामीण महिलाओं ने इस कार्य को अपने आय के साधन के रूप में विकसित किया। बाद में गाँव में कुछ ऐसे लोग सक्रिय हुए जिन्होंने शहरों के आदिवासी परिवारों एवं शिक्षण संस्थाओं को दाई के रूप में काम करने के लिए लड़कियों को भेजने का काम शुरू किया। इस प्रक्रिया में सैकड़ों लड़कियाँ झारखंड क्षेत्र के विभिन्न जिलों से भेजी जाती थी।”^{३२}

आदिवासी बस्तियों की सच्चाई तो यह है कि कहीं महंगाई के मार से या कहीं सरकार की झूठी उपलब्धियों के नाम से जनता पिस रही है। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध शोषण से बाढ़, अकाल, सूखा आदि आपत्तियों का भी सामना करना पड़ता है। ये भी इनके जीवन में गरीबी का सवाल खड़ा करते हैं। गरीबी तथा आर्थिक विपन्नता मानवता के अंत का कारण बन जाती है। आदिवासी इलाकों की गरीबी को हटाने के लिए सरकार के द्वारा कई योजनाएँ बनायी गयी हैं। लेकिन इनसे आदिवासियों

के लिए कोई फायदा नहीं हुआ। इन योजनाओं के सामने उनकी गरिबी यथावत् बनी रही।

६.४.५. कुरीतियाँ एवं अंधविश्वास

आधुनिक युग में भी समाज में अंधविश्वास पाये जाते हैं। लेकिन आदिवासी समाज में ये ज़्यादातर अधिकाधिक पाये जाते हैं। क्योंकि इस समाज में शिक्षा के अभाव होने के साथ ही अंधविश्वास संस्कृति का अंग भी है। घडा-उतार की प्रथा से लेकर स्त्री जीवन से जुड़े अंधविश्वासों का चित्रण करके अपनी क्रांतिदर्शी कविताओं के माध्यम से कवयित्री उनका विरोध करती हैं। आदिवासी समाज के विकास के रास्ते में अंधविश्वास एवं कुरीतियाँ एक बाधा बन गई हैं। जादू-टोना, झाड-फूँक, भूत-प्रेत आदि में इन्हें बहुत अधिक विश्वास है। यहाँ की स्त्रियाँ समाज में व्याप्त तरह-तरह की कुरीतियों का शिकार बन जाती हैं। आदिवासी समाज में स्त्रियाँ हल नहीं छू सकतीं उसी प्रकार छप्पर नहीं छा सकती। तीर-धनुष छूना भी इन्हें वर्जित है।

‘कुछ मत कहो सजोनी किस्कू’ शीर्षक कविता में कवयित्री ने आदिवासी समाज में व्याप्त इन अंधविश्वासों का चित्रण बखूबी ढंग से किया है। सजोनी किस्कू ने अपने गाँव बागजोरी की धरती पर हल चलाया था। पूरी बस्ती के लिए यह अपमान सिद्ध हुआ बस्ती की नाक बचाने के खातिर उन्हें बैल बनाकर हल में जोतने से लेकर खूँटे में बाँधकर भूँसा खिलाने तक का भीषण दंड दिया गया। इन कुप्रथाओं पर प्रहार करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“आज धनुष छूते ही तुम्हारे
धरती पलट जाएगी
मच जाएगा प्रलय सजोनी किस्कू
मत छूना धनुष।
घर चूस रहा है तो चूने दो

छप्पर छाने मत चढना ।

‘जातीय टोटम’ के बहाने

पहाडपुर की ‘प्यारी हेम्ब्रम’ की तरह

तुम्हारा मरद भी करेगा तुमसे जानवराना बलात्कार

और नाक-कान काट धकिया निकाल फेंकेगा घर से बाहर ।”^{३३}

‘ढेपचा के बाबू’ शीर्षक कविता में ढेपचा की माँ अपनी निरसहायता व्यक्त करती हैं कि बरसात में घर चूता है तो छप्पर छाने के लिए पैसा नहीं है और खुद तो कर भी नहीं सकती ।

स्त्रियों को हल चलाना एक बड़ा पाप समझनेवाले समाज में एक अकेली औरत भूख्रा रहने पर भी खेती नहीं कर सकती । इसकी ओर संकेत करते हुए ‘ढेपचा के बाबू’ शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“खेती-बाड़ी का हाल बड़ा बेहाल है

दो साल से खेत परती है

ढेपचा था तो जहाँ तक हो सकता था, करता था

अब तो वह भी नहीं है

और हम तो हल चला नहीं सकते न ।”^{३४}

स्त्रियों को डायन करार देकर दंड देना ही इनके बीच एक अंधविश्वास है। गाँव में कोई बीमार है तो, साँप काटे तो वे इसे डाइन का प्रकोप मानते हैं। यदि एक स्त्री को डायन करार देता है तो कई तरह से उसकी परीक्षा ली जाती है। भयंकर शारीरिक कष्ट भी दिया जाता है। कवयित्री ‘ढेपचा के बाबू’ शीर्षक कविता में इन कुरीतियों की ओर इंगित करती हैं-

“और एक दिन तो गजब ही हो गया

लखना के बेटे को साँप ने काटा

तो सबके सब आ धमके हम पर

कहने लगे डायन है हम
 कुछ कर दिया है उसके बच्चे को
 वह तो अच्छा हुआ शरबतिया, ने साँप देख लिया
 नहीं तो पकलू बुडिया की तरह
 मुझे भी घसीटकर ले जाते लोग कुलि में
 और भरी पंचायत में सर मुडवा
 नचा देते नंगा
 कर देते मुँह पर पेशाव
 ठँस देते मैला।”^{२५}

आदिवासी समाज के लोग अपशकुन में भी विश्वास करते हैं। ‘बिल्ली’ शीर्षक कविता में इसका उदाहरण मिलता है।

“चाहे हम जितना भी खुद को प्रोग्रेसीव कह लें
 पर इस बात में सचाई है
 अगर बिल्ली रास्ता काट ले
 तो हम अपना रास्ता मोड लेते हैं।”^{२६}

इस तरह की कई कुप्रथाएँ आदिवासी समाज में व्याप्त हैं। अंधविश्वास के घेरे में पड़े रहना, उनके जीवन को बरबाद करने का कारण बन जाता है। इन अंधविश्वासों एवं कुप्रथाओं से मुक्त होने के लिए कवयित्री सचेत करती हैं।

६.४.६. अपने घर की तलाश में

आदिवासी समाज में स्त्रियों को सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिवेश में महत्वपूर्ण स्थान है। वहाँ पुरुषों के समान अधिकार उन्हें भी प्राप्त है। स्त्री प्रायः स्वतंत्र है। मातृसत्ता पर आधारित समाज होने के कारण संपत्ति पर भी उसे अधिकार है। स्त्री पुरुषों के साथ कई कामों में भी भाग लेती है। इनके अतिरिक्त अन्य कई गृह उद्योग भी करती है। आर्थिक स्तर भी वह स्वतंत्र है। लेकिन आज बाहरी संस्कृति से घुल मिल होने के कारण

आदिवासी समाज में भी स्त्री दोगुना दर्जे की बन गयी है। उन्हें कई तरह की पीडाओं से गुज़रना पडता है। आज आदिवासी स्त्री गोत्र समाज और मुख्यधारा समाज द्वारा शोषण का शिकार है।

आदिवासी स्त्री के संबंध में कहें तो वह तिहरे शोषण का शिकार है। जातिगत, लिंग गत एवं अर्थगत। वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति में वह सिर्फ भोगवस्तु बन गयी है। पुरुष सत्तात्मक समाज उन्हें देह की दृष्टि में देखने लगा तो पूरी मार्मिकता के साथ कवयित्री को यह कहना पडता है कि 'मात्र देह नहीं है स्त्री'। पुरुष से भिन्न होकर एक स्त्री का अस्तित्व पुरुष सत्तात्मक समाज नहीं मानता है। वह उन्हें घर, प्रेम और जाति के भीतर जोड रखा है तो निर्मला पुतुल की स्त्री अपने अस्तित्व की तलाश करती रहती है। क्योंकि वह अपने जीवन में स्वयं को स्थापित और निर्वासित होने का संघर्ष झेल रही है। बचपन से लेकर विवाह तक वह अपने घर, माँ, बाप, भाई, बहनों के साथ जीवित रहती है तो विवाह के उपरांत अपने घर से निर्वासित होकर अन्य कोई अनजान घर में खुद को स्थापित करना पडता है। 'क्या तुम जानती हो' शीर्षक कविता के माध्यम से एक ही समय में स्वयं को स्थापित और निर्वासित होनेवाली स्त्री की पीडा को वाणी देती हैं। पुरुष कभी भी स्त्री को स्त्री की दृष्टि से नहीं देखता है। तन के भूगोल से परे एक स्त्री के भीतर जाकर उनके मनोव्यापार को समझने में वह असमर्थ है। इसलिए कवयित्री 'क्या तुम जानते हो' शीर्षक कविता में अपनी चिद्रोहात्मक स्वर गुँजती हुई पूछती हैं-

“क्या तुम जानते हो
 एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण?
 बता सकते हो तुम
 एक स्त्री को स्त्री दृष्टि से देखते
 उसके स्त्रीत्व की परिभाषा?
 अगर नहीं।

तो फिर जानते क्या हो तुम
 रसोई और विस्तर के गणित से परे
 एक स्त्री के बारे में...?”^{३७}

स्त्री की अंतर्वेदना को न समझनेवाले उन्हें सिर्फ भोग्य माननेवाले समाज से गहनतम पीडा के साथ कवयित्री यह प्रश्न पूछती हैं। पुरुष स्त्री को स्त्री के नज़रिये से नहीं बल्कि पुरुष के नज़रिए से देख रहा है। ऐसे समाज में रहते-रहते स्त्री अपनी स्वयं की दुनिया को पुरुष की दृष्टि से देखने के लिए अभ्यस्त हुई है। अर्थात् वह स्वयं पुरुषसत्तात्मक समाज का गुलाम बन गयी है। गुलाम के मन में मुक्ति की चाहत होना स्वाभाविक है। यहाँ स्त्री पति, घर, प्रेम, संतान आदि से मुक्त होकर अपनी एक दुनिया बनाना चाहती है। उसकी पहचान स्वयं से करने के लिए वह चाहती है। ‘अपनी ज़मीन तलाशती बेचैन स्त्री’ शीर्षक कविता में इसकी ओर संकेत है-

“अपनी कल्पना में
 एक ही समय में स्वयं को
 हर बेचैन स्त्री तलाशती है
 घर प्रेम और जाति से अलग
 अपनी एक ऐसी ज़मीन
 जो सिर्फ उसकी अपनी हो”^{३८}

वह अपने सारे बंधनों को तोड़कर विशाल आकाश में स्वतंत्र विचरण करना चाहती है। पुरुष सत्तात्मक समाज की नीतियाँ गृहणी या माँ के पद पर बिठाकर एक सीमारेखा खींचकर उसे उत्तरदायित्वों की बेड़ियों में बाँध रखती हैं। बच्चों को पालन पोषण करने से लेकर पूरे घरवालों को खुशमद करने का उत्तरदायित्व उसके ऊपर पडा है। घर के बाहर की दुनिया से वह नितांत अपरिचित है। उसकी दुनिया तो उसकी आँखों की पहुँच तक सीमित है। हमेशा दूसरों की भलाई के लिए जीनेवाली औरत कभी भी खुद अपने बारे में सोचती ही नहीं। वह सब कुछ सहकर आँसू पीकर घूँट-घूँटकर जी रही है। हर क्षण एक मोम की

तरह पिघलती रहती है और दूसरों के जीवन को प्रकाशमान बनाती भी है। इसकी ओर संकेत करते हुए 'औरत' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“सबकी सुनती है
छण - छण जलती है
होठों को सीती है
बिन तेल की बाती है
अधलिखी पाती है
मर्दों की थाती है।”^{२९}

वह अपना सर्वस्व घर के लिए समर्पित करती रहती है। लेकिन घर उनके लिए एक प्रश्नचिह्न बन गया है। निर्मला पुतुल की स्त्री यह पहचानती है कि बरामदे पर खेलते बच्चे मेरे हैं लेकिन घर के बाहर लगी नेम-प्लेट मेरे पति की है। वह समझा रही है उनका अपना घर भी कहीं नहीं है। लेकिन दूसरों के लिए वह स्वयं एक घर बन गई है। वहाँ उनके जन्म से लेकर बिस्तर तक लोग कई-कई रूपों में बस रही है। स्त्री सदियों से अपने अस्तित्व की पीडा से तडप रही है। अपनी ज़मीन, अपना घर एवं अपने होने का अर्थ ढूँढ रही है वह। 'अपने घर की तलाश में' कविता इस सच्चाई की ओर संकेत करती हैं-

“धरती के इस छोर से उस छोर तक
मुट्ठी भर सवाल लिये मैं
दौडती-हाँफती-भागती
तलाश रही हूँ सदियों से निरंतर
अपनी ज़मीन, अपना घर
अपने होने का अर्थ!!”^{४०}

माँ या गृहणी का सीमित दायरे से उठकर समाज में अपनी पहचान एवं विशेष स्थान रखना हर स्त्री चाहती है। सिर्फ उसकी अपनी एक जगह उसका स्वप्न है। अक्सर पुरुष के नज़रिए में स्त्री अपना सहजीवि या सहचारणी नहीं, बल्कि एक गुलाम मात्र है। अपनी

इच्छा के अनुसार उछाल देने का एक गेंद है वह। उसकी खमोशी की दीवार में वह हमेशा कील टोकती रहती है। हमेशा पुरुष वर्चस्व के शिकार होने के बावजूद अब वह यह पूछने के लिए विवश बन गई है 'क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए'।

“एक तकिया
 कि कहीं से थका-माँदा आया
 और सिर टिका दिया
 कोई खूँटी
 कि ऊब उदासी थकान से भरी
 कमीज़ उतार कर टाँग दी
 या आँगन में तनी अरगनी
 कि घर-भर के कपड़े लाद दिये

 चुप क्यों हो
 कहो न, क्या हूँ मैं
 तुम्हारे लिए?”^{४१}

स्त्री को अपनी असहमति प्रकट करने का अधिकार भी नहीं है। पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री सोच एवं नज़रिए को गलत स्थापित करने के लिए तुला हुआ है। पुरुष लोग मानते हैं कि ऊँची आवाज़ में बोलना स्त्रियों को शोभा नहीं देता है। वह हमेशा अपनी वेदनाओं को खामोशी में छिपाकर जी रही है। किसी भी अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाना एवं हक की बात करना बड़ा अपराध है। क्योंकि बोलनेवाली औरत सभी को प्रहार करती है। अब वह आँख होते हुए भी अंधी, जुबान होते हुए भी गूँगी, एवं कान होते हुए भी बहरी रहने के लिए मज़बूर बन गई है। उनकी बुद्धि, सोच एवं आवाज़ को दबाकर उसके अधिकारों को सीमित रखने का बोधपूर्वक प्रयास चल रहा है।

स्त्रियों के प्रति पुरुषों की सोच हमेशा उपभोगवादी सोच है। पुरुष कभी भी स्त्री को मानव का समान दर्जा देने के लिए तैयार नहीं। इसलिए ही उसकी मुस्कराहट के पीछे का

बदसूरत चेहरा आज स्त्री पहचानती है। उसकी चुप्पी के अंधेरे में आक्रोश की आग सुलग रही है। वह यह सबित करने के लिए तैयार रही है कि मैं तुम्हारे सोच के परे हूँ। अपने स्वत्व को तलाशनेवाली बेचैन स्त्री की सिसकियाँ अब प्रतिरोध का हथियार लेती हैं तो 'मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो' शीर्षक कविता में लिखती हैं-

“मैं तलाश रही हूँ तुम्हारी कमज़ोर नसें
ताकि ठीक समय पर
ठीक तरह से कर सकूँ हमला
और बता सकूँ सरे आम गिरेबान पकड़
कि मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो!!”^{४२}

६.४.७. आदिवासी स्त्री का दर्द

निर्मला पुतुल की कविताओं के मूल में स्त्री संवेदना है। अपनी अस्मिता की तलाश करनेवाली स्त्री तरह-तरह के शोषण का शिकार है। निर्मला पुतुल की कविता स्त्री जीवन के तमाम दुःख ददों एवं मानसिक द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति करती है। घर में हो या काम के क्षेत्र में हो या स्त्री शोषण का शिकार है। स्त्री होना एक पीडा है तो दलित या आदिवासी स्त्री होना दोहरी पीडा है। क्योंकि वह जाति के स्तर पर एवं आर्थिक स्तर पर ज़्यादा कमज़ोर है। निर्मला पुतुल एक सामाजिक कार्यकर्ता होने के कारण उनकी कविताओं में देखी सुनी एवं भोगे हुए स्त्री जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति है। अपने समाज की स्त्रियों एवं लड़कियों के लिए कार्य करते वक्त उन्होंने जो महसूस किया वही अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। आदिवासी समाज की स्त्रियाँ सीधी-सादी एवं भोली-भाली हैं। ऊबड़-खाबड़ धरती के छल या कपटता को वे पहचान नहीं कर सकती हैं। उनकी आँखों के सामने जंगल के बिना और कोई दुनिया नहीं है। उन्हें अपने गोत्र समाज के लोगों से ही नहीं, बाहरी समाज या मुख्यधारा समाज के लोगों से ही पीडायेँ सहनी पडती हैं।

अपने घर गृहस्थी को संभालने के लिए आदिवासी स्त्री पुरुषों के साथ कठिन मेहनत वे करती हैं। अपने घर-भर के पेट की आग बुझाने के लिए चटाइयाँ, पंख, पत्तल एवं झाड़ू बनाना, खेतों में काम करना, जंगलों से सूखी लकड़ियाँ बीनकर बाज़ार में बेचना आदि कई तरह के कामों में वे व्यस्त हैं। फिर भी उनकी ज़िन्दगी में भयावह सूनापन है। 'पहाड़ी स्त्री' शीर्षक कविता में इसकी अभिव्यक्ति है। वे कहती हैं धान रोपती पहाड़ी स्त्री अपना पहाड़ सा दुःख रोप रही है। सुख की लहलहाती फसल पाना ही उनकी कामना है। यहाँ पहाड़ उनके जीवन की कठिनाइयों का पहाड़ है। उसे वह तोड़ रही है। स्त्री के संबंध में कहें तो उन्हें माँ की हैसियत भी निभाना है। इसकी ओर इशारा करते हुए कवयित्री कहती हैं एक चादर में बच्चे को पीठ पर लटकाये हुए वह काम कर रही है। कठिन से कठिनतम परिस्थितियों से जूझकर काम करने के बावजूद भी वह श्रममूलक शोषण का शिकार है। अपने काम के लिए उन्हें उचित मजूरी नहीं मिलती है। 'बाहामुनि' शीर्षक कविता में इसकी ओर संकेत करके कवयित्री लिखती हैं-

“तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हज़ारों
पर हज़ारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट”^{४३}

श्रममूलक शोषण का और एक उदाहरण 'ढेपचा के बाबू' कविता में मिलता है-

“भूले-भटके गर कभी कोई पैकार आता भी है
तो रुपये जोड़ा माँगता है पंखा
और सौ रुपये दर्जन चटाई
एक तो सब छोड़-छाड़ दिन-भर लगे रहो
उस पर भी गर पचास-साठ नहीं निकले
तो उसे करने से क्या फायदा?”^{४४}

आदिवासी बस्तियाँ अभाव ग्रस्त हैं। इनके जल, जंगल और ज़मीन पर दूसरों ने कब्जा कर लिया है तो ये जीवनयापन हेतु जंगल के बाहर दूर शहरों में जाने के लिए मज़बूर बन गये हैं। आदिवासी स्त्रियाँ भी उज्ज्वल भविष्य की कामना में अन्य देशों में

जाती हैं। वहाँ वे आर्थिक शोषण के साथ-साथ यौन शोषण का भी शिकार बन जाती हैं। 'चुडका सोरोन से' शीर्षक कविता में कवयित्री इस संदर्भ की अभिव्यक्ति करते हुए लिखती हैं।

“पिछले साल

धनकटनी में खाली पेट बंगाल गई पडोस की बुधनी

किसका पेट सजाकर लौटी है गाँव?”⁸⁴

‘ढेपचा के बाबू’ शीर्षक कविता में अभावग्रस्त ज़िंदगी से मुक्ति की कामना में बंगाल चली गयी सुगिया, मूंगली, बुधनी आदि युवतियों के जीवन प्रसंगों का वर्णन है।

आदिवासी लड़कियों की इस स्थिति के बारे में निर्मला पुतुल ने लिखा है- “छोटा नागपुर और सन्ताल परगना के अंचलों में प्रायः हर आदिवासी गाँव में ५-६ ऐसी आदिवासी लड़कियाँ ज़रूर मिल जाएँगी जो नाजायज बच्चा पैदा करने के अपराध में समाज से बहिष्कृत कर नरकीय जीवन जीने के लिए मज़बूर कर दी गई हैं। ये नाजायज बच्चे किसी प्रेम-प्रसंग के परिणाम नहीं होते। गरीबी और बेकारी की मार से बेबस हुई लड़कियाँ एवं महिलाओं को ईंट-भट्टों के ठेकेदार बहला फुसलाकर ले जाते हैं और हाडतोड़ मेहनत करवाने के साथ-साथ उन्हें अपनी और अपने कारिंदों की हवस का शिकार भी बनते हैं। बहुत सी आदिवासी मज़दूरियों को देह व्यापार के लिए ये ठेकेदार बेच भी देते हैं। ऐसी हज़ारों लड़कियाँ आज लापता हैं। जो घर लौटती हैं उनके पेट में होता है उन ठेकेदारों का नाजायज बच्चा जिन्में ये आदिवासी अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानते हैं। गहरी आत्मपीडा से ये छटपटाकर रह जाते हैं लेकिन न उनके खिलाफ कुछ नहीं कर सकते।”⁸⁵

बाहर से आनेवाले पुरुष शादी का ढोंग रचाकर स्त्रियों का शोषण करते हैं। एक या दो साल उसके साथ रहते हैं, और फिर कहीं गायब होते हैं। गोत्र समाज के लोग भी बाहर से आनेवाले दरिंदों के साथ देते हैं। वे लड़कियों को मोहजाल में फँसाकर ले जाते

हैं और आनंद भोगियों के हाथों में बेच देते हैं। इसी संदर्भ पर प्रकाश डालती हुई 'चुडका सोरेन से' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“उस दिलवार सिंह को मिलकर ढूँढो चुडका सोरेन
जो तुम्हारी की बस्ती की रीता कुजूर को
पढाने लिखाने का सपना दिखाकर दिल्ली ले भागा
और आनंद-भोगियों के हाथ बेच दिया
और हाँ पहचानो।
अपने ही बीच की उस कई-कई ऊँची सौन्दिलवाली
स्टेला कुजूर को भी
जो तुम्हारी भोली-भोली बहनों की आँखों में
सुनहरी ज़िन्दगी का ख्वाब दिखाकर
दिल्ली की आया बनानेवाली फैक्ट्रियों में
कर रहीं है कच्चे माल की तरह सप्लाई।”^{४७}

शहरी समाज के लोगों ने आदिवासी स्त्रियों को बिकाऊ चीज़ बना दी है। वे उन्हें कच्चे माल की तरह देखते हैं। 'एक सार्थक चीख के पहले की गहराती चुप्पी' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“हमारी बस्ती की
सोनामुनी और रसमुनी को
दिल्ली और उत्तरप्रदेश के
जनपदों में बेच रहा है।”^{४८}

आदिवासी औरतों के शोषण में शराब की बड़ी भूमिका है। आदिवासी युवतियों की लालच में बाहर से आनेवाले लोग आदिवासी बस्तियों को नशे में डुबोते रहते हैं। आदिवासियों के हाथों से बनाये हुए हडिया उन्हें ही पिलाकर वहाँ की स्त्रियों से ठिठोली करते हैं। अत्यधिक मद्यपान के कारण आर्थिक स्थिति भी बहुत खराब है। गाँव के प्रधान

भी एक बोतल विदेशी दारू के लिए पूरे गाँव को गिरवी रखने के लिए तैयार हो जाते हैं। 'चुडका सोरेन से' शीर्षक कविता में कवयित्री इसी संदर्भ पर प्रकाश डालती हैं-

“कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान
जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में रख देता है
पूरे गाँव को गिरवी
और ले जाता है कोई लकड़ियों के गट्ठर की तरह
लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को
हज़ार पाँच सौ हथेलियों पर रखकर।”^{४९}

आदिवासी स्त्रियाँ अपने घर में भी सुरक्षित नहीं हैं। 'सबसे डरावनी रात' कविता में शोषण की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति है। नौ महीने अपनी कोख में पालकर दुष्कर प्रसव पीड़ा सहकर जन्म देनेवाली माँ ही बोतल भर दारू और एक मुर्गे के लिए अपनी बेटी को दरिंदों के हाथों में देती है। उस राक्षसी रात में उसकी गुहार सुनने के लिए भी वहाँ कोई नहीं है। जिस माँ के आश्रय में बेटी सुरक्षित होना था वही माँ ही उसे आनंदभोगियों के हाथों में ड़ोंक देती है। यह बात हमारी संवेदना पर गहरी चोट पहुँचाती है। प्रस्तुत कविता में कवयित्री यों लिखती हैं-

“कैसे भूल जाऊँ वह राक्षसी रात
जिसमें दुनिया की सारी संवेदनाएँ
मेरा सबसे ऊँचा विश्वास
पवित्र रिश्ते की आस्था
सब कुछ लूट गया।”^{५०}

'स्वर्गवासी पिता के नाम पाती' शीर्षक कविता में पिता संरक्षक के रूप में हैं। कविता में लड़की को अपने पिता के प्रति गर्व है। पिता के मर जाने से उसके मन में असुरक्षा की भावना पैदा होती है। लेकिन 'आस पड़ोस के छोटे-भाइयों' शीर्षक कविता

में पिता अपने एक छोटे-से एहसान के बदले बेटी को दरिदों के हाथों में सौंप देते हैं। इसकी ओर संकेत करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“मूर्ख बापू ने तो कर दिया था मुझे उसके हवाले
और उस दुष्ट ने भी बापू के सीधेपन का लाभ उठा
माँ लिया था मुझे
बदले में एक छोटे से एहसान के”^{५१}

घर में भी बहू-बेटियाँ आज असुरक्षित महसूस करने लगीं। कभी-कभी सरकारी योजनाओं के नाम पर सरकार सेवक भी इन्हें लूट रहे हैं। पूरा डेढ साल इंदिरा आवास के लिए बहुत दौड़-भाग किए एक हताश औरत की अभिव्यक्ति करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“और ब्लाक के बड़े-बाबू का क्या बताएँ
ऐसी चीज़ माँगता है कि बताते भी शर्म आती है।”^{५२}

संरक्षण करनेवाले ही शोषण के लिए दरवाज़ा खुला दिया जाए तो स्त्री की इज्जत, मान मर्यादा और प्रतिष्ठा कहाँ तक संभव है? आदिवासी बस्तियों में स्त्रियों के इन यौन शोषणों के पीछे के कारणों के बारे में निर्मला पुतुल ने लिखा है- “दरअसल इन सब कारणों के पीछे यहाँ की भीषण भूखमरी और रोज़गार के पर्याप्त अवसर का न होना तो है साथ ही साथ यहाँ कि सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक स्थितियाँ भी इनके हित में नहीं हैं। इसी समुदाय का एक वर्ग तथाकथित दिक् बनकर आज की तारीख में शोषकों और पूँजीपतियों के साथ मिलकर इनका शोषण कर रहा है। यहाँ तक कि इन्हीं महिलाओं में एक सक्रिय वर्ग ऐसा भी है जो इन शोषक पुरुषों के साथ मिलकर अपने समुदाय की महिलाओं का शोषण करवाने में अहम् भूमिका निभा रहा है। बतौर एजेंट ऐसे पुरुष या महिला सरदार- सरदारिन कहलाते हैं। इसमें महिला सरदारिन की भूमिका ज़्यादा महत्वपूर्ण होती है क्योंकि आमतौर पर उनपर कोई संदेह नहीं होता। भट्टे के ठेकेदार और मुंशी जो प्रायः गैर आदिवासी होते हैं, वे प्रतिवर्ष महिला सरदारिनों के साथ

आदिवासी मज़दूरियों को फंसाने के लिए भारी जेब लेकर सुदूर आदिवासी अंचलों में जाते हैं और बस्ती के प्रधान को खिला-पिलाकर ऐसे गरीब मां-बाप को पटाते हैं जिनकी लड़कियाँ जवान और काम करने के लायक होती हैं। दो चार, पाँच-सौ उनकी हथेलियों पर रखकर काम देने के बहाने उन्हें अपनी गाड़ियों में लादकर ले जाते हैं। आदिवासी महिलाओं के यौन शोषण के संबंध में अगर गंभीरता से विचार करें तो शहर से सटे आदिवासी बस्तियों की शर्मनाक नजारों पर भी गौर करना होगा।”^{५३}

हर समय में पुरुष का दमनतंत्र का शिकार है नारी। घर में पति की दरिदंगी को भी उसे सहन करना पड़ता है। पति द्वारा मार-पीट से लेकर जानवाराण बलात्कार भी चुपचाप सहना पड़ता है। स्त्री पर अत्याचार बढ़ने का कारण उसकी चुप्पी ही है। स्त्री को भोग्या समझनेवाले समाज में शोषण एवं बलात्कार एक साधारण सी बात बन गई है। गली चौराहों में पकड़ाधारी एवं छेड़खानी खुले आम होते रहते हैं। ‘दामिनी’ शीर्षक कविता में नारी उत्पीड़न की अभिव्यक्ति है। जैसे-

“तुम्हारे बाद तो
थम ही नहीं रहा गैंगरेप
तेजाब फेंकने, दुष्कर्म कर हत्या कर देने
और उस साठ वर्षीय बूढ़े द्वारा
पाँच वर्षीय बच्ची का बलात्कार जैसी घटनाएँ
अब तूल पकड़ लिया है इन दिनों”^{५४}

आए दिन हैवानियत की ऐसी खबरों से अखबार रंगती रहती हैं। अब मानवता तो एकदम पशुता में बदल रही है। इसलिए ही ऐसी अनहोनी घटनाएँ निरंतर होती रहती हैं। स्त्री सुरक्षा के लिए योजनाएँ होते हुए भी उन्हें कहीं से कोई रक्षा न मिलती है। पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री होने की पीड़ा भोगनेवाली औरत सत्ता परिवर्तन चाहती है। ‘ईश्वर से स्त्रियों की माँग’ शीर्षक कविता में अगले जन्म में स्त्री जन्म न देने की प्रार्थना ईश्वर से करने के साथ-साथ पुरुष जन्म देने के लिए विनती भी करती है। पंक्तियाँ देखिए-

“सारे पुरुषों को अगले जन्म में स्त्री
और इस जन्म के स्त्री होने की पीडा
भोग रही स्त्रियों को
अगले जन्म से पुरुष बनाकर
पृथ्वी पर भेजा जाए।”^{५५}

पेट की भूख मिटाने के लिए अपनी देह बेचने के लिए आदिवासी स्त्री विवश है। कवयित्री की राय में पुरुष की मानसिकता ही इसके लिए ज़िम्मेदार है। ‘वेश्या’ शीर्षक कविता में इसकी ओर संकेत करती हुई वे लिखती हैं-

“वेश्यागिरी करती है
पुरुष की मानसिकता की वजह से
वेश्याएँ जब साँस लेती हैं
तो बदल जाता है हवा का रुख
पुरुष बनाता है स्त्री को वेश्या
वरना स्त्री वेश्या नहीं होती
वेश्या होने का मतलब
स्त्री होना नहीं है
और स्त्री होने का मतलब वेश्या होना नहीं है।”^{५६}

आदिवासी बस्तियों में पाये जानेवाले अंधविश्वास ही कभी-कभी स्त्री शोषण का कारण बन जाता है। स्त्रियों के द्वारा तीर-धनुष छूना, हल चलाना एवं छप्पर छाना इत्यादि की रोक, डायन करार देना आदि आदिवासी समाज में प्रचलित अंधविश्वास हैं। पिता की संपत्ति पर भी उन्हें कोई अधिकार नहीं। शिक्षा का अभाव एवं अंधविश्वास के प्रभाव के कारण ही स्त्रियों को तरह-तरह का शोषण सहना पड़ता है। आदिवासी स्त्री के जीवन संघर्षों को निर्मला पुतुल ने पूरी मानवीय संवेदना के साथ वाणी दी है। यह पाठक हृदय में गहरी चोट पहुँचाती भी है। मनुष्यता पर विश्वास रखनेवाली कवयित्री की सोच में स्त्री को मानव का दर्जा दिलाने की सोच है। इसलिए ही उन्होंने स्त्री जीवन के त्रासद क्षणों को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है।

६.४.८. आदिवासियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण

स्वतंत्र भारत के हर नागरिक को समानता का अधिकार प्राप्त है। नियम और कानून के सामने हक जताने का अधिकार भी सबको है। आदिवासी समाज की बात कहें तो उन्हें नागरिक का नहीं, मानव का दर्जा प्राप्त करना ही कठिन से कठिनतम हो गया है। यहाँ जातिगत या आर्थिक स्तर पर 'उच्च' कहे जानेवाले लोगों का वर्चस्व है। वे इन्हीं आदिवासियों को नकारात्मक नज़रिए से देखते हैं। आदिवासी समाज के लोग जंगल में रहनेवाले हैं और मुख्यधारा समाज से अलग अपनी एक संस्कृति, भाषा एवं जीवन तरीकों के भीतर जीनेवाले हैं। मुख्यधारा समाज की साजिशों ने इन्हें हमेशा दूसरे दर्जे में रखा है। इन्हें सभ्य समाज दूर हटा देता है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्तर में उन्हें कोई स्थान नहीं देता। 'अपने गाँव आई रिसर्च टीम से' नामक कविता में कवयित्री इन साजिशों का पोल खोलती हैं-

“पिछडा असभ्य जंगली
कहकर पुकार है हरदम
मूर्ख, गंवार, अनपढ जाहिल समझकर
धकियाया है
रोका है एक सुनिश्चित साजिश के तहत
मुख्यधारा में आने से हम।”^{५७}

सभ्य समाज के लोगों की दृष्टि में आदिवासी लोग मूर्ख, गंवार एवं अनपढ हैं। वे उन्हें घृणा करते हैं। उनके शरीर के कालेपन को भी वे नहीं पसंद करते हैं। आदिवासी समाज के पहनावा, ओढावा, रहन-सहन, चाल-चलन एवं रीति-रिवाज़ को बाहरी लोग नकारात्मक दृष्टि से देख रहे हैं। आदिवासियों के प्रति छुआछूत का सा आचरण करते हैं। उन्हें देखने पर व्यंग्य करते हैं एवं उनकी भाषा पर मज़ाक उड़ाते हैं। 'मेरा सबकुछ अप्रिय है उनकी नज़र में' कविता में आदिवासी समाज के प्रति सभ्य समाज का नकारात्मक दृष्टि की अभिव्यक्ति करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“जंगली, असभ्य, पिछडा कह
 हिकारत से देखते हैं हमें
 और अपने को सभ्य श्रेष्ठ समझ
 नकारते हैं हमारी चीज़ों को।”^{५८}

मुख्यधारा समाज की आँखों में अदिवासी समाज के लोग जंगली, असभ्य एवं पिछडे हैं। ‘धर्म के ठेकेदारों की ठेकेदारी’ शीर्षक कविता में आदिवासी समाज के प्रति तिरस्कार की भावना की अभिव्यक्ति है।

इस कविता में कवयित्री कहती हैं कि मुख्यधारा समाज के लोग इन्हें आदिवासी मानने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए ही वे इन्हें जनजाति या वनवासी नामों से पुकारते हैं। आदिवासी भारत के मूल निवासी होते हुए भी समाज और संस्कृति को न समझनेवाले लोग उन्हें जंगली, वनवासी, राक्षस आदि संज्ञाओं में अभिहित करते हैं। समय इसका गवाही है कि आदिम काल से लेकर आज तक वे अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश हैं। सरकार हो या मुख्यधारा समाज आदिवासी समाज के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार करते हुए नज़र आता है।

६.४.९. बाज़ार का वर्चस्व

आज का बाज़ार भूमंडलीकरण की देन है। पुराने बाज़ार में एक सामाजिकता और सामूहिकता की भावना है तो आज बाज़ार के केन्द्र में मुनाफा मात्र है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया की आड़ में चलनेवाली नव बाज़ार के सामने पूरे संसार को एकरूप बनाने का उपक्रम है। पूँजीवादी अस्तित्व का आधार बाज़ार है। बाज़ार के बढ़ते वर्चस्व का परिणाम स्वरूप विश्व के छोटे-छोटे जन समाज का अस्तित्व संकट के खतरे में है। आदिवासी समाज पर भी इसका असर बुरी तरह से हुआ है। वे बाज़ार से दूर रहना चाहे तो भी बाज़ार इनका पीछा कभी नहीं छोड़ता है। उनकी संस्कृति, चरित्र, एवं जीवन तरीकों में ही बाज़ार बदलाव लाया है। प्राकृतिक संसाधनों पर अपना अधिकार इन्हें नष्ट हुआ है।

आदिवासी लोग अपने ही घर के पिछवाड़े फले फलमूलों से वंचित हो रहे हैं। उनके हाथों से उगाए खीरा, ककड़ी भी बाज़ार की तरफ चले गये। इस पर कवयित्री लिखती हैं-

“अब आनेवाले वर्षों में ‘आम’ पर भी
हम आम आदमी का हक नहीं रह जाएगा
अब वह दिन दूर नहीं
हमारी जेब की पहुँच से बाहर होगा आम।
और सिर्फ उसका स्वाद हमारी
स्मृतियों में बसा होगा।”^{५९}

बाज़ार ने उनके भोजन-संस्कार को भी कब्जा कर लिया है। इसकी ओर संकेत करते हुए ‘जब टेबुल पर गुलदस्ते की जगह बेसलरी बोतलें सजती हैं’ शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“यह कहते हुए
शर्मिन्दा महसूस कर रही है
कि बाज़ार में घूमते
जब प्यास लगती है
तो पानी से ज़्यादा
पेप्सी और स्राइट की तलब होती है
पता नहीं कब
हमारी प्यास में घुस गया यह सब”^{६०}

सभा सम्मेलनों में चाहे वह आदिवासी अस्मिता के संबंध में हो, जल-जंगल और ज़मीन के संबंध में हो, देशज संस्कृति के संबंध में हो या बाज़ार के वर्चस्व के संबंध में हो वहाँ भी बोतल बंद पानी ने जगह बना लिया है। बाज़ार से गुज़रते वक्त एक गिलास पानी मिलना कठिन हो गया है। क्योंकि आज बाज़ार के सामने पानी भी बिकाऊ चीज़ बन गया है।

आदिवासी लोग अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति जंगल से करते थे। इन जंगलों का हक उनसे छीन लिया गया है तो उन्हें अपनी उदर पूर्ति या अन्य आवश्यकताओं के लिए बाज़ार की तरफ भागना पडा। इसने उनके चरित्र को भी बदल दिया। अपने संथाल परगना में आए परिणामों को लेकर कवयित्री आशंकित हैं। संथाल परगना तो अब संथाल परगना नहीं रह गया है। इन दिनों बाज़ार ने परगना को इतना आतंकित किया है कि वहाँ सब कुछ गडमड्ड हो गया है। आदिवासी समाज स्वावलंबी समाज है। कुटीर उद्योग करनेवाली वहाँ की महिलाएँ कठिन परिश्रम से कई चीज़ों का उत्पादन करती हैं। उत्पाद के बाद ये चीज़ें उनकी पहुँच के बाहर हैं। वे इतनी सीधी एवं भोली भाली हैं कि, वे नहीं जानती उनके हाथों से बनाए हुए ये चीज़ें कैसे पहुँच जाती हैं बड़े बड़े शहरों के बाज़ारों में। 'बाहामुनी' शीर्षक कविता में इसकी ओर संकेत है-

“जबकि तुम नहीं जानती कि तुम्हारी दुनिया जैसी
कई-कई दुनियाएँ शामिल हैं इस दुनिया में
नहीं जानती
कि किन हाथों से गुजरती
तुम्हारी चीज़ें पहुँच जाती हैं दिल्ली।”^{६१}

कठिन मेहनत करके बनायी हुई चीज़ों को लोग सस्ते दामों में खरीदकर ले जाते हैं। लेकिन जब बड़े-बड़े बाज़ार में ये चीज़ें पहुँचती हैं तब ये महंगी बन जाती हैं। भूमंडलीकरण पूरे विश्व को एक रूप बनाने की कोशिश में है। आज बाज़ार में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व है। इसके फलस्वरूप कुटीर उद्योग एकदम समाप्त हो रहा है। आदिवासियों के हाथों से बनानेवाले झाड़ू, पंखा, दातुन आदि चीज़ को कभी-कभी बाज़ार में कोई जगह नहीं है। इसकी ओर संकेत करते हुए कवयित्री लिखती हैं-

“दोना-पत्तल भी नहीं बिकता
और न ही लेता है कोई चर-चटाई
झाड़ू-पंखा, दातुन का भी बाज़ार नहीं रहा अब”^{६२}

आदिवासी इलाकों में बनायी जानेवाली ये चीज़ें आज के आधुनिक बाज़ार में मिसफिट है। अर्थात् आदिवासी समाज आधुनिक बाज़ार के अनुरूप नहीं रह गया है। आधुनिक बाज़ार सिर्फ पूँजीपतियों के लिए बन गया है।

६.४.१०. दमनतंत्र का शिकार

आदिवासी समाज के शोषण प्रक्रिया पर नज़र डाले तो यहाँ रक्षक ही भक्षक बन जाने की स्थिति देख पाते हैं। विकास के नाम पर सरकार की ओर से चलानेवाली कई योजनाएँ आदिवासी समाज के सत्यानाश का कारण बन जाती हैं। इन्हें चंद भलाइयों के लिए बहुत सारी बुराइयाँ सहनी पड़ती हैं। सरकार इन लोगों के लिए करोड़ों रुपये की योजनाएँ बनाती हैं। कभी-कभी इन योजनाओं से इन्हें कोई फायदा नहीं मिलता है। लेकिन इन योजनाओं के पीछे कार्यरत राजनीतिज्ञ एवं अन्य ठेकेदार फायदेतार बन जाते हैं।

आदिवासी समाज के पीछे कई साजिशें चल रही हैं। स्वतंत्रता के पश्चात इतने वर्ष बीत गये हैं, लेकिन आज भी आदिवासी समाज मुख्यधारा से कटा हुआ नज़र आता है। ज्यादातर आदिवासी इलाकों में बिजली, पानी, यातायात, स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसी आधारभूत सुविधायें आज भी नहीं हैं। भूख एवं बीमारी से लड़ने के लिए विवश बन गये हैं ये लोग। इन्हीं के वोटों से सत्ता पर आसीन राजनीतिज्ञ चुनाव के बाद इन्हें बोधपूर्वक भूल जाते हैं। 'आपके शहर में, आपके बीच रहते, आपके लिए' शीर्षक कविता में कवयित्री बुनियादी सुविधाओं से वंचित आदिवासी इलाकों की प्रतिनिधि बनकर बातें करना चाहती हैं। पंक्तियाँ हैं-

“मैं बात करना चाहती हूँ

अपने उस गाँव की, जहाँ आज तक बिजली नहीं पहुँची

सड़के नहीं पहुँची, और तो और जहाँ की महिलाएँ

आज भी कोस भर दूर झरनों से पानी ढोकर लाती है

और जिनके बच्चे बगाली के नाम पर

वर्षों से महाजन के पास गिरवी पडे हैं।

अफसोस!"^{६३}

जनता को वंचित रखनेवाली ऐसी शासनव्यवस्था पर कवयित्री को कोई विश्वास नहीं है। सत्ता की कुर्सी पर विराजित होकर ये जनता को लूट रहे हैं, तब कवयित्री को ऐसा कहना पडता है-

“अंग्रेजों के अप्रत्यक्ष उत्तराधिकारी अभी भी

अपनी मानसिकता के साथ सक्रिय हैं सिद्धों - कान्हू”^{६४}

आदिवासियों के जीवन यापन का केन्द्र जंगल है। लेकिन आज विदेशी कंपनियों एवं बड़े-बड़े उद्योगपतियों ने इनकी भूमि का अधिग्रहण कर लिया है। सरकार की साजिशें ही इनके पीछे कार्यरत हैं। अपनी ज़मीन से उन को भगानेवाले इन साजिशों की अभिव्यक्ति करते हुए ‘एक सार्थक चीख के पहले की गहराती चुप्पी’ शीर्षक कविता में निर्मला पुतुल लिखती हैं-

“हमारी सरकार हमसे

हमारी ज़मीन छीनकर

विदेशी कंपनियों को उपलब्ध करा रही है”^{६५}

सरकार एवं उनके ठेकेदारों द्वारा आदिवासी जल-जंगल और ज़मीन को अपने अधीन में रखने की वजह से बेरोज़गारी की समस्या आदिवासी इलाकों में बढ गई है। इसलिए आदिवासी लोग अपने जंगल से पलायन करने के लिए मज़बूर बन गये हैं। इन्हें पलायन से रोकना एवं रोज़गार देने के उद्देश्य से सरकार द्वारा कई योजनाएँ बनायी गयी हैं। लेकिन आदिवासी जनों को इन रोज़गार योजनाओं से उचित फायदा नहीं मिलता है। कविता की पंक्तियाँ हैं-

“रोज़गार गारंटी, योजना के तहत

हमें जाँब कार्ड मिला

पर काम नहीं मिल रहा है।”^{६६}

आदिवासी इलाकों की गरीबी एवं अन्य वारदातों को मिटाने के लिए सरकार की ओर से जो घोषणाएँ हुई हैं। उनमें से ज़्यादातर झूठी घोषणा सिद्ध हुई हैं। कभी -कभी प्राकृतिक आपदायें भी इनके जीवन को दुष्कर बना देती हैं। इन प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित लोगों के लिए उचित क्षतिपूर्ति की घोषणा तो सरकार करती है। मुआवज़े के लिए अपना नाम दर्ज करने के बाद वे लोग इनका इंतज़ार करते रहते हैं। इंतज़ार इंतज़ार ही बने रहता है। 'अभी चुप रहा विधान सभा में बाढ़ आयी है' कविता में बाढ़ से प्रभावित, मुआवज़े के इंतज़ार में रहनेवाले आदिवासी लोगों की ओर संकेत करती है-

“अभी इस बात पर बात मत करो
कि देखो विधानसभा में बाढ़ आई हुई है
सरकार को डूबने से बचाने दो
सुना नहीं अभी-अभी मंत्री जी ने क्या कहा
अगर सरकार बच गई तो
तुम्हें डूबने से बचा देगी।”^{६७}

देश में महंगाई एक विकराल समस्या का रूप धारण कर लिया है। वस्तुओं की मूल्य बढ़ोत्तरी ने जनता की कमर तोड़ दी है। बढ़ती हुई महंगाई के कारण ज़्यादातर लोग आर्थिक तंगी के शिकार हैं। सरकार की गलत आर्थिक नीति ने महंगाई को बढ़ाने में अहं भूमिका अदा की है। 'झारखंड का सच' शीर्षक कविता में दैनिक जीवन की वस्तुओं के मूल्य बढ़ोत्तरी के कारण पिसनेवाली जनता एवं निष्क्रिय सरकार का चित्रण है। कवयित्री बताती हैं-

“कहीं महंगाई की मार से जनता की कमर झुक रही है
तो कहीं सरकार अपनी झूठी उपलब्धियाँ गिनाकर
अपनी पीठ थप थपा रही है।”^{६८}

सरकार की अपनी झूठी उपलब्धियाँ गिनने के पीछे कुर्सी पर अडिग रहने की लालसा है। जनतंत्र समाज में कोई सरकार बनाने की बात करता है तो कोई किसी न

किसी प्रकार सरकार को गिराने की बातें कर रहा है। इन दोनों दलों के बीच जनता पिस रही है। एक तो सत्ता बनाये रखने की लालसा में है तो प्रतिपक्षी दल सत्ता पाने की लालसा में है। क्योंकि राजनीतिक दलों के नेताओं को अपनी नेतागिरि चलाने के लिए सत्तारूढ़ होना अनिवार्य है। इसकी ओर संकेत करते हुए 'कुर्सी' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं-

“कुर्सियाँ होती हैं बहुत महत्वपूर्ण
कुर्सियाँ है तभी देश चलता है और
तभी चलती, है नेताओं की नेता गिरी
कुर्सी ही तो है जिसके केन्द्र में घूमती है
देश की राजनीति और उसके प्रभाव से
गिरता-उतरता है देश का तापमान।”^{६९}

सरकारी योजनायें जनता तक पहुँचाने में बहुत कठिनाइयाँ हैं। मेहनत मजूरी कर घर चलानेवाली आदिवासी जनता को विभिन्न योजनाओं के नाम पर, सरकारी सेवक लूट रहे हैं। उनकी स्त्रियों पर अत्याचार भी कर रहा है। सरकार ये सब जानते हुए भी चुप है। फायदा नहीं होते हुए भी सरकार द्वारा लागू की गयी इन्हीं योजनाओं के पीछे दौड़-भाग करने के लिए विवश आदिवासी जनता की अभिव्यक्ति करते हुए 'ढेपचा के बाबू' शीर्षक कविता में निर्मला पुतुल लिखती हैं-

“इन्दिरा आवास के लिए बहुत दौड़-भाग की
पंचायत सेवक को मुर्गों भी दिया
प्रधान को भी दिया पचास टका
पर अभी तक कुछ नहीं हुआ
पूरा डेढ साल हो गया।”^{७०}

ऐसे-ऐसे कई मामलों से जनता जूझी है तो भी सरकार और उनके स्तुतिपाठक अपनी रोटी और कुर्सी बचाने के खातिर चुप हैं। सरकार की सोची-समझी साजिशों के शिकार

होने पर भी सवाल करने का अधिकार जनता को नहीं। उनसे असहमति प्रकट करने का अधिकार भी नहीं। जनतंत्र का असली अर्थ न समझनेवाले ये सत्ताधारी लोग जनता से कोसों दूर पर हैं।

६.४.११. निष्कर्ष

आदिवासी इलाकों की तमाम समस्याओं के पीछे बाहरी घुसौटिए हैं। ये इनके जल, जंगल और ज़मीन को ही नहीं, इनकी भाषा, संस्कृति एवं इनकी जीवन शैलियों को भी विकृत बना रहे हैं। एक समाज सेविका होने के नाते अपने समाज के लोगों से निरंतर संपर्क में आने के कारण इन अमानवीय प्रवृत्तियाँ कवयित्री की संवेदना पर गहरी चोट पहुँचाती हैं। जो मानवीय संवेदना को बनाये रखने के लिए इच्छुक हैं वे ऐसी दरिंदगी को देखने पर हमेशा असहमती प्रकट करेंगे, निश्चय ही इसके विरुद्ध आवाज़ उठायेंगे। निर्मला पुतुल अपनी कविताओं के माध्यम से शोषितों के प्रति जितनी करुणा या सहानुभूति प्रकट करती हैं, उससे ही दुगुना विरोध प्रदर्शन शोषकों से करते हुए उनके मर्म पर प्रहार करने के लिए नहीं भूलतीं। उन्होंने अपनी कविताओं में आदिवासी जीवन का यथार्थ चित्र खींच रखा है और चौतरफा शोषण का शिकार बनकर पिसनेवाली आदिवासी जनता के पक्ष में खड़े होकर सामाजिकता का आह्वान करती हैं। ये पंक्तियाँ अत्यंत मार्मिक हैं-

“मैं चाहती हूँ
 आँख रहते अंधे आदमी की
 आँखें बने मेरे शब्द
 उनकी जुवान बने
 जो जुवान रहते गूँगे बने देख रहे है तमाशा
 चाहती हूँ मैं
 नगाडे की तरह बजे
 मेरे शब्द
 और निकल पडें लोग
 अपने-अपने घरों से सडकों पर।”^{७१}

संदर्भ सूची

१. सं. रमणिका गुप्ता -आदिवासी अस्मिता की पडताल करते साक्षात्कार,पृ.सं.९१.
२. सं. रमणिका गुप्ता -आदिवासी अस्मिता की पडताल करते साक्षात्कार,पृ.सं.८८-८९.
३. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.४४.
४. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.४६
५. प्रेमप्रकाश - ग्लोबल गाँव के देवता और किस्सागो में चित्रित आदिवासी समाज,पृ.सं.५६.
६. रमणिका गुप्ता - आदिवासी विकास से विस्थापन, पृ.सं.१२.
७. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.४०.
८. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.५३.
९. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.८५.
१०. रमणिका गुप्ता - आदिवासी विकास से विस्थापन, पृ.सं.७.
११. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.७७.
१२. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.३१.
१३. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.१४.
१४. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.५०.
१५. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.९२.
१६. रमणिका गुप्ता - आदिवासी अस्मिता का संकट, पृ.सं.८६.
१७. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.१५.
१८. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.२७.
१९. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.३८.
२०. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.७६.
२१. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.६५.
२२. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.६६.
२३. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.१९.
२४. रमणिका गुप्ता - आदिवासी विकास से विस्थापन, पृ.सं.१२.
२५. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.२७.

२६. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.४६.
२७. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.७८-७९.
२८. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.१२.
२९. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.४४.
३०. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.२१.
३१. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.५३.
३२. (सं) रमणिका गुप्त - आदिवासी कौन, पृ.सं.६८.
३३. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.२४.
३४. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.४४.
३५. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.४२.
३६. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.७२
३७. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.८.
३८. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.९.
३९. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.१०४.
४०. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.३०.
४१. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.२८-२९
४२. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.५६.
४३. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.१२.
४४. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.४४-४५.
४५. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.२१.
४६. डॉ. विनायक तुमराम - निर्मला पुतुल और वाहरु सोनवणे की आदिवासी कविताएँ : तुलनात्मक अध्ययन, पृ.सं.३-४.
४७. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.२१.
४८. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.५३.
४९. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.२०.
५०. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं.१४
५१. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.७४.

५२. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.४४.
५३. डॉ. विनायक तुमराम - निर्मला पुतुल और वावरु आदिवासी कविताएँ : तुलनात्मक अध्ययन, पृ.सं.३४४.
५४. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.८७.
५५. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.७०.
५६. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.२४.
५७. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ.सं., पृ.सं.९३.
५८. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.७२.
५९. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.६४.
६०. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.६५.
६१. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.१२-१३.
६२. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.४४.
६३. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.४७.
६४. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.५१.
६५. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.५३.
६६. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.५३.
६७. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.५८.
६८. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.८५.
६९. निर्मला पुतुल - बेघर सपने, पृ.सं., पृ.सं.२८.
७०. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.४३.
७१. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.९३.

सातवाँ अध्याय
उपसंहार

भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति साहित्य है। विश्व के हरेक साहित्य में तद्युगीन समाज का अंकन देखने को मिलता है। चाहे कोई भी विषय सामाजिक हो, राजनीतिक हो, धार्मिक हो, आर्थिक हो, सांस्कृतिक हो साहित्य का विषय बन जाता है। साहित्य की विधाओं में कविता सर्वाधिक संवेदनशील विधा है। साहित्य के आरंभ से लेकर आज तक कविता जनता की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करती आयी है। सामाजिक जीवन को गतिशील बनाने का सशक्त माध्यम है कविता।

हिंदी कविता अपने आरंभ से लेकर आज तक अनेक आंदोलनों से गुज़री है। समय एवं परिवेश के अनुसार हिंदी कविता में कई परिवर्तन हुए हैं। आधुनिक हिंदी कविता का आरंभ भारतेंदु युग से माना जाता है। सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों को लेकर लिखी गयी भारतेंदु युगीन कविता में सामान्य-जन जीवन की स्थितियों का अंकन है। भारतेंदु युग हो या द्विवेद्वी युग, कविता अपनी आदर्श मूलक भावना से संपन्न रही थी। कविता में देशप्रेम की भावना सक्रिय रही। आधुनिक बोध की दृष्टि से छायावादी कविता अपने उत्कर्ष में थी। पाश्चात्य साहित्य के 'रोमांटिसिज़्म' की भावना से कविता काफी प्रभावित थी। प्रकृति में मानवीय चेतना का आरोप एवं मानवतावाद की प्रतिष्ठा का संकल्प इस युग की खासियत है।

छायावादी युग के बाद के कवि व्यक्ति चेतना, राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक चेतना को लेकर कवितायें लिखने लगे। व्यक्ति चेतना के पीछे चले गए कवियों ने यौवन की मस्ती एवं प्रेम की तीव्रता को अभिव्यक्त किया तो राष्ट्रीय चेतना पर बल देनेवाले कवियों ने

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक संदर्भों को अभिव्यक्त किया था। प्रगतिवादी कवियों ने अपने काव्य में नवीन सामाजिक मूल्यों का आग्रह किया। ईश्वर, धर्म एवं आस्था के विरोध करनेवाले ये कवि शोषितों के प्रति सर्वथा संवेदनशील रहे हैं। वस्तु और शिल्प की दृष्टि से नये-नये प्रयोगों को लेकर आयी प्रयोगवादी कविता दूसरे सप्तक के प्रकाशन के साथ नई कविता नाम से जानने लगी, यूरोपीय साहित्य के विभिन्न वादों से प्रभावित नई कविता में पूर्ववर्ती साहित्य की अपेक्षा व्यापक परिवर्तन हुए। नई कविता के बाद कई काव्यांदोलन हुए, पर वे अधिक समय तक टिक नहीं पाए।

सत्तर के बाद समकालीन कविता का दौर आया। समकालीनता शब्द से वर्तमान बोध को ही अभिहित किया जाता है। समकालीन कविता के आरंभ के संबंध में विभिन्न मत-भेद होते हुए भी निश्चय ही वह आधुनिक युग की विशिष्ट काव्यधारा है। समकालीन कविता मानव केन्द्रित है। वह अपने आस पास की ज़िंदगी का दस्तावेज़ है। स्वतंत्रता के बाद की मोहभंग की स्थिति, सांप्रदायिकता एवं आतंकवाद की बढ़ोत्तरी, बिगड़ी हुई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ आदि समकालीन कविता के विषय बने। तत्कालीन व्यवस्था की मार से दमित-पीड़ित सामान्य जनता की आवाज़ बन गई है समकालीन कविता। इसमें सामाजिक यथार्थ ही देख पाते हैं।

समकालीन कविता का भावसंसार व्यापक और विस्तृत है। समाज का या आसपास का कोई भी विषय कविता का आधार बन जाता है। भ्रष्ट राजनीति, अमानवीय व्यवस्था, बाज़ारवाद, सांस्कृतिक संकट, मीडियाई अपसंस्कृति, मूल्य क्षरण, हाशिए कृत दलित एवं आदिवासी, पुरुष सत्ता से प्रताड़ित नारी, बेबस बच्चे एवं बुजुर्ग, खेतिहीन किसान, मेहनतकश आम आदमी, विनष्ट पर्यावरण, बदलते रिश्ते और टूटते परिवार, धर्म एवं जातिगत भेदभाव से उत्पन्न अराजकता, शासक वर्गों का मनमानेपन हाशियेकृत समाज आदि सभी सामाजिक विषय समकालीन कविता का विषय रहे हैं।

भारतीय काव्य के इतिहास को परखें तो हमें एक बात ज्ञात होता है कि उसमें संवेदनाओं को काफी स्थान मिला है। वैदिक काल से लेकर काव्य में यह संवेदना देख पाते हैं। प्रणय केली में मग्न क्रींच मिथुनों में एक का वध देखने पर आदिकवि के मुँह से करुणा का स्वर उमड पडा था। उसी प्रकार महाभारत में भी मानव कल्याण की भावना है। आगे चलें तो संतों की वाणी में भी परपीडा की अभिव्यक्ति है। कबीर हो, सूरदास हो या तुलसीदास उनकी वाणियों में मानव कल्याण एवं समाज कल्याण की भावना निहित है।

समाज के विकास के साथ-साथ कविता का भी विकास होने लगा। सामाजिक मूल्यों में कई तरह के बदलाव आए। मानव कल्याण की भावना में क्षरण होने लगा। निजी स्वार्थ की पूर्ति की दौड में परदुःखकातरता कहीं गायब हो गई। मानवीय संवेदनाओं का हास होने लगा। मनुष्य को मनुष्य के रूप में समझना ही मानवीय संवेदना का आधार है। आधुनिकता को हासिल करने की अंधी दौड के बीच में मानवीय एवं मानवीय संवेदना कहीं कम हो गयी। दुनिया भर के लोगों के बीच में अमानवीय व्यवहार बढने लगा। हिंसा, लूटपाट, मारपीट आदि के जाल में फँसकर जनता दम घुटने लगी। यह सब देखने पर समकालीन दौर के संवेदनशील कवि जाग्रत हो उठे। वे अपनी कविताओं में दुनिया में व्याप्त अमानवीय व्यवहारों का अंकन करके पाठकों को संवेदनशील बनाने की कोशिश में लगे रहे।

उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल समकालीन दौर के ऐसे कवि हैं, जिनकी कविता में समकालीन समाज में व्याप्त चिंताएँ देखने को मिलती हैं। ये चारों कवि भारत के चार राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। फिर भी इनकी वाणियों में कई बातों में एकरूपता एवं समानता है। क्योंकि वर्तमान दौर के अमानवीय माहौल से कोई भी प्रदेश मुक्त नहीं है। अपनी कविताओं में समय और समाज की भयावहता का अंकन करके आम जनता के प्रति वे संवेदनशील बन जाते हैं और मानवीय संवेदना को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

समकालीन कविता में उदय प्रकाश एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। 'सुनो कारीगर' (१९८०), 'अबूतर-कबूतर' (१९८४) 'रात में हारमोनियम' (१९९८), 'एक भाषा हुआ करती है' (२००८) और 'अंबर में अबाबील' आदि आपके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। वर्तमान शोषण व्यवस्था से पिसकर दम घुटनेवाले आम आदमी ही उनकी कविताओं के केन्द्र में है। उनकी कविता का भावपक्ष इतना व्यापक और विशाल है कि उनमें सामाजिक विसंगतियाँ, खोखली राजनीति, भ्रष्ट शासन व्यवस्था, जाति, धर्म एवं लिंग से जुड़े अन्याय आदि से लेकर समाज की जटिल समस्याओं का अंकन है।

उदय प्रकाश हमेशा श्रमशील जीवन या मज़दूर के पक्षधर रहे हैं। 'सुनो कारीगर', 'डुमारत', 'पूरी ताकत से', 'अनुकूल जंक्शन', 'हालचाल', 'पिता', 'सुराही', 'सरकार', 'गैम सैंकचुरी' आदि कविताओं में मेहनतकश वर्ग के प्रति कवि ने संवेदना प्रकट की है। उत्तराधुनिक यथार्थ में जीनेवाली नारी अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है। 'औरतें', 'तपस्या', 'परदा', 'पंचनामे में जो दर्ज नहीं', 'मालिक आप नाहक नाराज़ है', 'बढई की लड़की', 'कवि की पीड़ित खुफिया आँखें', 'वसंत की धूप में महिला', 'मूँगफली और कुछ लोग', 'एक अलग सा मंगलवार', 'सफल चुप्पी', 'चंकी पांडे मुकर गया हैं' आदि कविताओं में पीड़ित-शोषित नारी जीवन का अंकन है। औपनिवेशिक शक्तियों को आर्थिक लाभ पहुँचाने के उद्देश्य में चलनेवाले बाज़ारीकरण की जटिलताओं में भी कवि ने नज़र डाली है। 'तीली', '६ दिसंबर उन्नीस सौ बयानब्बे', 'आग', ध्रुवपद', 'क', आदि कविताओं में धर्म का मुखौटा पहनकर आनेवाली सांप्रदायिकता का धिनौना चेहरा व्यक्त करते हैं। भारतीय ग्रामीण संस्कृति एवं कृषक क्रंदन के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करनेवाले कवि किसानों को अपने हक और न्याय के लिए आवाज़ उठाने की प्रेरणा देते हैं। प्रकृति और मनुष्य के बीच के अटूट संबंध पर बल देनेवाले कवि प्रकृति पर पड़नेवाले प्रहारों से दुःखी हैं। औद्योगिक क्रांति एवं विज्ञान के विकास ने प्रकृति पर गहरी क्षति पहुँचा दी है। भोपाल गैस-कांड पर आधारित कविता 'भीमसेन जोशी प्रसंग १९८४' मात्र पर्यावरण

प्रदूषण की ओर ही नहीं, बल्कि सत्ता की नृशंसता की ओर भी इशारा करती है। मानवीय स्थिति को कविता में उजागर करने के लिए उन्होंने पक्षी, सुअर, पेड़, हिरण, पिंजड़ा आदि अनेक बिंबों एवं प्रतीकों को प्रकृति से ही चुन लिया है।

लोकतांत्रिक प्रणाली से सत्ता पर आसीन शासक वर्ग साधारण जनता से कोसों दूर हैं। कभी-कभी शासक द्वारा ही जनता शोषण का शिकार बन जाती है। शासकों द्वारा अपनाये गये शोषण की नीतियाँ को 'सुअर' शीर्षक की पाँच कविताएँ, 'चौथा शेर', 'राज्यसत्ता', 'मदारी का खेल', 'तानाशाह की खोज', 'दो हाथियों की लड़ाई' आदि कविताओं में देख पाते हैं। 'कौए और लेखक का दिल्ली में देहांत' कविता में भ्रष्टाचार का पर्दाफाश है, तो 'सरकारी कोयल' नामक कविता में सरकार के चापलूसों पर व्यंग्य है। कवि उदय प्रकाश ने हमारी न्याय व्यवस्था में व्याप्त अन्याय एवं झूठी गवाहियों का चित्रण करके हमें जागरूक करने की कोशिश की है। आज कला एवं साहित्य भी सत्ताधारी वर्ग का मोहताज हो गया है। सरकार या सत्ताधारियों का चापलूस बनकर पुरस्कारों के पीछे चलनेवाले कलाकार एवं साहित्यकारों पर कवि व्यंग्य करते हैं। समाज में व्याप्त बेरोज़गारी, बढ़ती हुई गरीबी एवं भूखमरी पर भी कवि ने नज़र डाला है। 'दिल्ली', 'ढेला', 'और पत्ते गिर रहे हैं', 'इस तरह लगातार', 'किसका शव' आदि कविताओं में महानगरीय जीवन का अकेलापन, स्वार्थता, ऊब एवं निराशा का वर्णन है।

नवउपनिवेशवादी भूमंडलीकृत दुनिया में हमारे रीति-रिवाज़, जीवन-तरीके, संस्कृति, सभ्यता ये सब बदल रहे हैं। हमारी भाषा का अस्तित्व भी खतरे में है। समाज के ज्वलंत यथार्थ को देखकर कवि उदय प्रकाश निराश हैं। वे कहते हैं कि आज गाँव में खेत, पेड़ों में घोंसले, शहर में हवा, अखबारों में सच्चाई, प्रशासन में मनुष्यता, राजनीति में नैतिकता और दाल में हल्दी की मात्रा घटती रहती है। इसलिए हमें इन्हें बचाया जाना चाहिए। समाजोन्मुखता पर बल देनेवाले कवि उदय प्रकाश की कविताओं में समाज के सर्वार्थों से संपृक्ति है।

पुतली में पूरे संसार को समेटनेवाले कवि अरुण कमल समकालीन कविता के क्षेत्र में अलग पहचान रखते हैं। 'अपनी केवलधार' (१९८०) 'सबूत' (१९८९) 'नये इलाके में' (१९९६) 'पुतली में संसार' (२००४) 'मैं वो शंख महाशंख' (२०१२) 'योगफल' (२०१९) आदि आपके प्रमुख काव्यसंग्रह हैं। उन्होंने अपनी कविताओं को आमजनता की ज़िंदगी से जोड़ा है। तत्कालीन बिगड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था में पूँजिपतियों एवं सत्ताधारियों का वर्चस्व चल रहा है। फलस्वरूप मेहनतकश आम जनता अभाव, गरीबी, भूख, बेरोज़गारी एवं अन्य शोषणों से त्रस्त है। उनकी कविताओं में आम आदमी का जीवन यथार्थ, मेहनतकश वर्ग की अंतर्वेदना, बच्चों की बेचैनियाँ, स्त्री जीवन की यातनाएँ, सामाजिक असुरक्षा, सांप्रदायिक विकलता, मीडियाई अपसंस्कृति, बाज़ारवादी अपसंस्कृति, मूल्य विघटन, सरकारी विद्रूपताये, विज्ञान की विभीषिकाएँ, बिगडता लोकतंत्र आदि कई मुद्दों को उजागर किया है। उनकी कविताएँ समय और समाज के यथार्थ को अच्छी तरह से पहचानती हैं। 'पुराना सवाल' कविता में एक एक कर उजड़े गये गाँव का चित्रण है, तो 'असंवैधानिक मौत', 'होटल', 'कविता २०१३', वृद्धि, मुक्ति आदि कविताओं में भूख, अभाव एवं गरीबी का चित्रण है।

देश के नवनिर्माण के लिए खून-पसीना बहानेवाले मज़दूर सत्ता की आँखों से ओझल हैं, लेकिन कवि की आँखों से नहीं। ज़िंदगी गुज़ारने के लिए अपने गाँव एवं परिवार को छोड़कर जाने के लिए विवश 'यात्रा' कविता का निहाल सिंह बिगडी हुई नई अर्थ व्यवस्था का शिकार है। 'खुशबू रचते हैं हाथ', 'डोर', 'फरमाइश' 'छोटी दुनिया', 'असंवैधानिक मौत', 'वास', 'रात का ढाबा', 'इच्छा थी', 'हम यहीं रहता है', 'एक रात की टंडक', 'आत्मकथ्य', 'मातृभूमि', 'दाना' आदि कविताओं में मेहनतकश वर्ग की अंतर्वेदना, तथा आम आदमी की अभावग्रस्त ज़िन्दगी का पूरा ब्योरा हमें मिल जाता है।

परिवार का गरीब होना, अनाथ होना आदि कई कारणों से बाल मज़दूरी बढ़ रही है। 'होटल', 'अहिंसा और भीख माँगते बच्चे', 'दोस्त', 'भेंडाघाट', 'पृथ्वी किसलिए

घूमती रही', 'रात के दो बजे', 'घर भी उतनी ही दूर जितना कब्रिस्तान' आदि कविताओं में पढ़ने लिखने के उम्र में काम करने के लिए विवश होकर भूख एवं बीमारी से तड़पनेवाले बच्चों पर कवि अरुण कमल ने नज़र डाली है। अरुण कमल की कविताओं ने स्त्री जीवन के प्रति सशक्त दृष्टिकोण अपनाया है। पुरुष सत्तात्मक समाज का शिकार होकर जीनेवाली औरतों की दयनीय दशा का चित्रण करनेवाली कविताएँ हैं 'ओह बेचारी कुबडी बुढिया', 'कल्याणी', 'दरज़िन', 'डेली पैसेन्ज़र' आदि। हिंसा, लूट-पाट, आतंक, युद्ध, मारपीट आदि से जनता त्रस्त है। अपने घर के अंदर भी आज व्यक्ति सुरक्षित नहीं। अपने समय के तमाम संघर्ष पर निगाह डालकर समाचारों को वास्तविकता से प्रस्तुत करना मीडिया का धर्म है। लेकिन आज मीडिया पूँजीपतियों, सत्ताधारियों एवं शासक वर्गों के हाथों की कठपुतली बन गयी है। 'खबर', 'कविता-२०१३', 'हाथ', 'तुम चुप क्यों हो', 'रोटी को रोटी', 'सूर्यग्रहण' आदि कविताओं में जनसंचार माध्यमों की अपसंस्कृति का अंकन है।

भूमंडलीकृत दुनिया की बाज़ारू संस्कृति ढोनेवाले समाज में मूल्यों का विघटन हो रहा है। 'दुर्दिन के मज़े', 'स्थिति', 'वृत्तांत', 'बात', 'श्राद्ध का अन्न', 'ऐसा क्यों हो रहा है' आदि कविताओं में अर्थ केन्द्रित एवं आत्म केन्द्रित मानव के प्रति अरुण कमल अपना दुःख प्रकट करते हैं। विज्ञान के विध्वंसक प्रभाव का शिकार होकर प्रकृति आज क्षति की कगार पर खड़ी है। 'गंगा को प्यार', 'रेल में बात', 'नदी और नाला', 'सुख', 'उम्मीद' आदि कविताओं में प्रकृति का विनाश एवं जल प्रदूषण की समस्याओं का अंकन है। जनसंगठनों को किसी न किसी प्रकार दबाकर सत्ता पर अडिग रहनेवाली सरकार की स्वार्थी मानसिकता एवं विद्रूपताओं का भी पर्दाफाश वे करते हैं। ग्रामीण जीवन और ग्रामीण चेतना से संबद्ध कवि अरुण कमल की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है ग्रामोन्मुखता। निश्चय ही जनमुक्ति के प्रति सचेत कवि अरुण कमल की कविताएँ समकालीन कविता की संवेदना को बहुआयामी बनाती हैं।

स्त्रीवाद के सीमित दायरे के बाहर समस्त मानव जाति पर चिंता करनेवाली कवयित्री हैं कात्यायनी। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विषयों से जुड़ी रहनेवाली कवयित्री समकालीन कविता के क्षेत्र में विशेष पहचान रखती हैं। 'सात भाइयों के बीच चंपा' (१९९४), 'इस पौरुषपूर्ण समय में' (१९९९), 'जादू नहीं कविता' (२००२) 'राख अंधेरे की बारिश में' (१९९७) 'फुटपाथ पर कुर्सी' (२००९) 'एक कुहरा पारभासी' आदि आपके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। उदय प्रकाश और अरुण कमल की तरह कात्यायनी की कविताओं के केन्द्र में भी आम आदमी ही है। समाज के अंधेरे कोने में पडकर जीने के लिए विवश आम आदमी बुनियादी ज़रूरतों से वंचित है। किसान, श्रमिक, मज़दूर एवं अन्य मेहनतकश वर्ग दिन रात कठिन मेहनत करने पर भी उन्हें उचित वेतन नहीं मिलता है। स्थानंतरित या विस्थापित होने के लिए भी ये विवश हैं। 'सदी के अंत में पूर्वजों का आवाहन', 'हमारे समय में कुछ काव्य-विस्मृत शब्द और क्रियाएँ', '१९८०-२००८ एक यात्रा वर्णन', 'कहाँ है शब्दकोशों से बहिष्कृत शब्द' आदि कविताओं में कवयित्री मेहनतकश वर्ग की ज़िन्दगी का यथार्थ पेश किया है।

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विसंगतियाँ, बाल मज़दूरी, गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा, नई बाज़ारवादी अपसंस्कृति, पारिवारिक और सामाजिक, संबंधों में तनाव, पीडा आदि को लेकर कवयित्री बैचैन हैं। राजनीति से जुड़े रहने के कारण कात्यायनी राजनीतिक विसंगतियों से काफी परिचित हैं। इनकी कविताओं में राजनीति में व्याप्त चाटूकारिता की प्रवृत्तियाँ, फासीवादी ताकतों का वर्चस्व, राजनीति में व्याप्त हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ, शासकवर्ग या राजनीतिज्ञों का मनमानेपन आदि का चित्रण है। 'दिल्ली पर एक कविता' 'गुजरात २००७,' '२००८', '२०१४ कुछ इमप्रेसिन्स,' 'भगतसिंह के लिए एक गद्यात्मक संबोध - गीति', 'प्राम्पटर की कविता' आदि कविताओं में दूषित राजनीति का अंकन है। सरकारी चाटूकारों की संख्या आज ज़्यादा है। कविगण हो, साहित्यकार हो, या अन्य कोई समाज सुधारक हो, किसी न किसी प्रकार 'सरकार का आदमी'

बनना चाहते हैं। सरकार द्वारा आयोजित पुरस्कार एवं अन्य सुविधायें पाना ही उनका लक्ष्य है। 'सुसंस्कृत भद्र और ज़िम्मेदाराना विचार' शीर्षक कविता में इनके प्रति वे व्यंग्य करती हैं।

अपराध की वारदातें बढ़ने पर भी चुपचाप सब कुछ सहनेवाले प्रतिक्रियाविहीन समाज पर सहानुभूति प्रकट करनेवाली कात्यायनी की कविताएँ हैं- 'गुजरात २००२', 'आम सहमति पर पहुँचे हुए लोगों की कविता', 'सौ साल कैसे जिये', 'सिटकिनी', 'मरते हुए लोग', 'यह एक दिन' आदि। सांप्रदायिकतावाद एवं आतंकवाद के प्रभाव से उद्भूत समस्याओं से भारतीय जनता जूझ रही है। 'आस्था का प्रश्न', 'दीवारों के बारे में', 'आह मेरे लोगों ओह मेरे लोगों' आदि कविताओं के माध्यम से सांप्रदायिकता का धिनौना चेहरा परदा हटाकर सामने आता है। 'वकील की कविता', 'जज की कविता', 'हमारे समय में कुछ काव्य विस्मृत शब्द और क्रियाएँ' आदि कविताओं में न्याय व्यवस्था की विसंगतियों का अंकन है।

पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी विभिन्न तरह के शोषण का शिकार है। एक ओर नारी सुरक्षा के लिए नारा उठाते हैं तो दूसरी ओर स्त्री अमानवीय व्यवहार या बलात्कार का शिकार बन जाती है। आज समाज में शिक्षित और कामकाजी स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है, फिर भी वह परतंत्रता के जंजीरों से बंधी है। समकालीन समाज में नारी की दुरवस्था पर कवयित्री कात्यायनी अत्यंत दुःखी हैं। इस दुनिया की तमाम नारियों के प्रति वे अपनी कविताओं और लेखों के माध्यम से संवेदना प्रकट करती हैं। 'स्त्री का सोचना एकांत में', 'दाहक-जीवनदाह', 'सात भाइयों के बीच चंपा', 'एक असमाप्त कविता की अति प्राचीन पांडुलिपी', 'एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना', 'सूली ऊपर सेज', 'यह आर्तनाद नहीं एक धधकती हुई पुकार है', 'गार्गी', आदि कविताओं में वे स्त्रियों के प्रति संवेदना प्रकट करती हैं। साहित्य जगत की मान्यताएँ एवं विडंबनाएँ,

सांस्कृतिक संकट, मूल्य क्षरण, अलगाव बोध आदि वर्तमान समाज में व्याप्त विभिन्न विषयों पर कात्यायनी ने अपनी कलम चलाई है। अपनी कविताओं के माध्यम से पूरे मानव या मानवेतर प्राणियों के प्रति वे संवेदना प्रकट करती हैं।

समकालीन हिंदी कविता के क्षेत्र में एक सशक्त कवयित्री हैं निर्मला पुतुल। उनकी ज्यादातर कविताएँ आदिवासी जनजाति एवं आदिवासी क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं। 'अपने घर की तलाश में' (२००४) 'नगाडे की तरह बजते शब्द' (२००६) 'बेघर सपने' (२०१४) आदि आपके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। सामाजिक कार्यों में सक्रिय भागीदार होने के कारण उनकी कविताएँ समाज का दर्पण हैं। वे अपनी मातृभाषा संताली में कविताएँ लिखती हैं। ज्यादातर आदिवासी जनजातों में उन्होंने आदिवासी समाज से जुड़ी हुई समस्याओं का अंकन किया है। वे अपनी कविताओं में आदिवासी समाज में व्याप्त अशिक्षा, भूख, अस्तित्व का संकट, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, नारीजीवन, सांस्कृतिक संकट आदि कई समस्याओं का चित्रण करती हैं। आदिवासी जनता विकास के नाम पर अपने मुल्क से विस्थापित होने के लिए विवश है। जब पूंजीपति वर्ग या माफिया लोग जंगल में पहुँचकर वहाँ अपना साम्राज्य स्थापित करने लगे, तब से लेकर आदिवासी लोग अपनी जगहों से बेदखल होने लगे। सरकार भी इन पूंजीपतियों के लिए आवश्यक सहायता देती है तो उनकी रक्षा के लिए कोई नहीं है। 'तुम्हारा एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें', 'एक सार्थक चीख के पहले की गहराती चुप्पी', 'झारखंड का सच' आदि कविताओं में विकास बनाम विस्थापन की समस्या को अंकित किया है।

आदिवासी समाज का प्रकृति से अटूट संबंध है। विकास के नाम पर प्रकृति पर अनियंत्रित हस्तक्षेप करना शुरू किया तो आदिवासी का अस्तित्व खतरे में पड़ने लगा। आदिवासी समाज की संस्कृति परंपरागत एवं श्रेष्ठ है। जातिगत एवं लिंगगत समानता इस संस्कृति की खासियत है। मुख्यधारा समाज से संपर्क होने के कारण आज आदिवासी समाज में सांस्कृतिक संकट की स्थिति आ गयी है। औद्योगीकरण का प्रत्यक्ष या परोक्ष

प्रभाव आदिवासी समाज के लिए बिल्कुल हितकर नहीं था। खनिज से संपन्न आदिवासी इलाकों को बाहर से आए हुए पूँजिपति लोगों ने कब्जा कर लिया। तब इन लोगों को काम की तलाश में शहर की ओर चलना पडा। वहाँ वे बेरोज़गारी की समस्या झेलने लगे। आदिवासी इलाकों में अन्न की कमी एवं भूख-मरी साधारण सी बात बन गयी। ‘संताल परगना’, ‘आपके शहर में’ ‘आपके बीच रहते आप के लिए’ ‘अखबार बेचती लड़की’, ‘जगमगाती रोशनियों से दूर अंधेरों से घिरा आदमी’, ‘बाहामुनी’, ‘एक सार्थक चीख के पहले की गहराती चुप्पी’, ‘पहाड़ी यौवना’, ‘चुडका सोरेन से’ आदि कविताओं में आदिवासी समाज में व्याप्त अभावग्रस्तता का चित्रण करते हुए वहाँ की जनता के प्रति निर्मला पुतुल संवेदना प्रकट करती हैं।

मुख्यधारा समाज की अपेक्षा आदिवासी समाज में अंधविश्वास एवं विभिन्न कुरीतियाँ व्याप्त हैं। इस समाज में अंधविश्वास उनकी संस्कृति का हिस्सा भी है। हल छूना, छप्पर छाना, तीर-धनुष छूना आदि प्रवृत्तियाँ आदिवासी समाज की स्त्रियों के लिए वर्जित हैं। ‘कुछ मत कहो सजोनी किस्कू’, ‘ढेपचा के बाबू’, ‘बिल्ली’ आदि कविताओं में इन अंधविश्वासों को खुलकर दिखाने के साथ कवयित्री सशक्त भाषा में इनका विरोध करती हैं।

मातृसत्ता पर आधारित आदिवासी समाज में पुरुषों के समान अधिकार आदिवासी स्त्रियों को भी प्राप्त था। फिर भी आदिवासी समाज की कई स्त्रियाँ शोषण का शिकार हैं। ‘क्या तुम जानते हो’, ‘तन के भूगोल से परे’, ‘अपनी ज़मीन तलाशती बेचैन स्त्री’, ‘औरत,’ ‘अपने घर की तलाश में’, ‘क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए’ आदि कविताओं के माध्यम से अपने स्वत्व को तलाशनेवाली नारी के प्रति कवयित्री निर्मला पुतुल अपनी संवेदना प्रकट करती हैं।

जातिगत एवं अर्थगत तौर पर निचले स्तर के होने के कारण आदिवासी स्त्री दोहरे शोषण का शिकार है। ‘ढेपचा के बाबू’, ‘बाहामुनी’ आदि कविता में आदिवासी स्त्रियों

पर होनेवाले श्रममूलक शोषण का अंकन है। सभ्य कहनेवाले मुख्यधारा समाज के लोग इन्हें हमेशा दूर रखते हैं। पिछडा, असभ्य एवं जंगली नामों से पुकारते हैं। बाज़ार के वर्चस्व ने आदिवासी समाज पर भी गहरा आघात पहुँचा दिया है। उनकी संस्कृति, चरित्र, एवं जीवन तरीके आधुनिक बाज़ारीकृत दुनिया से नितांत भिन्न हैं। 'अब आम आदमी को नसीब नहीं होता 'आम', 'जब टेबुल पर गुलदस्ते की जगह बेसलरी की बोतलें सजती हैं', 'बाहामुनी', 'ढेपचा के बाबू' आदि कविताओं में बाज़ारीकरण एवं भूमंडलीकरण से उद्भूत समस्याओं को दिखाने का प्रयास किया गया है। 'आपके शहर में, आप के बीच रहते, आप के लिए', 'एक सार्थक चीख के पहले की 'गहराती चुप्पी', 'अभी चुप रहो विधान सभा में बाढ़ आयी है', 'झारखंड का सच', 'कुर्सी', 'ढेपचा के बाबू' आदि कविताओं में सरकारी दमनतंत्र के शिकार आदिवासी जनता के प्रति कवयित्री निर्मला पुतुल अपनी संवेदना प्रकट करती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन से पता चलता है कि इन चारों कवियों की कृतियों में कई बातें समान रूप से देख सकते हैं। जैसे वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण की विभीषिकाएँ, पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था के दबाव में पिसनेवाला जनजीवन, मेहनतकश आम आदमियों का दुःख दर्द, किसानों की व्यथा-कथा, नई बाज़ारवादी एवं उदारवादी नीतियों से उत्पन्न विसंगतियाँ, पुरुष प्रधान समाज की क्रूरताओं का शिकार बनी नारी, समाज में व्याप्त अंधविश्वास एवं रूढ़ियाँ, अभावग्रस्त जीवन की सभी यातनाएँ सहने के लिए विवश श्रमिक या मज़दूर वर्ग, टूटते परिवार और बदलते रिश्तों से उद्भूत अकेलेपन की छटपटाहट, अर्थाभाव के कारण छीनते हुए बचपन, सांप्रदायिकता का बर्बर चेहरा, पर्यावरण की चिंता, महानगरीय जीवन का संकट एवं विषम परिस्थितियाँ, समकालीन भ्रष्ट राजनीति, मूल्यङ्करण, सांस्कृतिक संकट आदि मुद्दों पर चारों कवियों का संवेदनगत यथार्थ अत्यंत ध्यान देने योग्य है।

कविता के लिए जिस भाषा का चयन इन कवियों ने किया है वह तेज है। भावों और विचारों तथा कवि के हृदयानुभव को उसी रूप में पाठक तक पहुँचाने में इन कवियों की भाषा सक्षम बन चुकी है। शब्दों के समायोजन में ये चारों कवि सफल बन चुके हैं। जहाँ एक ओर ग्रामीण परिवेश से जुड़े शब्दों का प्रयोग हुआ है वहाँ दूसरी ओर अंग्रेज़ी शब्दों का भी प्रयोग दिखलाई पड़ता है। इन कवियों ने प्रतीकों के माध्यम से समकालीन समय से जुड़ी समस्याओं और जीवन शैली को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है। इन्होंने अपनी कविताओं में व्यंग्यात्मक एवं गद्यात्मक शैली को भी अपनाया है। इन कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से जनोन्मुख एवं सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। समकालीन कविता की मानवीय संवेदना को बहुआयामी बनाने में ये कवि सक्षम हो गये हैं।

प्रस्तुत अध्ययन से उभरनेवाले प्रमुख मुद्दे निम्नलिखित हैं :-

- * मानवीय संवेदना शब्द का अर्थ एवं स्वरूप काफी विस्तृत है।
- * समकालीन कवि अपनी रचनाओं में विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं आर्थिक समस्याओं पर समग्र रूप से विचार प्रस्तुत करते हैं।
- * सामाजिक अशांति, न्यायभंग, हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ जैसी असंख्य समस्याओं के मूल में मानवीय दृष्टि का अभाव है।
- * दीनहीन किसानों, मज़दूरों, श्रमिकों, हाशिएकृत दलितों, आदिवासियों एवं नारियों की समस्याओं के प्रति कवि जागरूक हैं।
- * धार्मिक और राजनैतिक नेताओं के अर्तविरोधों और सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध कविता आवाज़ उठाती है।
- * आम आदमी की पहचान और उसके संघर्ष का स्वरूप कविता का मूल मकसद है।
- * सत्ता, पूँजीपति, मीडिया एवं अधिकारी वर्ग के गठजोड़ से उद्भूत अमानवीय

- व्यवहारों के कारण आम जनता शोषण का शिकार है। ये कवि इन शोषित, पीड़ित, उपेक्षित वर्ग को अनदेखा करके नहीं छोड़ते।
- * समकालीन कवि मानवीय पक्षधरता एवं मानवीय संसक्ति पर बल देते हैं विशेषकर उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी और निर्मला पुतुल।
 - * वैश्वीकरण एवं बाज़ारीकरण मानव की सभ्यता एवं संस्कृति के परिवर्तन के कारण बन गये हैं। इसके खिलाफ कविता का प्रतिरोधी स्वर प्रबल है।
 - * विकास के नाम पर पर्यावरण का विनाश हो रहा है।
 - * उत्तराधुनिक समाज की ज्यादातर स्त्रियाँ आज भी उपेक्षित, पीड़ित, न्याय वंचित एवं शोषित रहने के लिए विवश हैं।
 - * उनकी कविताओं में क्रांतिकारिता, सामाजिक प्रतिबद्धता एवं ग्रामीण चेतना एवं संस्कृति का स्पंदन सुनाई पड़ता है।
 - * भारतीय सौहार्द, सहिष्णुता, सद्भावना, संस्कृति एवं मूल्यों पर सांप्रदायिकता एवं आतंकवाद हमला कर रहे हैं।
 - * इनकी कविताओं में सरकार की जनविरोधी नीतियों को लेकर गहरी निराशा है। साथ ही साथ उनके विरुद्ध आक्रोश भी है।
 - * हमारी न्यायव्यवस्था पर गहरा प्रश्नचिह्न यहाँ स्पष्ट देख सकते हैं।
 - * रूढ़ियों, परंपराओं, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों से आदिवासी समाज आज भी मुक्त नहीं है।
 - * भूख, गरीबी, बेरोज़गारी, बेदखली, विस्थापन एवं जल-जंगल-ज़मीन से जुड़ी हुई समस्याएँ आदिवासी समाज झेल रहा है।

- * आदिवासी समाज अपनी संस्कृति, साहित्य, भाषा एवं इतिहास की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहा है।
- * बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के अतिक्रमण ने आदिवासी संस्कृति एवं सभ्यता पर हानि पहुँचायी है।
- * समकालीन समाज में बच्चे असुरक्षित हैं। बाल मज़दूरी, यौन शोषण, कन्या भ्रूणहत्या आदि कई कारणों से वे पीड़ित हैं।
- * विकास के नाम पर चलनेवाली कई सरकारी योजनाएँ आम जनता के जीवन में विपरीत स्थितियाँ पैदा कर रही हैं।
- * भूमंडलीकरण के प्रभाव से हमारे देश में अमीरी और गरीबी की खाई बढ रही है।
- * समकालीन समाज की परिस्थितियों को सही ढंग से समझने एवं मानवीय संवेदना एवं सामाजिक सरोकार को बनाये रखने की आवश्यकता पर उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल ने विशेष ध्यान दिया है।

परिशिष्ट

अध्ययन की संभावनाएँ (Recommendations)

मानव समाज आज अनगणित समस्याओं के बीच में है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तौर पर विभिन्न समस्याओं के घेरे में है जनजीवन। जाति, वर्ण, वर्ग, नस्ल, अर्थ एवं लिंग के आधार पर समाज विभिन्न टुकड़ों में विभाजित है। हर कहीं असमानता फैल रही है कि मानव धीरे-धीरे संवेदनशून्य बनते जा रहे हैं।

प्रस्तुत अध्ययन 'समकालीन हिंदी कविता में मानवीय संवेदना (उदय प्रकाश, अरुण कमल, कात्यायनी एवं निर्मला पुतुल की कविताओं के विशेष संदर्भ में)' विषय पर केन्द्रित है। इनमें से प्रत्येक कवि समकालीन कविता लेखन के क्षेत्र में अब भी क्रियाशील हैं। समकालीन कविता के क्षेत्र में इनका विशिष्ट योगदान रहा है और आगे भी बने रहने की संभावना है। इन कवियों की कविताओं के माध्यम से समकालीन यथार्थ को उद्घाटित करने की कोशिश की गयी है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के दौरान इस विषय से जुड़ी अन्य शोध दिशाएँ भी मिली हैं। जिस पर स्वतंत्र रूप से अनुसंधान किया जा सकता है। कुछ प्रमुख मुद्दे हैं-

- * उदय प्रकाश के काव्य में उत्तराधुनिक भावबोध की अभिव्यक्ति।
- * समकालीन हिंदी कविता की प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में उदय प्रकाश के काव्य का अनुशीलन।
- * भारत का समकालीन सामाजिक सांस्कृतिक संकट और उदय प्रकाश की कविता।
- * उदय प्रकाश की कविता में लोकतांत्रिक चेतना।

- * भूमंडलीकरण के संदर्भ में अरुण कमल की कविता।
- * सांप्रदायिकता, हिंसा और अरुण कमल की कविता।
- * समकालीन सामाजिक सांस्कृतिक संकट और अरुण कमल की कविता।
- * समकालीन हिंदी कविता की प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में कात्यायनी के काव्य का अनुशीलन।
- * कात्यायनी की कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री स्वर।
- * राजनीतिक दृष्टि से कात्यायनी के काव्य का अध्ययन।
- * समकालीन सामाजिक सांस्कृतिक संकट और कात्यायनी की कविता।
- * निर्मला पुतुल की कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री-स्वर।
- * निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी और विस्थापन।
- * भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में निर्मला पुतुल की कविताओं का अध्ययन।

सहायक ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

१. अरुण कमल : अपनी केवल धार
वाणी प्रकाशन,
दरियागंज, नई दिल्ली,
२०१२
२. अरुण कमल : सबूत
वाणी प्रकाशन,
दरियागंज, नई दिल्ली,
२०२१
३. अरुण कमल : नये इलाके में
वाणी प्रकाशन,
दरियागंज, नई दिल्ली,
२०१०
४. अरुण कमल : पुतली में संसार
वाणी प्रकाशन,
दरियागंज, नई दिल्ली,
२००६
५. अरुण कमल : मैं वो शंख महाशंख
राजकमल प्रकाशन,
नई दिल्ली,
२०१२
६. अरुण कमल : योगफल
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली,
२०१९

७. उदय प्रकाश : सुनो कारीगर
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली,
२०२१
८. उदय प्रकाश : अबूतर - कबूतर
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली,
२०१७
९. उदय प्रकाश : रात में हारमोनियम
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली,
२०१५
१०. उदय प्रकाश : एक भाषा हुआ करती है
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली,
२०२०
११. उदय प्रकाश : अम्बर में अबाबील
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली,
२०१९
१२. कात्यायनी : सात भाइयों के बीच चंपा
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, १९९४
१३. कात्यायनी : इस पौरुषपूर्ण समय में
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, १९९९
१४. कात्यायनी : जादू नहीं कविता
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, २००८
१५. कात्यायनी : राख अंधेरं की बारिश में
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, २००८
१६. कात्यायनी : फुटपाथ पर कुर्सी
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, २००६
१७. कात्यायनी : एक कुहरा पारभासी
बोधी प्रकाशन, जयपुर, २०१६

१८. निर्मला पुतुल : नगाडे की तरह बजते शब्द
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
नई दिल्ली,
२०१२
१९. निर्मला पुतुल : बेघर सपने
आधार प्रकाशन, हरियाणा, २०१४
- अन्य काव्य संग्रह
१. ए.अरविंदाक्षन : आसपास
गोविंद प्रकाशन, मथुरा, २००३
२. अनामिका : खुरदुरी हथेलियाँ
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २००५
३. अनामिका : दूब - धान
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, २००७
४. ओमप्रकाश वाल्मीकि : सदियों का संताप
गौतम बुक सेंटर, नई दिल्ली, २०१२
५. कुमार विकल : संपूर्ण कविताएँ
आधार प्रकाशन, हरियाणा, २०००
६. कुमार अंबुज : अतिक्रमण
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २००७
७. कुमार अंबुज : प्रतिनिधि कविताएँ,
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१४
८. चंद्रकांत देवताले : दीवारों पर खून से
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९७५
९. चंद्रकांत देवताले : लकड़बँधा हँस रहा है
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०००
१०. चंद्रकांत देवताले : भूखंड तप रहा है
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१२

११. चंद्रकांत देवताले : उसके सपने
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९७
१२. जयशंकर प्रसाद : कामायनी
विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, २००७
१३. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९७४
१४. धूमिल : कल सुनना मुझे
युगबोध प्रकाशन, वाराणसी, १९७७
१५. धूमिल : संसद से सड़क तक
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००३
१६. नवल शुक्ल : दसों दिशाओं में
आधार प्रकाशन, हरियाणा, १९९२
१७. पवन करण : स्त्री मेरे भीतर
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६
१८. प्रेमशंकर रघुवंशी : देखा बिना नाम के तुम्हें
नाषणल पब्लिशिंग हाऊस, दरियागंज, २०१०
१९. मंगलेश डबराल : नये युग में शत्रु
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३
२०. मंगलेश डबराल : घर का रास्ता
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८
२१. मंगलेश डबराल : कवि ने कहा
किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१९
२२. रामधारी सिंह दिनकर : रश्मिलोक
हिंदी बुक स्टोर, नई दिल्ली, १९७४
२३. राजेश जोशी : नेपथ्य में हँसी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९४

२४. लीलाधर मंडलोई : देखा अदेखा
शिल्पायन, नई दिल्ली, २००२
२५. (सं) डॉ. बी.विजयकुमार : कालयात्री कविताएँ
अरुणोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१७
२६. विष्णु खरे : काल और अवधी के दरमियान
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००३
२७. सूरजपाल चौहान : कब होगी वह भोर
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००७
२८. ज्ञानेन्द्रपति : कवि ने कहा
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१६
- आलोचना ग्रंथ**
१. डॉ.ए.अरविंदाक्षन : समकालीन हिंदी कविता
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८
२. डॉ.ए.अरविंदाक्षन : कविता का थल और काल
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, २००१
३. अरुण कमल : कविता और समय
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९९
४. अरुण कमल : कथोपकथन
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १००९
५. अरुण कमल : गोलमेज़
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १००९
६. अज्ञेय : दूसरा सप्तक
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, १९८१
७. उदय प्रकाश : ईश्वर की आँख
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९९
८. उदय प्रकाश : नई सदी का पंचतंत्र
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००८

९. ओम प्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २००१
१०. कल्याण चंद्र : समकालीन कवि और काव्य
चिंतन प्रकाशन, कानपुर, १९९६
११. कात्यायनी : कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, २००६
१२. कात्यायनी : प्रेम, परंपरा और विद्रोह
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, २००८
१३. कात्यायनी : दुर्ग द्वार पर दस्तक
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, १९९७
१४. कुमार कृष्ण : समकालीन कविता का बीजगणित
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००४
१५. डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त : साहित्य निबंध
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९३
- १६.डॉ.एस.गंभीर : साठोत्तर हिंदी काव्य में राजनीतिक चेतना
विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर, १९९२
१७. डॉ.गोविंद रजनीश : समसामयिक हिंदी कविता:विविध परिदृश्य
देवनगर प्रकाशन, गंजापुर, १९७३
१८. जगदीश नारायण श्रीवास्तव : समकालीन कविता पर एक बहस
चित्रलेख प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७८
१९. (सं) (डॉ) नगेन्द्र &
(डॉ) सुरेशचंद्र गुप्त : हिंदी साहित्य का इतिहाल
मयूर पैपर बैक्स, नई दिल्ली, २००७
२०. नरेन्द्र मोहन : समकालीन कविता के बारे में
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९९
२१. (सं) (डॉ) नवीन नन्दवाना : समकालीन कविता विविध संदर्भ
अमन प्रकाशन, कानपुर २०१४

२२. डॉ. नामवर सिंह : कहानी नई कहानी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-१, २००९
२३. निधि गुप्ता : दसवें दशक के हिंदी नाटक संवेदना और शिल्प
प्रशस्ति प्रकाशन, २००५
२४. सं. नेमीचंद्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली भाग - ५
राजकमल प्रकाशन, लखनऊ, १९८०
२५. परमानंद श्रीवास्तव : कविता का अर्थात्
आधार प्रकाशन, हरियाणा, १९९९
२६. परमानंद श्रीवास्तव : समकालीन कविता संप्रेषण का संकट
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१४
२७. डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय : समकालीन हिंदी कविता दशा और दिशा
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, २०१३
२८. सं. प्रमीला के.पी : स्त्रीमुक्ति और कविता
मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, २००६
२९. डॉ. प्रमोद कोवप्रत : समकालीन हिंदी कविता का ताप-मान
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा १९९९
३०. प्रभाकर श्रोतीय : कालयात्री है कविता
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९३
३१. डॉ. प्राची शर्मा : अरुण कमल एवं समकालीन हिंदी कविता
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, २०११
३२. प्रेम प्रकाश : ग्लोबल गाँव के देवता और किस्सागो में चित्रित
आदिवासी समाज
विकास प्रकाशन, कानपुर, २०१८
३३. डॉ. बाबू जोसफ : भूमंडलीकरण और हिंदी कविता
अमन प्रकाशन, कानपुर, २०१३

३४. मिनिप्रिया.आर : दलित जीवन का अधिकार और निर्मला पुतुल की कविता
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, २००६
३५. डॉ. मुकुंद द्विवेदी : हज़ारी प्रसाद द्विवेदी चुने हुए निबंध
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९३
३६. डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय : साहित्य की दिशाएँ
अमन प्रकाशन, मथुरा, २००३
३७. डॉ. पी.ए.रघुराम : समकालीन हिंदी कविता और अस्मिता
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, २०१२
३८. रवीन्द्रनाथ मिश्र : अंतिम दशक की हिंदी कविता
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २०१३.
३९. सं. डॉ.रणजीत &
डॉ.सुधा रणजीत : समकालीन कविता के बदलते सरोकार
अमन प्रकाशन, कानपुर, १९९८
४०. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी अस्मिता की पड़ताल करते
साक्षात्कार
स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१२.
४१. रमणिका गुप्ता : आदिवासी कौन
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१५.
४२. रमणिका गुप्ता : आदिवासी विकास से विस्थापन
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१५
४३. सं. डॉ. पी.रवी : समकालीन कविता के आयाम
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २०१३.
४४. रामचंद्र शुक्ल : चिंतामणी
इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग, १९७१
४५. रामचंद्र तिवारी : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २०१०

४६. राम मनोहर त्रिपाठी : हिंदी कविता संवेदना और दृष्टि
नेषनल पब्लिशिंग हऊस, नई दिल्ली, १९८६.
४७. डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर' : समकालीन गीति - काव्य संवेदना और शिल्प
अनंग प्रकाशन, नई दिल्ली, २००९.
४८. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८६.
४९. रोहिताश्व : समकालीन कविता और सौंदर्यबोध
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९६
५०. रोहिताश्व : समकालीनता और शाश्वतता
विद्या प्रकाशन, कानपुर, २००६
५१. सं. विश्वंभरनाथ उपाध्याय &
मंजुल उपाध्याय : समकालीन कविता की भूमिका
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड,
नई दिल्ली, १९७६.
५२. डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय : आधुनिक हिंदी कविता सिद्धांत और समीक्षा
प्रभात प्रकाशन, मथुरा, १९६२
५३. विधि शर्मा : कविता की वापसी और अरुण कमल का काव्य
अनामिका बप्लिशर्स, नई दिल्ली, २००५
५४. डॉ. विनायक तुमराम : निर्मला पुतुल और वाहरु सोनवणे की
आदिवासी कविताएँ - तुलनात्मक अध्ययन
उलगुलान सूर्य प्रकाशन, नागपुर, २०१७
५५. सं. वैभव सिंह : अरुण कमल - सृजनात्मकता के आयाम-२
नई किताब, नई दिल्ली, २०१९.
५६. श्यामचरण दुबे : विकास का समाज शास्त्र
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९६

५७. डॉ. शिवकुमार सी.एस.पडपद : स्त्री कविता में मानवीय संवेदना
अमन प्रकाशन, कानपुर, २०१८
५८. डॉ. बी.एफ.शेखर : समकालीन हिंदी कविता और कवि
चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, २०१०
५९. डॉ. सरजू प्रसाद सिंह : समकालीन हिंदी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर
अमन प्रकाशन, कानपुर, २०११
६०. डॉ.सी.एस.सुचित &
डॉ.ज्योती एन : समकालीन हिंदी कविता विविध आयाम
अमन प्रकाशन, कानपुर, २०१८
६१. डॉ. संतोषकुमार तिवारी : अज्ञेय से अरुण कमल (भाग-२)
भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली, २००५
६२. संजय रणखॉंबे : अरुण कमल की कविता का जनवादी पक्ष
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, २०१४
६३. डॉ. हुकुमचंद राजपाल : समकालीन कविता में जीवन मूल्य
शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९३

कोश ग्रंथ

१. सं. गोपिनाथ श्रीवास्तव : सामाजिक प्रशासनिक कोश (हिंदी-अंग्रेज़ी)
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९२
२. सं. धीरेन्द्र वर्मा : हिंदी साहित्य कोश भाग - १
ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, १९८५
३. सं. नगेन्द्र नाथ बसु : हिंदी विश्वकोश (२३)
बी.आर.पब्लिशिंग कोरपोरेशन, नई दिल्ली, २००३
४. सं. नवल जी : नालंदा विशाल शब्द सागर
आदिरा बुक डिपो, दिल्ली, १९८६
५. सं. रामचंद्र वर्मा : संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर
नागरी प्रचारणी सभा, काशी, १९३३

६. रामचंद्र वर्मा : मानक हिंदी कोश भाग-५
हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६६
७. वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत हिंदी कोश
मोनिलाल बनारसी दास प्रकाशन गृह,
दिल्ली, १९६६
८. (सं) सत्यप्रकाश डी.एस &
सी.बलभद्र मिश्र : मानक अंग्रेज़ी हिंदी कोश
हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९८६
९. डॉ.हरदेव बाहरी : उच्चतर हिंदी अंग्रेज़ी कोश
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००५
१०. डॉ.हरदेव बाहरी : हिंदी शब्द कोश
राजपाल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००८.

अंग्रेज़ी पुस्तक

१. क्लैव.टी.प्रोब्यन : इंग्लिश पोयट्री
यॉर्क हान्डबुकस, बैरूट, १९८४
२. नदीम हसनैन : ट्राइबल इंडिया
पलका प्रकाशन, दिल्ली, २०१७

पत्रिकाएँ

१. आजकल, जून २०१९
२. हंस, अगस्त २०१८
३. हंस, फरवरी २०१९

वेबसाइट

1. <https://www.pustak.org>
2. <https://www.hindisarang.com>
3. <https://www.hindisamay.com>
4. <https://www.kavitakosh.org>